श्रीमान्कालहस्तिमुनीन्द्रप्रोक्तं

श्रीमहाविश्वकर्मपुराणम्

(विश्वकर्मीयशिल्पसारसहितम्)

(भूमिका, मूल संस्कृत पाठ, पर्याप्त टिप्पणियाँ, 'मोहनबोधिनी' हिन्दी टीका व श्लोकानुक्रमणिका सहित)

अनुवादक
कोल्लोजु श्रीकान्ताचार्य

सम्पादक
डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू'

परिमल संस्कृत ग्रन्थमाला सं. १४१

श्रीमान्कालहस्तिमुनीन्द्रप्रोक्तं

श्रीमहाविश्वकर्मपुराणम्

(विश्वकर्मीयशिल्पसारसहितम्)

(भूमिका, मूल संस्कृत पाठ, पर्याप्त टिप्पणियाँ,
'मोहनबोधिनी' हिन्दी टीका व श्लोकानुक्रमणिका सहित)

सम्पादक
डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू'
अनुवादक
कोल्लोजु श्रीकान्ताचार्य

परिमल पब्लिकेशन्स
दिल्ली

Parimal Sanskrit Series No. 142

Kālahastimunīndra's

ŚRĪMAHĀVIŚVAKARMAPURĀṆAM

[With Śilpasāram of Viśvakarman]

(Along with an Introduction, Sanskrit Text, Valuable Notes, 'Mohanabodhinī' Hindi Translation & Index of Verses)

Edited by

Dr. Shri Krishan 'Jugnu'

Translated by

Kolloju Shrikantacharya

PARIMAL PUBLICATIONS

DELHI

परम श्रद्धेय पिताश्री एवं सद्गुरु

नित्यलीलालीन पण्डितप्रवर

श्रीमद् मोहनलालजी चौहान

की पुण्य स्मृति में...

–श्रीकृष्ण 'जुगनू'

पुरोवाक्

विश्वकर्मा तु कर्त्तव्यः सुररूपधरः प्रभुः।
सन्दर्शपाणिर्द्विभुजस्तेजोमूर्तिधरोमहान्॥

शुभश्मश्रुः सिन्दूरारुणसप्रभः पद्मासनः पद्मकरो भूषिताङ्गो रसनाधरः।
श्मश्रुलो रसनाधरः संदर्शपाणिर्दिभुजस्तेजोमूर्त्तिधरो महान् विश्वकर्मा॥

जो प्रभुवर विश्वकर्मा देवता का स्वरूप धारण किए हैं, अपने दोनों हाथों से जो कर्त्तव्य करने की प्रेरणा देते हैं, वे अप्रतिम तेज को धारण किए महान् स्वरूप वाले हैं। *(चतुर्वर्ग्ग चिन्तामणि व्रतखण्ड 1, पृ. 104; भगवन्तभास्कर : दानमयूख, पृष्ठ 18)*

महाविश्वकर्मपुराण का प्रस्तुत पाठ तैयार कर पाठकों के कर-कमलों में प्रदान करते हुए आत्मिक आनन्द की अनुभूति हो रही है। भारतीय पुराण वाङ्मय में यह स्वल्पपुराण अपने ढ़ंग का अनूठा ही है। प्रस्तुत पाठ की मातृका जर्मनी की ऑरियण्टल लायब्रेरी में विद्यमान है, ऐसा बताया गया है। श्री बी. जी. सरस्वती स्वामी ने इस ओर संकेत दिया है। विश्वकर्मापुराण के नाम से यह सूचना मिलती है कि इस नाम का एक ग्रन्थ इण्डिया आफिस लाइब्रेरी, लन्दन में है और उसकी तेलुगु टीका हुई है किन्तु वह स्थापत्य शास्त्रीय सामग्री को संजोये हुए है। *(केटलॉग ऑफ द संस्कृत मैनुस्क्रिप्ट्स इन द लाइब्रेरी ऑफ द इण्डिया ऑफिस, भाग 5, आर्किटेक्चर एण्ड टेक्निकल साइंस, जूलियस इग्गेलिंग, 1896, मातृका संख्या 3153, 2614; ओपेर्ट्स लिस्ट ऑफ संस्कृत मैनुस्क्रिप्ट्स, भाग 1, पृष्ठ 480; एन एनसाइक्लोपीडिया ऑफ हिन्दू आर्किटेक्चर : प्रो. पी. के. आचार्य, ऑक्सफोर्ड, 1946, पृष्ठ 650)*.

इसके विपरीत श्री बिनोयकुमार सरकार की सूचना है कि इस नाम से प्राप्य एक ग्रन्थ में देवस्थपति विश्वकर्मा का मनु के रूप में वंश प्रवर्तक और संरक्षक देव होने का विवरण है जो कि कला, विज्ञान, कारीगरी से सम्बद्ध हैं और जिसके शास्त्र को शिल्प के नाम से जाना जाता है। *(द पॉजीटिव बेकग्राउण्ड ऑफ हिन्दू सोशियोलॉजी, पहली पुस्तक, इण्ट्रोडक्शन टू हिन्दू पॉजीटिविज़्व, द्वितीय संस्करण एसबीएच, भाग 32, इलाहाबाद 1937 ई., पृष्ठ 439)*

विश्वकर्माचरित्र पर ही आधारित 'मूलस्तम्भपुराण' मद्रास की ऑरियण्टल लाइब्रेरी, अड्यार में बताया गया है। प्रो. हरदास मित्रा ने अपने 'कॉन्ट्रीब्यूशन टू अ बिब्लियोग्राफी ऑफ इण्डियन आर्ट एण्ड एस्थेटिक्स' ग्रन्थ में यह सूचना दी है कि इसमें दैववर्द्धकि विश्वकर्मा और उनके मन्वादि के अनुयायियों, वर्गों के रीति-रिवाजों, धार्मिक कार्यों, उत्सवों आदि का विवरण है। इसमें कुल 23 अध्याय हैं। इसका तेलुगु तात्पर्य भी उपलब्ध है। *(डिस्क्रिप्टिव केटलॉग ऑफ संस्कृत मैनुस्क्रिप्ट्स इन द गवर्नमेण्ट ऑरियण्टल मैनुस्क्रिप्ट्स लाइब्रेरी, भाग 2, परिशिष्ट, मद्रास, 1942, भाग 22, आर. एन. 2791, 15997, तेलुगु सहित आर. एन. 512 [अ], 15998)* इसी ग्रन्थ का अन्य नाम 'मूलस्तम्बपुराण' भी बताया गया है और इस नाम से भी एक मातृका भी संरक्षित है। *(अ केटलोग ऑफ मैनुस्क्रिप्ट्स इन द विश्वभारती लाइब्रेरी, मैनुस्क्रिप्ट्स डिपार्टमेंट, शान्तिनिकेतन, एन. आइयास्वामी शास्त्रीगुल, विषय एवं अकरादि क्रमानुसार संयोजित टंकित सूची, 1940 ई., संख्या 1068 बी.)*

स्वामी कालहस्ति मुनि प्रोक्त प्रस्तुत महाविश्वकर्मपुराण लगभग एक शताब्दी पूर्व संस्कृत से कन्नड़ भाषा में छपा था। इसके बाद इसका तेलुगु में प्रकाशन हुआ किन्तु वह दीर्घावधि से दुर्लभ है। वर्ष २०१४ में एक दिन हैदराबाद से प्रियवर श्री कोल्लोजु श्रीकान्ताचार्य ने दूरभाष पर मुझसे पूछा कि क्या महाविश्वकर्मपुराण की कोई जानकारी है? इस पर मैंने इधर प्रकाशित विश्वकर्मापुराणों के पाठों की जानकारियाँ देते हुए महाविश्वकर्मपुराण के सम्बन्ध में अपनी अनभिज्ञता जताई तो वह बोले कि यह कन्नड़ में निकला था और उसकी प्राचीन प्रति उनके पास है तो मैंने तत्काल देवनागरी पाठ तैयार करने को कहा। यही नहीं, मैंने कहा कि उसके बारे में जो भी सूचनाएँ उपलब्ध हो, उनको संगृहीत करें। श्रीकान्ताचार्य ने परिश्रम करके इसका देवनागरी पाठ सानुवाद तैयार किया और मुझे भिजवाया। हालांकि उस पाठ में भाषा आदि की दृष्टि से पर्याप्त कमियाँ थीं और सम्पादन की आवश्यकता भी थी।

मैंने रुचिपूर्वक पर्याप्त परिश्रम करते हुए यथामति उस पाठ का उचित सम्पादन करते हुए प्रत्येक श्लोक का अनुवाद देने का प्रयास किया और अपनी प्रवृत्ति के अनुसार यथास्थल पाद टिप्पणियाँ का प्रयत्न किया। राजा सुव्रत और मुनि कालहस्ति के संवादों को भी यथारूप देने का प्रयास किया। अध्यायों में आई विषयवस्तु के आधार पर उनके अध्यायों का नामकरण भी किया है। हाँ,

इसके सभी 1011 श्लोकों का पूरी तरह छन्दशास्त्रीय परीक्षण तो नहीं किया किन्तु आर्ष वचन प्रयोग मानकर स्वीकार किया है।

इस सेवा के लिए मैं श्रीकोल्लोजु श्रीकान्ताचार्य का हृदय से आभार स्वीकारता हूँ। हिन्दीभाषी न होते हुए भी मेरा आग्रह स्वीकार उन्होंने सोत्साह अल्पावधि में देवनागरी पाठ तैयार किया और उसे न केवल मुझे उपलब्ध करवाया, बल्कि अपने प्रयास से पुराण पाठकों और शिल्पविद्याचार्यों के कुल-समुदायों को भी लाभान्वित करने का श्लाघ्नीय प्रयास किया है। नई पीढ़ी में इस प्रकार का विद्यानुराग बहुत ही कम देखने को मिलता है। ज्ञानरूपी विश्वकर्माशास्त्र को उनके कर-कमलों ने तेलुगु से देवनागरी में कायान्तरित किया है, सुधी पाठकों को भी उनका आभार स्वीकारना चाहिए। यह कार्य इस दृष्टि से भी विशिष्ट है कि शिल्प के देवता पर सृजित एक पुराण मौलिक रूप में सबके हाथों तक पहुँच रहा है। यह ज्ञानयज्ञ उन पर निश्चित ही दैवकृपावर्षण करेगा। श्रीकृष्ण के वचन साक्षी हैं— य इदं परमं गुह्यं मद्भक्तेष्वभिधास्यति। भक्तिं मयि परां कृत्वा मामेवैष्यत्यसंशयः॥ न च तस्मान्मनुष्येषु कश्चिन्मे प्रियकृत्तमः। भविता न च मे तस्मादन्यः प्रियतरो भुवि॥ *(गीता 18, 68-69)*

इसके साथ ही ग्रन्थान्त में परिशिष्ट के रूप में 'विश्वकर्मीय शिल्पसार' का पाठ पहली बार दिया जा रहा है। यह पाठ एक प्राचीन पाण्डुलिपि के आधार पर तैयार किया है। इसमें वास्तुशास्त्रों, संहिताओं और पुराणादि के अनेक ग्रन्थों के श्लोकों का संग्रह है। शिल्पसार के नाम से एक पाठ 1923 ई. में कटक से उड़िया में प्रकाशित हुआ था किन्तु वह मूलतः 'शिल्पशास्त्र' था। बउरी महाराणा कृत 'शिल्पशास्त्र' मेरे सम्पादन में 2006 ई. में बनारस से प्रकाशित हुआ है। शिल्पसार का यह पाठ उससे सर्वथा पृथक् है। उसमें मुहूर्त, वास्तु, पूजा और अनुष्ठादि विषयक सामग्री ही अधिक है और शिल्पियों, सूत्रधारों के समान के निर्देश हैं। यह स्थापत्य और शिल्पशास्त्र के अध्येताओं के लिए उपयोगी सिद्ध होगा, ऐसी आशा ही नहीं, विश्वास है।

मेरी कनिष्ठ पुत्री आयुष्मति अनुकृति चौहान ने रुचिपूर्वक इस पाठ के सुन्दर टंकण का कार्य किया। यथास्थल पाद टिप्पणियों के प्रयोग के लिए आवश्यक ग्रन्थों को जुटाकर उनके शोधन में बड़ी पुत्री सौभाग्वती डॉ. अनुभूति चौहान और धर्मपत्नी पुष्पा चौहान ने पर्याप्त श्रम किया। सदा सर्वदा की तरह अनुज अरविन्द चौहान और पुत्र गौरव चौहान ने भी यथेष्ट सहायता की है। मैं सभी के स्नेहाधीन

हूँ। इसकी जो अच्छाइयाँ हैं, वे नन्द-नन्दन, आनन्द-कन्द प्रभुवर श्रीनाथजी की कृपा का प्रसाद है और जो त्रुटियाँ हैं, वे मुझ अल्पज्ञ की हैं। त्रुटियों की ओर विद्वजन अवश्य ध्यान दिलाएँगे। यह आशा करता हूँ। इसके सुन्दर-सुरुचिपूर्ण प्रकाशन का दायित्व परिमल पब्लिकेशंस, दिल्ली के संचालक प्रियवर श्री परिमल जोशी ने ग्रहण किया। उनको धन्यवाद क्या दूँ, वह मेरे अपने ही हैं और मेरे ध्येय में सनिष्ठ सहभागी हैं। श्रीकृष्णार्पणमस्तु,

गच्छतः स्खलनं क्वापि भवेत्येव प्रमादतः।
हसन्ति दुर्जनास्तत्र समादधति सज्जनाः॥

निवेदक
श्रीकृष्ण 'जुगनू'

40 राजश्री कॉलोनी,
विनायकनगर, उदयपुर
21 अक्टूबर, 2014 ई., धन त्रयोदशी

श्रीविश्वकर्मा और प्रस्तुत पुराण

अपश्यमिति चाग्नेये य इमा वैश्वकर्मणे। (बृहद्देवता 7, 117)

शिल्प-स्थापत्य के देवता के रूप में विश्वकर्मा की जो मान्यता आज के भारतीय समाज में विद्यमान है, वह ब्राह्मणग्रन्थों, गृहसूत्रों और पुराणकाल की देन है मगर, इस मान्यता की नींव भारतीय उपमहाद्वीप में ऋग्वैदिक काल में ही पड़ चुकी थी। वैदिक देवताओं में विश्वकर्मा को श्रेष्ठ स्थान मिला हुआ है—

विश्वकर्मा विश्वेदेवा महाँ असि। (ऋग्वेद 8, 92, 2)

ऋग्वेद में विश्वकर्मा की स्तुति और स्वरूपादि के वर्णन के रूप में कोई दो सूक्त संगृहीत हैं। इन सूक्तों की यह विशेषता है कि वे उस वर्णन को आत्मसात किए हुए हैं जो उस समय प्रचलित व्यवहार में था और जो मान्यताएँ सृष्टिकर्ता के सृजनकर्म को रेखांकित करती थी। यद्यपि वे मान्यताएँ दसवें मण्डल जिसको अपेक्षाकृत परवर्ती माना जाता है, में आई हैं। इसी कारण वे शुंगकालोपरान्त परवर्ती पुराणादि के वर्णनों का आधार बनने में पर्याप्त सहायक हुईं हैं।

वैदिक सूक्तों में विश्वकर्म और विश्वकर्मा —

ऋग्वेद के 10वें मण्डल के 81वें सूक्त के देवता विश्वकर्मा, छन्द त्रिष्टुप हैं तथा ऋषि विश्वकर्मा भौवन हैं। देवता भुवन सृजेता परमात्मा तथा उसके द्रष्टा ऋषि हैं भुवन में उत्पन्न सृजेता। यह सूक्त सृष्टि सृजन और विलय की प्रक्रिया से सम्बद्ध माना गया है। इसी अर्थ में इसकी पहली ही ऋचा में निहित विचार की ओर आचार्य श्रीराम शर्मा ने संकेत किया है कि सृजन के क्रम में परमात्म चेतना विश्वकर्मा का रूप धारण कर लेती है। वही पोषण के लिए पूषा बन जाती है। उत्पत्ति, विलय दोनों क्रम चलते रहते हैं, पहले वालों को संव्याप्त करते हुए अथवा उनकी आहुतियाँ देकर विलय करते हुए दिव्य चेतना नवीन लोकों में प्रवृत्त रहती है—

य इमा विश्वा भुवनानि जुह्वदृषिर्होता न्यासीदत् पिता नः।
स आशिषा द्रविणमिच्छमानः प्रथमच्छदवराँ आ विवेश॥ 1॥
किं स्विदासीदधिष्ठानमारम्भणं कतमत्स्विकथासीत्।
यतो भूमिं जनयन्विश्वकर्मा वि द्यामौर्णोन्महिना विश्वचक्षाः॥ 2॥

विश्वचक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतोबाहुरुत विश्वतस्पात्।
सं बाहुभ्यां धमति सं पतत्रैर्द्यावाभूमी जनयन्देव एकः ॥ 3 ॥
किं स्विद्वनं क उ स वृक्ष आस यतो द्यावापृथिवी निष्टतक्षुः।
मनीषिणो मनसा पृच्छतेदु तद्यदध्यतिष्ठद्भुवनानि धारयन् ॥ 4 ॥
या ते धामानि परमाणि यावमा या मध्यमा विश्वकर्मन्नुतेमा।
शिक्षा सखिभ्यो हविषि स्वधावः स्वयं यजस्व तन्वं वृधानः ॥ 5 ॥
विश्वकर्मन् हविषा वावृधानः यजस्व पृथिवीमुत द्याम्।
मुह्यन्त्वन्ये अभितो जनास इहास्माकं मघवा सूरिरस्तु ॥ 6 ॥
वाचस्पतिं विश्वकर्माणमूतये मनोजुवं वाजे अद्या हुवेम्।
स नो विश्वानि हवनानि जोषद्विश्वशम्भूरवसे साधुकर्मा ॥ 7 ॥

उक्त सूक्त की पाँचवीं ऋचा में यह भाव ध्वनित होता है कि विश्वकर्त्ता परमात्मा सब भुवनों के सब प्राणियों के पोषण हेतु स्वयं ही महान प्रकृति यज्ञ चक्र का सम्पादन करते हैं। महीधर ने द्वितीय ऋचा के भाष्य में विश्वरूप को परिभाषित किया है कि वह अकेला महादेव एकमात्र सर्वेश्वर ही द्यु-भूमि रूप ब्रह्माण्ड का निर्माण करके अपने हाथों से पतनशील या अनित्य पञ्चभूतों से प्राणियों को मिलाकर गतिशील कर देता है। उसके सब ओर नेत्र हैं, उसके सब ओर मुख हैं, उसकी सब ओर भुजाएँ हैं और उसके सब ओर पैर हैं। अर्थात् क्योंकि वह सर्वेश्वर सर्वप्राणीरूप हैं, अतः उन-उन प्राणियों के नेत्र-मुख आदि उसी के हैं, ऐसा समझना चाहिए। (यजुर्वेद. महीधर. 17, 29)

विश्वकर्मा के स्वरूप और कर्मादि के सम्बन्ध में भाष्यकार सायण ने जो विचार दिया है, वह वैदिक मान्यता में लोकमान्यता का सुन्दर प्रतिष्ठापन है। पाँचवीं ऋचा के द्वारा देवों के शिल्पी भौवन नामक विश्वकर्मा जगत् के कारण विश्वकर्म-देव की स्तुति करते हैं— हे विश्वकर्मदेव! जो तुम्हारे उत्तम शरीर हैं, जो तुम्हारे मध्यम शरीर है और जो तुम्हारे अधम शरीर है, उन सब शरीरों को हमें यज्ञ करने के लिए मेरे हव्यभूत होने पर दो। हे हव्यान्नयुक्त! तुम स्वयं ही अपने पूर्वोक्त तीनों प्रकार के शरीरों को हवि से बढ़ाने वाले हो। इन तीन प्रकार के शरीरों के द्वारा उत्तम देवादि शरीरों को, मध्यम मनुष्यादि शरीरों को और अधम कृमि, कीटादि शरीरों को तुमने ग्रहण किया है। अधिक क्या कहें? इस प्रकार सम्पूर्ण जगत की उत्पत्ति होती है। उक्त भेद से अंगविहीन परमेश्वर का रूप न होने से उस सत् ने ईक्षण या दर्शन किया, मैं बहुत हो जाऊँ, अनेक प्रकार से

उत्पन्न होऊँ, इत्यादि छान्दोग्य उपनिषद की श्रुतियों (तदैक्षत बहुः स्यां प्रजायेय। छान्दोग्य. 6, 2, 3) से परमेश्वर का ही देवादि भेद से बहुत होना ज्ञात होता है।

इस प्रकार विश्वकर्मा और विश्वकर्म को परिभाषित करने का इन ऋचाओं में प्रयास हुआ है। यह आगे के सूक्त में भी स्पष्ट होता है जिसमें सृष्टि के लिए सर्वप्रथम जल को उत्पन्न करने का सन्दर्भ है। यह जीवन की परम आवश्यकता है। इसलिए कहा गया है कि शरीर अथवा तेज को उत्पन्न करने वाले, अद्वितीय और साहस के धनी विश्वकर्मा ने पहले जल को उत्पन्न किया। यह मान्यता तैत्तिरीयसंहिता में भी आई है— आपो वा इदमग्रे। (तैत्तिरीय. 7, 1, 5, 1) मनु ने भी कहा है— अप एव ससर्जादौ। (मनुस्मृति 1, 8)

त्रिष्टुप छन्दोबद्ध 82वें सूक्त के ऋषि विश्वकर्मा भौवन और देवता विश्वकर्मा हैं। इसके पहले ही मन्त्र से यह ध्वनित होता है कि द्यावा-पृथिवी के स्थिर होने पर जीवन तत्त्व का संचार विश्वकर्मा द्वारा किया गया—

चक्षुषः पिता मनसा हि धीरो घृतमेने अजनन्नम्नमाने।
यदेदन्ता अदद्दहन्त पूर्व आदिद् द्यावापृथिवी अप्रथेताम्॥ 1॥
विश्वकर्मा विमना आद्विहाया धाता विधाता परमोत संदृक्।
तेषामिष्टानि समिषा मदन्ति यत्रा सप्तऋषीन्पर एकमाहुः॥ 2॥
यो नः पिता जनिता यो विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा।
यो देवानां नामधा एक एव तं सम्प्रश्नं भुवना यन्त्यन्या॥ 3॥
त आयजन्त द्रविणं समस्या ऋषयः पूर्वे जरितारो न भूना।
असूर्ते सूर्ते रजसि निषत्ते ये भूतानि समकृण्वन्निमानि॥ 4॥
परो दिवा पर एना पृथिव्या परो देवेभिरसुरैर्यदस्ति।
कं स्विद्गर्भं प्रथमं दध्र आपो यत्र देवाः समपश्यन्त विश्वे॥ 5॥
तमिद्गर्भं प्रथमं दध्र आपो यत्र देवाः समगच्छन्त विश्वे।
अजस्य नाभावध्येकमर्पितं यस्मिन्विश्वानि भुवनानि तस्थुः॥ 6॥
न तं विदाथ य इमा जजानान्यद्युष्माकमन्तरं बभूव।
नीहारेण प्रावृता जल्प्या चासुतृप उक्थशासश्चरन्ति॥ 7॥

इस सूक्त में आई द्वितीय ऋचा की सायण ने अधियज्ञ और अध्यात्म के भेद से दो प्रकार की व्याख्या की है। महीधर ने जो भाष्य किया है, उसके अनुसार वह विश्वकर्मा प्रभु विशिष्ट मनःशक्ति सम्पन्न है और आकाश की भाँति व्यापक है

अथवा विशेष रूप से सृष्टि को छुड़ाने वाला अर्थात् संहर्ता है। पोषण करने वाला, उत्पन्न करने वाला और सर्वोत्कृष्ट एवं सम्पूर्ण सृष्टि को देखने वाला है। जहाँ कश्यपादि सप्त ऋषियों को परब्रह्म परमात्मा के साथ एकाकार हुआ बताया जाता है, वहाँ उन लोगों की इच्छित वस्तुएँ उस लोक में आहुति-रसभूत अन्न के साथ मिलकर विशेष हर्षोत्पादक हो जाती हैं। (यजुर्वेद महीधर. 17, 26)

तीसरी ऋचा से उनका महारूप लक्षित होता है कि जो विश्वकर्मा प्रभु हमारा उत्पादक और पालक है, जो परमेश्वर अनन्तकोटि ब्रह्माण्डों को धारण करने वाला है, जो सम्पूर्ण पुण्यादि से प्राप्त होने वाले धामों (स्थानों, नामों व जन्मों) को जानता है और सब प्राणियों एवं लोकों को जानता है, जो केवल एवं अद्वितीय होते हुए भी देवताओं के इन्द्र-वरुणादि विभिन्न नामों को धारण करता है अथवा जो एकमात्र सर्वोच्च शक्ति होने के कारण इन्द्रादि देवों के भिन्न-भिन्न नाम रखता है। उससे पृथक् हुए सब प्राणी अपने-अपने कर्म और अधिकार को पूछने के लिए उसी के पास जाते हैं अर्थात् सब प्राणियों को वही प्रभु अपने-अपने स्वभाव एवं कर्म में नियुक्त करता है। (उपर्युक्त महीधर. 17, 27)

इस प्रकार वैदिक पृष्ठभूमि में विश्वकर्मा सृष्टिकर्ता ही नहीं, उसके विकास-उन्नयन के लिए आवश्यक संसाधनों के प्रदाता भी सिद्ध होते हैं। दोनों सूक्तों की चौदह ऋचाएँ विश्वकर्मतत्त्व को रेखांकित करती प्रतीत होती हैं। वैदिक वाङ्मय की यही विशेषता है कि वे सूत्रवचन की तरह हैं और उनके उपयोगादि को ब्राह्मण, आरण्यकादि ग्रंथ ने सुरक्षित करने का प्रयास किया है।

शतपथब्राह्मण में विश्वकर्मा के लिए आज की तरह की मान्यता को कदाचित सबसे पहले सम्पादित किया गया है जहाँ उनको सभी का कर्ता कहा गया है। वहाँ यह मान्यता भी है कि स्वयं प्रकट होने वाले परमात्मा ने तप किया, उन्होंने पाया कि तप की अनन्तता नहीं है। अत: मुझे प्राणियों में स्वयं को, प्राणियों को स्वयं में और सब प्राणियों में स्वयं को देकर सर्वमेध का मार्ग प्रशस्त करना चाहिए—

अथो विश्वकर्मणे।

विश्वं वै तेषां कर्म कृतं सर्वं जितं भवति। (शतपथ. 4, 6, 4, 5)

एवं वाजसनेयकोक्ति है—

ब्रह्म वै स्वयम्भु तपोऽतप्यत। तदैक्षत न वै तपस्यानन्त्यमस्ति हन्ताहं भूतेष्वात्मानं जुहवानि चात्मनीति तत्सर्वेषु भूतेष्वात्मानं हुत्वा। (शतपथ. 13,7,1)

यहाँ वर्णित यज्ञ समस्त कामनाओं का पूरक कहा गया है। इसमें द्वादशाह का अतिदेश होता है। इसमें बारह दीक्षा, बारह उपसदा और दस सुत्याएँ होती हैं। आगे चलकर विश्वकर्मा में प्रजापति के गुण और धर्म को देखा गया। शतपथ ब्राह्मणकार ने ही इस मान्यता को स्वीकृत किया है—

प्रजापतिर्वै विश्वकर्मा। (शतपथ. 8, 2, 1, 10)

यही नहीं, काठकसंहिता ने भी स्वीकारा है—

विश्वा मे कर्म कृतानीति विश्वकर्मा ह्यभवत्। (काठक. 36, 10)

इसी आधार पर निरुक्तकार यास्कमुनि **'विश्वकर्मा सर्वस्य कर्ता'** स्वीकारते हैं। (निरुक्त 10, 25) निरुक्त में यह भी कहा है—

विश्वकर्मा सर्वमेधे सर्वाणि भूतानि जुहवांचकार स आत्मानमप्यन्ततो जुहवां चकार। तदभिवादिन्येषग्‍र्भवति य इमा विश्वा भुवनानि जुह्वदिति। (निरुक्त 10, 26)

विश्वकर्मा देवता के प्रति यह प्रबल मान्यता है कि वे सर्वदृष्टा, सर्वस्रष्टा, सर्वज्ञाता हैं। नाम, धारण और सृष्टि प्रलय के उपरान्त यह संसार उनमें ही लीन हो जाता है। यजुर्वेद में भी वही मान्यता आई है जो ऋग्वेद के उक्त सूक्त की पहली ऋचा की है। महीधर ने इसका भाष्य करते हुए कहा है— जो विश्वकर्मा इन सब प्राणियों को प्रलय काल में अपने अन्दर समेटकर स्वयं चैन से बैठ जाता है, अतीन्द्रिय ज्ञानी, सृष्टि यज्ञ का होता वह प्रभु हमारा पिता है। उसने एक से अनेक हो जाने की इच्छा से संसार-रचना रूप धन की कामना करते हुए प्रकृष्टतम रूप धारण कर फिर अपने से निकृष्ट दोपाये, चौपाये आदि प्राणियों में जीवरूप से प्रवेश किया।

महीधर ने चतुर्थ ऋचा का भाष्य करते हुए विश्वकर्मीय वृक्ष की धारणा दी है कि वह कौनसा वन था और कौनसा वह वृक्ष था जिसकी लकड़ी से विश्वकर्मा ने द्यु और पृथिवी को बनाया। हे ज्ञानवान् एवं विचारशील पुरुषो! मन-बुद्धि से विचार कर यह बात भी परस्पर पूछो कि भुवनों को धारण करते हुए विश्वकर्मा किस आधार पर खड़े हुए? अर्थात् कहाँ बैठकर उन्होंने भुवनों को रचा और धारण किया? (यजुर्वेद महीधर. 17, 20)

भाष्यकार सायण के सामने उनके देवत्व को स्वीकारने में कोई बाधा नहीं थी। तभी तो यह कहना पड़ता— **'य इमा' इति ससर्चं त्रयोदशं सूक्तं**

भुवनपुत्रस्य विश्वकर्मण आर्षं त्रैष्टुभं विश्वकर्मदैवत्यम्। तथा चानुक्रान्तं- 'य इमा विश्वकर्मा भौवनो वैश्वकर्मणं तु' इति। (ऋग्वेद, सायणभाष्य 10, 81, 1) भाष्यकार सायण ने इस समस्त प्रसंग को ऐतरेय आरण्यक (2, 4, 1), छान्दोग्योपनिषद् (6, 2, 1) और तैत्तिरीय आरण्यक (8, 6) के प्रमाणों सहित विश्लेषित किया है।

वह कहीं त्वष्टा के रूप में भी स्मरणीय है। **गर्भे नु नौ जनिता दम्पती कर्देवस्त्वष्टा सविता विश्वरूपः। नकिरस्य प्र मिनन्ति व्रतानि वेद नावस्य पृथिवी उत द्यौः॥** (ऋग्वेद 10, 10, 5) में मन्त्र में यमी ने यह मानते हुए संकेत दिया है कि त्वष्टा सर्वप्रेरक और सर्वव्यापी उत्पादनकर्ता देव है, उन्होंने गर्भ में ही यम-यमी को एक साथ रखकर दम्पति के रूप में सम्बद्ध किया है— यह विवस्वान् का स्वयं को दो धाराओं में विभाजन है।

आश्वलायनश्रौतसूत्र में विश्वकर्मा की विविध आहुतियों का सन्दर्भ मिलता है, जिनमें साकमेध कर्मों में वैश्वकर्म के एक कपाल की ऋचा के रूप में चौथी ऋचा मानी गई है— **विश्वकर्मन् हविषा वावृधानो या ते धामानि परमाणि यावमा।** (आश्वलायन. 2, 18) चातुर्मास्य याग के तीसरे पर्व की साकमेध संज्ञा है। इस पर्व का अनुष्ठान कार्तिकी पूर्णिमा के अवसर पर होता था और इसमें अनेकवती, सान्तपनीया और गृहमेधीया नामक इष्टियाँ होती हैं। (कात्यायन श्रौतसूत्र 5,6,1)

महापुराणादि में विश्वकर्मा

प्रारम्भिक पुराणों में विश्वकर्मा कथाख्यानों में संक्षिप्त स्थान बनाए हुए दिखाई देते हैं। वह रूप वैदिक स्वरूप से पृथक् ही है। इस परिवर्तित रूप का प्रारम्भ बौद्धकाल से होता है जहाँ ब्राह्मण परम्परा के इस देवता (विस्सकम्म) को अन्य देवताओं के साथ ही रखा गया है किन्तु वह नगर निवेशक ही अधिक दिखाई देते हैं। प्रो. ईश्वरशरण ने माना है कि इसका उत्स वैदिक और उत्तर वैदिक साहित्य की देव कथाएँ हैं। बौद्ध साहित्य की विश्वकर्माकथा वैदिक देवकथाशास्त्र की देन है। (भारतीय साहित्य तथा शिल्प में विश्वकर्मा, पृष्ठ 76)

ईसापूर्व लगभग द्वितीय शताब्दी, शुंगकाल में नाट्यशास्त्र का प्रणयन करते समय भरताचार्य ने विश्वकर्मा के किसी ग्रन्थ का सन्दर्भ दिया है। यह वर्णन नाट्यशाला के निर्माण के सम्बन्ध में है। भरत ने सर्वप्रथम विश्वकर्मा के मान प्रमाण को भी उद्धृत किया है—

प्रमाणं यच्च निर्दिष्टं लक्षणं विश्वकर्मणा।
प्रेक्षागृहाणां सर्वेषां तच्चैव हि निबोधत॥ (नाट्यशास्त्र 2, 12)

इसके बाद भरत ने लगभग अस्सी श्लोकों में जो वर्णन किया है, उसमें वास्तु के विभिन्न विषयों का समावेश मिलता है। यथा— निर्माण के लिए सूक्ष्म रजकण अणु से लेकर दण्ड के प्रमाण, तल व वर्णानुसार भूमि-विभाजन और उसकी ग्राह्यता, भूमि शोधन, सूत्रपात और उसका मुहूर्त, सूत्र निर्माण विधि, सूत्रच्छेदन के फलाफल, सूत्रप्रसारणावसर पर स्वस्ति वाचन, भूमि विभक्तीकरण, शुभ नक्षत्र योग में नींव की स्थापना, शिलान्यासावसर के योग्य व्यक्ति, दिक्पालों व वास्तुदेवताओं को बलि निवेदन, मुहूर्त-करण देखकर भित्योच्छ्राय, स्तम्भ निवेश और वर्णानुसार उसके मूल में दाप्य द्रव्य, विप्रादि का सम्मान और दान, स्तम्भ के लिए प्रार्थना पाठ, रंगपीठ, मत्तवारिणी आदि का निवेश, भरण योग्य मृत्तिका का शोधन-संशोधन, ऊह-प्रत्यूह, व्यालाकृतियों का सञ्जवन, निर्यूह एवं कुहर, वेदी सज्जा, जाल-गवाक्ष, धारणी, शालभंजिका, कपोतालियों की रचना इत्यादि।

इसी प्रकार संस्कृत काव्यों, निबन्धों में भी वह स्मरणीय हैं किन्तु सूर्य के तेज को कम करने वाले शाणधारक देव और विभिन्न देवी-देवताओं को आयुध या अलंकरण प्रदान करने वाले शिल्पकार के रूप में ही अधिक स्मरणीय हैं। पुराणों में प्रभास नामक आठवें वसु के पुत्र के रूप में विश्वकर्मा को समस्त शिल्पशास्त्रों का आचार्य माना गया है। मत्स्यपुराण में वर्णित है कि धर्म की दस पत्नियों में वसु से आठ पुत्रों— आप, ध्रुव, सोम, धर, अनिल, अनल, प्रत्यूष और प्रभास की उत्पत्ति हुई जो प्रभावशाली देवता के रूप में सम्पूर्ण दिशाओं में व्याप्त हैं। प्रभास से विश्वकर्मा उत्पन्न हुए जो शिल्पविद्या में निपुण और प्रजापति के रूप में प्रसिद्धि प्राप्त करने वाले सिद्ध हुए। वह प्रासाद, भवन, उद्यान, प्रतिमा, आभूषण, वापी, जलाशय, बगीचा और कूप आदि के निर्माण करने से देवताओं के बढ़ई कहलाए—

विश्वकर्मा प्रभासस्य पुत्रः शिल्पी प्रजापतिः।
प्रसादभवनोद्यानप्रतिमाभूषणादिषु।
तडागारामकूपेषु स्मृतः सोऽमरवर्धकि॥ (मत्स्य. 5, 27-28)

उक्त मत्स्यपुराण एक और महत्वपूर्ण जानकारी देता है कि विश्वकर्मा के अतिरिक्त अन्य आचार्य भी हुए हैं जिन्होंने वास्तुशास्त्रों का उपदेश किया था। उन

आचार्यों की संख्या अठारह हैं—

भृगुरत्रिर्वसिष्ठ विश्वकर्मा मयस्तथा।
नारदो नग्नजिच्चैव विशालाक्षः पुरन्दरः॥
ब्रह्माकुमारो नन्दीशः शौनको गर्ग एव च।
वासुदेवोऽनिरुद्धश्च तथा शुक्रबृहस्पती॥
अष्टादशैते विख्याता वास्तुशास्त्रोपदेशकाः। (मत्स्य. 251, 2-3)

उक्त मत्स्यपुराण में प्रभास की पत्नी का नाम नहीं आया है जबकि विष्णुपुराण में यह कहा गया है कि बृहस्पति की बहिन वरस्त्री थी, जो ब्रह्मचारिणी और सिद्ध योगिनी थी और अनासक्त भाग से समस्त भूमण्डल में विचरती थी। वह आठवें वसु प्रभास की पत्नी हुई। उससे सहस्त्रों शिल्पों या कारीगरियों के कर्ता और देवताओं के शिल्पी महाभाग प्रजापति विश्वकर्मा का जन्म हुआ तथा जिन्होंने देवताओं के लिए अनेकानेक विमानों की संरचना की और जिनकी आविष्कृता शिल्पविद्या के आश्रय से बहुत-से मनुष्य जीवन निर्वाह करते हैं। उनके चार पुत्र हुए जिनके नाम थे— अजैकपाद, अहिर्बुध्न्य, त्वष्टा और परमपुरुषार्थी रुद्र —

ब्रहस्पतेस्तु भगिनी वरस्त्री ब्रह्मचारिणी।
योगसिद्धा जगत्कृत्स्नमसक्ता विचरत्युत्।
प्रभासस्य तु सा भार्या वसूनामष्टमस्य तु॥
विश्वकर्मा महाभागस्यां जज्ञे प्रजापतिः।
कर्ता शिल्पसहस्त्राणां त्रिदशानां च वर्द्धकी॥
भूषणानां च सर्वेषां कर्ता शिल्पवतां वरः।
य सर्वेषां विमानानि देवतानां चकार ह।
मनुष्याश्चोपजीवन्ति यस्य शिल्पं महात्मनः॥
तस्य पुत्रास्तु चत्वारस्तेषां नामानि मे शृणु।
अजैकपादहिर्बुध्न्यस्त्वष्टा रुद्रश्च वीर्यवान्।
त्वष्टुश्चाप्यात्मजः पुत्रो विश्वरूपो महातपाः॥ (विष्णु. 1,15,118-21)

इससे लगता है इस काल में विश्वकर्मा को पौराणिक देवता मान लिया था और उनके वंशक्रम पर ध्यान दिया जा रहा था, पुराणों की यह एक विशेषता भी

है। मामूली परिवर्तन के साथ यही वर्णन महाभारत (आदिपर्व 2590-93), वायुपुराण (66, 27-31) और गरुडपुराण (6, 36 व अन्य) आदि में भी आया है। यहाँ स्वायम्भुव मन्वन्तर में उनकी स्थिति बताई गई है। अग्निपुराण में विश्वकर्मा को सहस्रों कलाओं का सूत्रधार बताया गया है—

कर्ता शिल्पसहस्राणां त्रिदशानां च वर्द्धकिः।
मनुष्याश्चोपजीवन्ति शिल्पं वै भूषणादिकम्॥ (अग्नि. 18, 40-41)

सूर्य के तेज को कम करने के लिए शाण पर चढ़ाकर उसकी किरणों को घिसने की कथा साम्बपुराण आदि में आई है। सम्भव है कि यह कथा आदित्यपुराण में भी रही हो। ब्रह्मपुराण में विष्णु ने विश्वकर्मा को अपना सहाय और समस्त शिल्प-कलाओं में निपुण बताया है—

अयं मम सहायस्तु आगतः शिल्पिनां वरः।
विश्वकर्मसमः साक्षान्निपुणः सर्वकर्मसु॥ (ब्रह्म. 50, 40)

ब्रह्मवैवर्तपुराण के श्रीकृष्णजन्मखण्ड के 14वें अध्याय में उनके नगर नियोजक का रूप सामने आता है। हालांकि यह उल्लेख हरिवंश और कतिपय बौद्ध ग्रन्थों में भी यथारूप आया है। उन्हें श्रीकृष्ण वास्तुविद्या का उपदेश करते हैं, समुद्रतट पर निर्माण योग्य दुर्ग, कक्ष, भवन, आंगन, शालाएँ, शिविर में रोपणीय वृक्षादि का निर्देश करते हैं। इसी आधार पर विश्वकर्मा ने द्वारकापुरी का निर्माण किया था। भागवत के दशम स्कन्ध में भी द्वारकापुरी के निर्माण का विवरण आया है। (59, 50-53)

देवीपुराण में आया है कि पूर्वकाल में कल्पवृक्ष से सबकी इच्छाओं की पूर्ति होती थी। उस काल में दैत्यों के भय से देवगणों ने सुमेरु रूपी दुर्ग का आश्रय लिया। तब ब्रह्मा ने महामति विश्वकर्मा को नियुक्त किया और उन्होंने सभी लोकों, प्रजाओं के लिए जल, शीत, तेज के कष्ट के निवारण के लिए घरों का निर्माण किया—

तदा सदा भवत् सिद्धिः कल्पवृक्ष समुद्भवा।
देवापि मेरुमाच्छन्ना दुर्गदानवशङ्कया:॥
ततो ब्रह्मा समाधाय विश्वकर्मा महामतिः।
गृहाणि चक्रिरे तासु प्रजासु सुख हेतवे॥
जल-शीता-तपादीनां प्रतिघाताय चक्रिरे।
यथा प्रीतिर्यथा योगं निकेतानि पृथक् पृथक्॥ (देवीपुराण 72, 7-9)

यही कथा सहदेवाधिकार आख्यान के रूप में वायुपुराण और विस्तार से समरांगण सूत्रधार में आई है। स्कन्दपुराण के नागरखण्ड में सोमनाथ के वर्णन में विश्वकर्मा के कार्यों का उल्लेख है। चूंकि स्कन्दपुराण का नागरखण्ड गुजरात में ही सम्पादित हुआ है और चालुक्यराज कुमारपाल के जीवनकाल के उत्तरार्ध में इसका पुनर्सम्पादन हुआ, तब गुजरात और पश्चिमी भारत में सोमनाथ मन्दिर के निर्माणादि से जुड़े समुदाय ने विश्वकर्मविद्या का प्रसार सोमपुरा होकर किया तब इस समुदाय की परम्पराओं को ससम्मान पुराण में प्रतिष्ठा मिली हो। हालांकि इस पुराण के अन्य स्थलों पर कुछ भिन्नता भी मिलती है लेकिन, इस पुराण में विश्वकर्मा सम्बन्धी सर्वाधिक विवरण मिलता है क्योंकि इस पुराणकाल में सर्वाधिक स्थापत्य कार्य हुए और विश्वकर्म समुदाय की पश्चिम से लेकर उत्तर और दक्षिण तक विशेष पूछ रही। स्कन्दपुराण के कई स्थल इस प्रसंग में परीक्षणयोग्य है। (यथा— 1, 3, 6, 134; 6, 180, 14; 7, 1, 23, 4; 7, 1, 23, 3; 5, 3, 194, 48 इत्यादि)

काशीखण्ड के उत्तरार्द्ध में विश्वकर्मेश्वर लिंग की महिमा के अध्याय में कहा गया है कि त्वष्टा प्रजापति के पुत्र विश्वकर्मा हुए, जो ब्रह्मा के दूसरे रूप हैं। गुरुकुल में एक दिन उनसे गुरु ने वर्षाजन्य कष्टों से मुक्ति देने वाली नित-नूतन पर्णशाला के निर्माण, गुरुपत्नी ने देह की आवश्यकतानुसार वल्कल निर्मित और नित्यस्वच्छा, सुन्दर कंचुकी बनाने, गुरुपुत्र ने पंकस्पर्श से विहीन रहने वाली, सदा आरामदायक, पृथ्वी सहित जलतल पर गमन योग्य खड़ाऊ निर्माण और गुरुपुत्री ने स्वर्ण के दो कर्णफूल और कन्याओं के मनोरंजन के योग्य हाथीदाँत के खिलौने बनाने का आग्रह किया। (स्कन्द. 5, 3, 194; 4, 87, 64; 4, 86,1; 4, 97, 69 आदि)

पुराण में आया है कि उन्होंने भगवान् विश्वेश्वर की बहुत सेवा की। उन्हीं की कृपा से विश्वकर्मा को धातु, काष्ठ, पत्थर, मणि, रत्न, फूल, वस्त्र, कर्पूर आदि सुगंधित पदार्थ, जल, कन्दमूल, फल, द्रव्य और वल्कल आदि से वस्तुओं के निर्माण की कला की प्राप्ति हुई। मन्दिर निर्माण की कला, शृंगार, आभूषण, रसोई के संस्कार, सभी प्रकार के शिल्पकर्म, नृत्य, गीत और वाद्य सम्बन्धी वस्तुएँ बनाने की विद्या सुलभ हुई और आशीर्वाद मिला कि वे शिल्प निर्माण की कला में दूसरे ब्रह्मा समझे जाएँगे। अनेक प्रकार की यन्त्र, भाँति-भाँति प्रकार के आयुध, जलाशय, उत्तम दुर्ग, इन्द्रजाल सहित सब कर्मों में कुशलता, सब बुद्धियों की श्रेष्ठता और सब मनोवृत्तियों का ज्ञान होने से वह विश्व में अखिल कर्मों के

ज्ञाता होकर विश्वकर्मा नामधारक हुए।

वाल्मीकीय रामायण में विश्वकर्मा द्वारा राक्षसों के लिए लङ्का की राजधानी बनाने (उत्तरकाण्ड 2, 26), मुनि अगस्त्य के लिए महल बनाने (किष्किन्धाकाण्ड 41, 35), सूर्य (तत्रैव 42, 44) और कुबेर (तत्रैव 43, 21) के लिए उचित स्थल के निर्माण का वर्णन मिलता है। ब्रह्मा के लिए प्रसिद्ध पुष्पक नामक विमान का निर्माण विश्वकर्मा की ही देन है। (सुन्दरकाण्ड 9, 11) मार्कण्डेयपुराणोक्त दुर्गासप्तशती में विश्वकर्मा द्वारा भगवती को अति निर्मल परशु और अनेकानेक अस्त्र और अभेद्य कवच, मस्तक और वक्षःस्थल पर धारण करने के लिए कभी न मुरझाने वाली कमलों की माला भेंट करने का वर्णन आया है—

विश्वकर्मा ददौ तस्यै परशुं चातिनिर्मलम्॥
अस्त्राण्यनेकरूपाणि तथाभेद्यं च दंशनम्।
अम्लानपङ्कजा मालां शिरस्युरसि चापराम्॥ (दुर्गासप्तशती 2, 27-28)

ऐसे ही प्रसंग लक्ष्मी के आविर्भाव अवसर के सन्दर्भ में भी मिलते हैं। (विष्णु. 1, 9, 104) शिव, विष्णु आदि देवताओं के लिए आयुध बनाकर प्रदान करने के सन्दर्भ भी उपलब्ध हैं। (विष्णु. 3, 11, 12; हरिवंश 1, 9, 62; पद्मोत्तर. 9, 35; लिंग. पूर्व. 65, 16 आदि) विश्वकर्मा के किसी ग्रन्थ में रत्नाभूषणों का भी विवरण विद्यमान था, जैसा कि अपराजितपृच्छा में शृंगाराभरणों के निर्माण का पूरा सूत्र मिलता है। संयोगवश ईश्वरदीक्षित कृत रत्नपरीक्षा ग्रन्थ में विश्वकर्मीय शास्त्र से पार्थिव, भूम्याश्रित, जलजन्य, तोयभवाश्रित, ज्वलनसम्भव, हुतवहाश्रित, वायुजन्य, मारुतसंश्रित, आकाशजन्य और साधारण— इस प्रकार पाँचों ही तत्त्वों से उत्पन्न होने वाली और उनके आश्रित रहने वाली मणियों की परीक्षा से सम्बन्धित श्लोक उद्धृत हैं। (रत्नपरीक्षा, तंजावुर, 1969, पृष्ठ 37-80)

कालिदास ने कुबेर के लिए विश्वकर्मा द्वारा बनाए गए रथ का सन्दर्भ दिया है। रघुवंश में यह उल्लेख है—

वैमानिकाः पुण्यकृतः त्यजन्तु मरुतां पथि।
पुष्पकालोकसङ्क्षोभं मेघावरणतत्पराः॥ (रघु. 12, 40; 16, 46)

विश्वकर्मा ने धनद के लिए रथ या विमान बनाया था, वह शिल्पग्रन्थों में प्रासाद के रूप में वर्णित हुआ है। दक्षिणी भारत में प्रासाद को विमान और रथ भी कहा जाता है। यहाँ बहुत छोटे-छोटे प्रमाणों से विश्वकर्मा के सम्बन्ध में आख्यानों,

सन्दर्भों को जुटाया गया है। ऐसे और भी कई प्रसंग मिल सकते हैं। ये वस्तुतः एक वैदिक देवता के लोक में विख्यात होकर विद्यमान रहने और आख्यानबद्ध होते जाने की परम्परा का परिचायक है। किन्तु, इस नाम से दो देवताओं और फिर, 'विश्वकर्मा' एक समुदाय के कला-सिद्धत्व प्राप्त व्यक्ति अथवा आचार्य के प्रति सम्मान सूचक-सम्बोधन के रूप में भी रूढ़ होता चला गया।

शिल्प-स्थापत्य शास्त्रों के प्रवर्तक विश्वकर्मा

शिल्प और स्थापत्य शास्त्रों में विश्वकर्मा अति ही सम्मान्य देवता हैं। उनको शिल्प का प्रवर्तनकर्ता माना गया है। उनको ब्रह्मा का पुत्र बताया गया है। ब्रह्मा ने पूर्व मुख से विश्वकर्मा, दक्षिणी मुख से मय, उत्तरी मुख से त्वष्टा और पश्चिमी मुख से मनु को उत्पन्न किया था, मानसार में यह प्रसंग आया है—

पूर्वानने विश्वकर्मा जायते दक्षिणे मयः।
उत्तरस्य मुख त्वष्टा पश्चिमे तु मनु स्मृतः॥ (मानसार, 2, 7)

सनत्कुमारवास्तुशास्त्रम् में ब्रह्मा, इन्द्र, यम, भार्गव, आंगिरस, गौतमी, गार्ग्य, मनु, व्यास, भृगु के साथ ही विश्वकर्मा को वास्तुविशेषज्ञ बताया गया है। शिल्परत्नम् के रचयिता श्रीकुमार ने सर्वप्रथम, मय से भी पूर्व त्रिलोकादि के सर्जक-शिल्पी के रूप में विश्वकर्मा का स्मरण इस रूप में किया है कि अपने कठोरतम अंगों से जिसने आदियुग में ही निवासगृहों की रचना की। उनको आरामदायक बनाकर प्राणियों को प्रदान किया है जिसके फलस्वरूप में वे सूर्य स्वरूप बने हैं, ऐसे विश्वकर्मादेव नित्य ही अर्चनीय-पूजनीय है। वह समस्त लोकों के उदय के लिए सूर्य रूपवत् बने हुए हैं—

पारुष्यङ्गो येन चादौ युगानां वास्या तष्ट्वा स्निग्धतां प्रापितोऽर्कः।
नित्यं देवैरचितोविश्वकर्मा सोऽयं भूयात् सर्वलोकोदयाय॥ (शिल्प. 1, 2)

वराहमिहिर कृत बृहत्संहिता की विवृत्ति में भट उत्पलोद्धृत कतिपय श्लोक विश्वकर्मा प्रकाश में प्राप्त होते हैं जिसे विवृत्तिकार ने 'वास्तुतन्त्र' नामक ग्रंथ से उद्धृत बताया है। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि विश्वकर्माप्रकाश अपने प्रारम्भिक नाम वास्तुतन्त्र के रूप में तब तक अस्तित्व में आ चुका था। इस ग्रन्थ के वर्तमान पाठ का स्वरूप अनियोजित रूप में है और यही इस ग्रन्थ की पुरातनता का प्रमाण है। इस ग्रन्थ के आरम्भ में कहा गया है कि यह पूर्वकाल में शिव ने कहा था, बाद में इसे पराशर ने बृहद्रथ से कहा, बृहद्रथ ने विश्वकर्मा से कहा और इस

पर यह अनेक भेदों वाला हो गया—

यदुक्तं शम्भुनां पूर्वं वास्तुशास्त्रं पुरातनम् ॥
पराशरः प्राह बृहद्रथाय बृहद्रथः प्राह च विश्वकर्मणे ।
स विश्वकर्मा जगतःहिताय प्रोवाच शास्त्रं बहुभेदयुक्तम् ॥

(विश्वकर्माप्रकाश 1, 3-4)

इसके अतिरिक्त इसके अन्त में कहा गया है कि यह वास्तुशास्त्र पहले ब्रह्मा ने गर्ग मुनि से कहा। गर्ग से पराशर को प्राप्त हुआ। पराशर से बृहद्रथ को मिला जिसने विश्वकर्मा को कहा। विश्वकर्मा ने जगहित में वासुदेव आदि से कहा—

इति प्रोक्तं वास्तुशास्त्रं पूर्वं गर्गाय धीमते ॥
गर्गात्पराशरः प्राप्तस्तम्मात्प्राप्तो बृहद्रथः ।
बृहद्रथाद्विश्वकर्मा प्राप्तवान् वास्तुशास्त्रम् ॥
स विश्वकर्मा जगतो हितायाऽकथयत् पुनः ।
वासुदेवादिषु पुनर्भूलोके भक्तितोऽब्रवीत् ॥ (उपर्युक्त 13, 111-113)

उक्त विवरण से विश्वकर्मा के ग्रन्थ की परम्परा ही मिलती है। अल्पज्ञात 'विश्वकर्मीयशिल्प' नामक ग्रन्थ का आरम्भ विश्वकर्मोत्पत्ति अध्याय से हुआ है किन्तु इसमें विश्वकर्मा की उत्पत्ति की अपेक्षा विश्वकर्मीयशिल्प शास्त्र की रचना स्थली कैलास पर्वत के सौन्दर्य सहित द्विबाहु विश्वकर्मा और उनके साथ तक्षक, वर्द्धकि, स्थपित, स्थापक, शिल्पी और रथकारों के कर्म की प्रशंसा की गई है—

कैलासशिखरे रम्ये नानारत्नसमाकुले ।
नानामृगसमाकीर्ण नानावृक्षसमावृत्ते ॥
समीक्ष्य विश्वकर्माणं तस्य मे सृजतीश्वरः ।
द्विबाहु विश्वकर्मा च तक्षकः वर्द्धकिस्तथा ।
स्थपतिः स्थापकः शिल्पी रथकारः उदीरितः ॥
अथ विश्वं करोतीति विश्वकर्मा भवत्स्वयम् ।
सर्वलक्षणंतः शुद्धे तस्मान्तक्षक ईरितः ॥
देवालयादिकान् सर्वान् वर्द्धयेदिति वर्द्धकी ।
दृढ़ानि भेदयेदिह स्थपतिर्नामतः स तु ॥
पर्वतानि भुवश्चैव स्थापत्याखिलानि च ।

स्थापकः प्रोच्यते सर्वं शिल्पिभिः शिल्पिरित्यपि ॥

त्रिपुरं दग्धकामस्य शिवस्य परमेष्ठिनः ।

रथस्तु जगदाकारं कृतवान् परमं शुभम् ॥

रथकार इति प्रोक्ता विश्वकर्मा स एव हि ॥ (विश्वकर्मीयशिल्प 1, 1 व 7, 9-17; नोटिसेस ऑफ संस्कृत मैनुस्क्रिप्ट्स, राजा राजेन्द्रलाल मित्रा व हरप्रसाद शास्त्री, पुनर्मुद्रण दिल्ली, 1991, पृष्ठ 142; नगेन्द्रनाथ वसु, हिन्दी विश्वकोश भाग 23, पृष्ठ 55)

इन श्लोकों में कहा गया है कि कैलास पर्वत पर जहाँ नाना प्रकार के रत्न पाए जाते हैं और मृगादि अनेक पशु विहार करते हैं और अनेक वृक्षों की सघन छाया रहती है, वहाँ सृजन के देवता विश्वकर्मा विराजित हैं जो दो भुजाकार हैं। वे तक्षक, वर्द्धकि, स्थपति, स्थापक, शिल्पी और रथकार के रूप में हैं। इनमें जो विश्वकर्मा हैं, वे विश्व को करने वाले भगवान् स्वयं हैं। सभी आचार लक्षणों से जो शुद्ध हैं, उनको तक्षक कहा गया है। जो देवालय आदि की अभिवृद्धि करते हैं, वे वर्द्धकि कहे जाते हैं। जो निर्माण कार्यों को दृढ़ीभूत करते हैं अथवा गिराते हैं, वे स्थपति नाम वाले होते हैं। पर्वत और पृथ्वी पर जो सभी प्रकार के स्थापत्य का कार्य करते हैं, वे स्थापक कहे जाते हैं। नाना शिल्पों के सृजनकर्ता को शिल्पी कहा जाता है। काम के त्रिपुर का परमेष्ठिन शिव ने जब दहन किया तब उनके गमन के लिए जिन्होंने श्रेष्ठ और सुन्दर जगदाकार वाहन रथ बनाया वे रथकार कहे गए— विश्वकर्मा ने स्वयं ऐसा कहा है। इस प्रकार यहाँ तक्षकादि छह शिल्पियों को विश्वकर्मा कहा गया है।

अपराजितपृच्छा नामक 12वीं-13वीं सदी के ग्रन्थ में गन्धमादन पर्वत पर विश्वकर्माश्रम का वर्णन आता है जहाँ पर महाओजस् तेजस्वी भगवान विश्वकर्मा सुखासन अवस्था में स्थित कहे गए हैं। यह वर्णन अलोरा स्थित विश्वकर्मीय मन्दिर से अभिन्न लगता है। उक्त ग्रन्थकार का मत है कि भगवान् विश्वकर्मा वेद (ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद) एवं वेदांगों (शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष एवं छन्द) और तत्त्व (कूटस्थ पुरुष, प्रकृति, महत्तत्त्व, अहंकार, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, हस्त, पाद, जिह्वा, लिंग, गुह्यांग, श्रवण, त्वक्, चक्षु, रसना, घ्राण तथा मन) के मर्मज्ञ और सर्वशास्त्रों के विशारद है, सर्वविज्ञानवन्त है और मानादि प्रमाणों के अगाध सिन्धुरूपेण ज्ञान के भी सर्वज्ञ है।

यह भी कहा गया है कि उनका तेजोमय स्वरूप चतुर्भुज हैं और ब्रह्मतेज से तप्त होकर तपाए गए स्वर्ण, हेमकुन्दन के समान जगमगाहट कर रहा है। उनके कानों में दीप्त कुण्डलों की शोभा वृद्धिस्पद है और उनके विशाल ललाट पर ज्ञान-चक्षु त्रिनेत्र और सिर पर चन्द्रमा का दिव्य दर्शन हैं। उनके वाम हाथ में अक्षसूत्र हैं और दक्षिणी हाथ में कमण्डलु है। इसी प्रकार उनके ऊपर के बाँये हाथ में (शिल्पविज्ञान की) पुस्तक और ऊपरी दायें हाथ में वे जपमाला को धारण किए हैं। ऐसी सुख मुद्रा में भगवान् विश्वकर्मा ज्ञानप्रदाता, मोक्षप्रदाता और विश्व के दुखों के निवारक और सृष्टिकर्ता के रूप में अनेकों कुतूहल, आश्चर्यजनक कार्यों को पूरा करते हुए विनोदपूर्वक, प्रसन्नचित्त से विराजित है। विश्वकर्मा के अनेक नाम विश्रुत बताए गए हैं— विश्वकृत, विश्वकर्मा, त्वष्टा, देववर्द्धिकी, भूर्भुवः भुवनेश, स्वर्गदेव और परम्परानुसार स्मरणीय प्रभास वसु के पुत्र अथवा नन्दन—

> **विश्वकृद्विश्वकर्माणं त्वष्टारं देववर्धकिम्।**
> **भूर्भुवर्भुवनेशस्य स्वर्गदेवस्य विश्रुतम्॥**
> **पुनरुच्चार्य नामाथ प्रभासवसुनन्दनम्।** (अपराजित. 1, 45-51)

इसी ग्रन्थ में विश्वकर्मा के जय, विजय, सिद्धार्थ और अपराजित नामक चार पुत्रों का वर्णन हैं और उनके द्वारा रचे गए उक्त नामाभिधान वाले ग्रन्थों का सन्दर्भ भी मिलता है। (अपराजित. सूत्र 34) यूँ ये नाम इससे कुछ काल पहले ही मिलने आरम्भ होते हैं और इस काल तक विश्वकर्मा को प्रभास के पुत्र के रूप में प्रतिष्ठा मिल चुकी थी। विश्वकर्मीय मानस-पुत्रों की परम्परा कदाचित, धाराधिप भोजराज (1010-1045) कृत समरांगण सूत्रधार से सामने आती है। ग्रन्थकार ने इस रूप में चारों का ही स्मरण किया है—

> **जयो-विजय-सिद्धार्थौ चतुर्थश्चापराजितः।**
> **तमुपागम्य शिरसा नेमुः प्राञ्जलयो मुनिम्॥** (समरांगण. 2, 3)

उक्त ग्रन्थ की पृष्ठभूमि के रूप में कहा गया है कि विश्वकर्मा ने ही चारों को वास्तु-विनिवेश का निर्देश किया था— तुम चारों ही दिशाओं में पृथक्-पृथक् जनों के लिए आश्रय स्थान, उनके रहने के लिए निर्धारित व निर्मित करो। इन निर्मितियों के बीच-बीच में अन्तरपथ, सागर, शैल-पर्वत, नदियों का विधान भी रखते हुए महाराज पृथु के भय को शान्त करने हेतु दुर्ग की रचना भी करें। प्रत्येक वर्ण की प्रकृति के अनुसार लक्षणों वाले संस्थान और आवासों को प्रत्येक

ग्राम में, प्रत्येक पुर और प्रत्येक पत्तन में बनाओ। इस प्रकार से उन सभी मानसपुत्रों को समस्त ज्ञान को सार रूप में अच्छी प्रकार से समझाते हुए उनके प्रति इस पृथ्वी का स्थान निर्धारित करके प्रभासतनय विश्वकर्मा निवृत्त होकर सन्तुष्ट हो गए—

भवन्तः पुनरागत्य चत्वारोऽपि चतुर्दिशम्।
तांस्तान् निवेशान् कुर्वन्तु पृथग्जनकृताश्रयान्॥
अन्तरेष्वध्वपाथोधिशैलानां सरितां तथा।
विधातव्यानि दुर्गाणि नृपाणां भयशान्तये॥
वर्णप्रकृतिवेश्मानि संस्थानानि च लक्ष्मभिः।
विधेयानि प्रतिग्रामं प्रतिपूः प्रतिपत्तनम्॥
तानित्थमात्मतनयानभिधाय सम्यक्
सारार्थभूतमपरिस्फुटतोज्झितं च।
स्थनार्पितोरुभरनिर्वृचित्तवृत्तिस्तूष्णीं
प्रभासतनयो नयविज्जगाम॥ (समरांगण. 2, 12-15)

किन्तु, ग्रन्थकार यह विस्मृत कर जाता है कि जिस विश्वकर्मा के कथन से ग्रन्थ निरन्तर बढ़ता है, वही विश्वकर्मा पुष्पक नामक प्रासाद के निर्माण के लिए कहते हैं कि ऐसा विमान पूर्वकाल में विश्वकर्मा ने कुबेर के लिए बनाया था—

इदानीं पुष्पकं नाम प्रासादमभिदध्महे।
निर्मितो धनदस्यार्थे (यः) पूर्वं विश्वकर्मणा॥ (समरांगण 57, 141)

ऐसी दोहरी स्थिति अपराजितपृच्छा में भी एक स्थल पर आई है। इस प्रसंग में ऐसा लगता है कि पूर्वमध्यकाल तक विश्वकर्मा एक सम्मानोपाधि के रूप में प्रचलित थी और जो भी प्रधान शिल्पी अथवा श्रेष्ठ शिल्पाचार्य होता, उसको इस सम्मान से अलंकृत किया जाता था किन्तु वे सभी महाविश्वकर्मा अथवा आदि विश्वकर्मा के प्रति अतिशय आदर रखते हुए अपने प्रत्येक कार्य को उनके अनुग्रह से प्रेरित और तद्‌रूपकात्मक स्वीकारते थे।

महाविश्वकर्मपुराण : संक्षिप्त परिचय —

उक्त सन्दर्भों के विश्लेषण से विदित होता है कि शिल्प-स्थापत्य के महान् देवता के साथ-साथ विश्वकर्मा एक शिल्पी समुदाय की संरचना करने वाले

स्रोत-देव के रूप में स्वीकार्य रहे हैं। उनके नाम और यशपूर्ति के अर्थ में पुराण रचना हुई है। हालांकि वैदिक वाङ्मय सहित महापुराणों, उपपुराणों आदि में जहाँ कहीं विश्वकर्मा के सम्बन्ध में कोई अध्याय या सन्दर्भाख्यानादि आए हैं, उनको अलग से संगृहीत कर कुछ विद्वानों ने 'विश्वकर्मापुराण' नाम से ग्रन्थ तैयार किए थे।

इनमें श्रीरविशंकर आनन्द स्वरूप शास्त्री (दिल्ली) द्वारा हिन्दी और श्रीरमाशंकर मुक्ताशंकर भेषी (अहमदाबाद) द्वारा गुजराती में तैयार ग्रन्थ प्रचलन में रहे हैं। इसी नाम से एक ग्रन्थ सिवान बिहार से निकला, जो श्रीकृष्ण शर्मा 'सानग' द्वारा नौ अध्यायों में संकलित किया गया। पिछली सदी में सम्पूर्ण विश्वकर्मा उत्पत्ति, पूजन एवं उपासना विधि को लेकर तैयार पहले विश्वकर्मापुराण के नाम से तैयार ग्रन्थ में बयालीस अध्याय रखे गए जिसमें वैदिक, उपनिषद और पौराणिक ग्रन्थों में विश्वकर्मा देवता के सम्बन्ध में प्राप्त उल्लेखों एवं महात्म्य सन्दर्भों को संगृहीत किया गया था। यह श्रद्धालुओं द्वारा प्रयोग में लाया जाता रहा। (भारतीय सहित्य तथा शिल्प में विश्वकर्मा : ईश्वरशरण विश्वकर्मा, दिल्ली 2002 ई., पृष्ठ 24-25) इस प्रकार एक पुराण पण्डित राकेश शास्त्री ने पॉकेट बुक्स के लिए तैयार किया जिसमें इसी प्रकार की सामग्री को बावन शीर्षकों सहित संयोजित किया गया। एक अन्य पाठ बरेली से चमनलाल गौतम के सम्पादन में निकला हुआ मिलता है। मराठी में भी एक ग्रन्थ इस नाम से उपलब्ध होता है।

किन्तु, प्रस्तुत 'महाविश्वकर्मपुराण' एक स्वतन्त्र रचना है। यह पुराण ऋषियों आदि के नाम से लिखे गए पुराणों की कोटि की है। हालांकि जिन पुराणों, उपपुराणों और निबन्धादि में पुराणों की सूचियाँ मिलती हैं, उनमें प्रस्तुत पुराण का नाम नहीं मिलता। स्कन्दपुराण के रेवाखण्ड व प्रभासखण्ड, सूत संहिता के शिव माहात्म्यखण्ड व सौरसंहिता, पद्मपुराण के पातालखण्ड, देवीभागवत के प्रथम स्कन्ध, गरुडपुराण, वायुपुराणोक्त रेवामाहात्म्य, कूर्मपुराण के पूर्वखण्ड, ब्रहद्धर्मपुराण के पूर्वखण्ड, विन्ध्य माहात्म्य में बृहद्दौशनपुराण, एकाम्रपुराण, पराशरोपपुराण, मुद्गलपुराण सहित मधुसूदन सरस्वती कृत प्रस्थानभेद सहित परवर्ती ग्रन्थों स्मृतितत्त्व, नित्याचारप्रदीप, चतुर्व्वर्ग्ग चिन्तामणि, वीरमित्रोदय के परिभाषाप्रकाश, भक्तिरत्नाकर, शब्दकल्पद्रुम, वाचस्पत्यम् कोश आदि में अनेक पुराणों और उपपुराणों आदि की सूचियाँ मिलती हैं किन्तु उनमें प्रस्तुत महाविश्वकर्मपुराण का नामोल्लेख नहीं आया है।

ऐसी स्थिति में दो मतों पर विश्वास होता है। पहला तो यह कि इस पुराण की रचना परवर्तीकाल में हुई है और दूसरा, यह अधिक ख्यात नहीं हुआ। तथापि, यह पुराण अपनी रचना प्रक्रिया और विषयानुक्रम के आधार पर स्वतन्त्र ग्रन्थ लगता है। इसमें अन्य पुराणोचित विश्वकर्मा विषयक सामग्री का अभाव ही अधिक है। यही नहीं, इसमें आचारशास्त्र की सामग्री अधिक है। इसमें वैदिक विश्वकर्मीयवृक्ष की धारणा नवीन रूप लिए है और विश्वकर्मीय सन्ततियों के रूप में मनु, मय, त्वष्टा, शिल्पी और विश्वज्ञ (दैवज्ञ) पाँच वर्गों की परम्परा का प्रतिपादन है जो अन्यान्य प्रमाणों से सर्वथा पृथक् प्रतीत होता है।

सौरपुराणादि में पुराण, उपपुराण, खिलादि के लक्षणों के लिए कहा गया है कि जिसमें सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर, वंशानुचरित ये पाँच लक्षण हों, वे पुराण हैं। इनमें ब्रह्मादि अठाहरपुराण आते हैं, शेष अपने न्यूनाधिक लक्षणों से उपपुराण अथवा खिल के अन्तर्गत होते हैं—

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।
वंशानुचरित चैव पुराणं पञ्चलक्षणम्॥
ब्रह्मादीनां पुराणानामुक्तमेतत्तु लक्षणम्।
एतच्चोपपुराणानां खिलत्वाल्लक्षणं स्मृतम्॥ (सौरोपपुराण 9, 4-5)

ऐसे में महाविश्वकर्मपुराण को उपपुराणों की सूची के उपरान्त कोटि का स्वीकारा जाना चाहिए। यह औपपुराण या खिल की कोटि का माना जा सकता है। जिस क्रम में पराशरोपपुराण, वसिष्ठोपपुराण, भार्गवोपपुराण, वारुणोपपुराण आदि मिलते हैं, उसी क्रम में महाविश्वकर्मपुराण को गिना जा सकता है। इस पुराण पर शैवमत का यथेष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। पुराणकार स्पष्ट करता है कि शिव ने विश्वकर्मा की महिमा को कार्तिकेय के प्रति कहा था। उसे ही योगीन्द्राचार्य श्रीकालहस्ति ने महाराजा सुव्रत को सुनाया था—नमस्ते कालहस्तीन्द्रा! कुमारायेश्वरोदितः। को ब्रूहि विश्वकर्मेति देवो विश्वाधिनायकः॥ (2, 1) इस प्रकार यह पूर्व परम्परा को लेकर रचा गया है।

उपलब्ध पाठ में कुल 34 अध्याय है। इसमें अध्यायानुसार निम्न विषयों का वर्णन हैं— 1. महाराजा सुव्रत की जिज्ञासा और मुनीश्वर कालहस्ति से भेंट, 2. दो प्रकार के विश्वकर्म स्वरूप का वर्णन, 3. महाविभो विश्वकर्मा के सगुण स्वरूप का वर्णन, 4. विश्वकर्म महाद्रुम स्वरूप का वर्णन, 5. मनु, मयादि की उत्पत्ति का वर्णन, 6. मनु आदि के मूर्तिरूप का वर्णन, 7. अष्टविश्व कारण का वर्णन, 8.

पिण्डाण्ड में ब्रह्माण्ड के गुण-धर्मों का वर्णन, 9. मेरु आदि पृथ्वी के पर्वतों एवं द्वीपों का वर्णन, 10. जम्बूद्वीपखण्ड आदि का वर्णन, 11. भुवर्लोक आदि लोकों का वर्णन, 12. त्रुटि आदि से कल्प तक कालमान का वर्णन, 13. मेरुदुर्ग निर्माण का वर्णन, 14. सूर्यादि ऊर्ध्व लोकों का वर्णन, 15. ब्रह्माण्ड आदि की रचना का वर्णन, 16. अठारह विश्वकर्मीय युग और युगानुसार विश्वकर्मावतार वर्णन, 17. काश्यपीय सृष्टि का वर्णन, 18. कालप्रमाण व कर्मों का वर्णन, 19. कल्प सहित मन्वन्तरादि और जीवयोनियों की आयु का प्रमाण, 20. आराधनवर्ण-धर्मादि का वर्णन, 21. नित्य और नैमित्तिक कर्मों का वर्णन, 22. नित्यकर्म-कर्त्तव्यों का वर्णन, 23. गर्भाधान, पुंसवनादि नैमित्तिक कर्म, 24. जातकर्मादि संस्कारों व लोकाचार, 25. निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चौलकर्म, उपनयनादि संस्कार, 26. वेदाभ्यास और वार्षिक उपाकर्म, 27. समावर्तनादि संस्कार, 28. गोत्र-प्रवर के लक्षण एवं उनके नामादि, 29. पाणिग्रहण के लिए कन्यावरण, कन्या के लक्षण और आठ प्रकार के विवाहों का नामोल्लेख, 30. पाणिग्रहण संस्कार और तद्विषयक लोकाचारों का वर्णन, 31. श्राद्धकर्म विधान और तिथ्यादि निर्णय, 32. सदाचार की प्रशंसा और लाभों का विवरण, 33. मरणासन्न व्यक्ति की सेवा व निधनोपरान्त प्रेतकर्म का विधान, 34. वानप्रस्थाश्रम, सन्यासाश्रम के आचारों का वर्णन एवं पुराण महिमा।

इस पुराण के 28वें अध्याय में मनु आदि के वंशजों के गोत्र-प्रवर की सूची मिलती है किन्तु मनु आदि के विवाह आदि का सन्दर्भ नहीं है। पिछली शताब्दी में 'ब्राह्मणोत्पत्तिमार्तण्ड' में जो सामग्री संकलित की गई है, वह इस पुराण के साथ कुछ-कुछ समानता रखती है। प्रो॰ ईश्वरशरण विश्वकर्मा ने जो सन्दर्भ जुटाए हैं, वे विचारणीय हैं। उनके ग्रन्थ में कहा गया है कि मनु का विवाह अंगिरा ऋषि की कन्या कांचना के साथ हुआ। मय का विवाह पराशर पुत्री सुलोचना, त्वष्टा का कौशिक कन्या जयन्ती, शिल्पी का भृगु की पुत्री करुणा और दैवज्ञ (जिसका नाम प्रस्तुत पुराण में विश्वज्ञ है) का विवाह जैमिनी ऋषि की जायी चन्द्रिका के साथ हुआ। इनसे 25-25 गोत्रें मिलाकर कुल 125 गोत्रों का प्रवर्तन हुआ—

मनु वंशजों के 25 गोत्र — मन्युपति, सीमन्त, उपस्तानग, लनज, सत्यक, मामन्यु, श्रेतांगद, विभ्राज, भास्वन्त, सुतप, भूबल, पुरंजय, कश्यप, मधु, प्रबोधक, सन्तर्त, भानुमति, मनु, विश्वकर्मा, सर्वभद्र, सुलोचन, विश्वेन्त, जयत्कुमार, विश्वात्म, चित्रवसु और चित्रधर्म। इनसे सानगोपगोत्र कहलाए।

मय वंशजों के 25 गोत्र — मानुष, धार्मिणकं, विधातृ, द्विजधर्म, वर्द्धक, भावबोध, तक्षक, शान्तमति, आदिशयन, उपसनातन, वामदेव, विश्वचक्षु, प्रतितक्ष, सुतक्ष, विश्वतोमुख, विश्वदक्ष, विश्रुत, सुमेध, पन्नग, रैक्त, प्रहर्ष, जयद, परिषंग तथा वितन्त। इनसे सनातनोपगोत्र कहलाए।

त्वष्टा वंशजों के 25 गोत्र — सम्वर्त, यज्ञपाल, प्रतिवक्ष, कुशधर्म, अतिधातृ, लोकेश, पद्मपक्ष, वितक्ष, मोदमति, विश्वमय, उपाध्मून, भद्रदक्ष, काण्डव, विश्वरूप, त्रिमुख, बौधायन, जातरूप, चित्रसेन, जयसेन, विधनस, प्रमोन्नत, देवल, विनय, ब्रह्मदीक्षित एवं हरिधर्मा। इनसे अहभूनोपगोत्र कहलाए।

शिल्पी वंशजों के 25 गोत्र — प्रहर्षण, वास्तुक, उपप्रत्न, विश्वभद्र, शक्कट, लोकवेत्ता, इन्द्रसेन, रुचिदत्त, क्षानभद्र, राजधर्म, चित्रक, गिरिधर्म, वस्तुक, देवभद्र, वेदपाल, सहस्रबाहु, वसुधर्म, इन्द्रसेनक, व्यंजक, भोक्तव्यमनु, देशिक, वज्रजीत, सनाभस, प्रबोधमनु और प्रज्ञोमति। इनसे सुवर्णोपगोत्र कहलाए।

दैवज्ञ वंशजों के गोत्र — मणिभद्र, आदित्यसेन, सुपर्ण, मैत्रेय, बोधक, मनुसुव्रत, अर्वत, विश्वज्ञ, तेजोधर्म, देवसेन, त्रिवर्धन, अर्चित, परित, सुदर्शन, आदित्य, याज्ञिक, अच्युत, सौरसेन, उपगोप, निगम, संज्ञिक, कर्दम, सांख्यायन, सान्त्क व उपयक्ष। (भारतीय साहित्य तथा शिल्प में विश्वकर्मा एवं ब्राह्मणोत्पत्तिमार्तण्ड : पं. हरिकृष्ण शास्त्री, मुंबई वि. सं. 1992, एकपंचाशत्तम प्रकरण एवं जातिभास्कर में ब्राह्मणोत्पत्ति प्रसंग)

वहाँ यह भी संकेत दिया गया है कि मनु आदि के वंशोत्पन्न अन्य ऋषियों ने अस्सी गोत्रों को भी प्रचलित किया, जिनके नाम नहीं दिए गए हैं किन्तु लगता है ब्राह्मणोत्पत्तिमार्तण्ड के संग्रहकार को इस सम्बन्ध में कोई जानकारी अवश्य थी।

महाविश्वकर्मपुराण में अध्याय 21 से 30 तक नित्य-नैमित्तिक कर्मों का विवरण इसकी एक प्रमुख विशेषता है। इस विवरण में यह आचारशास्त्र परिलक्षित होता है क्योंकि व्यक्ति के दैनन्दिन या नित्यकर्मों से लेकर संस्कारों तक निर्देशन इसे व्यवहारिक ग्रन्थ सिद्ध करता है। ये सिद्धान्त शिल्पीवर्ग के जीवन में आचरणीय माने गए हैं। ब्रह्मचर्य, गृहस्थ और वानप्रस्थ और सन्यास के वर्णन को देखकर लगता है कि पुराणकार चतुर्वर्णाश्रम की व्यवस्था पर जोर देता है।

वरयात्रा में स्त्रियों का वधू के यहाँ जाना दक्षिण की परम्परा का परिचायक है। यूं इस पुराण में नगरों के लिए 'पट्टन' (पत्तन) जैसे शब्द के प्रयोग (११,११) से भी इसकी रचना दक्षिण में होना लगता है।

इस पुराण के आरम्भिक वर्णन से सिद्ध होता है कि मुनिश्रेष्ठ कालहस्ति का आश्रम गंगा की तटवर्ती काशीनगरी में था और कुलगुरु सुमन्त के निर्देश पर राजा सुव्रत वहीं पहुँचे थे। सुव्रत की ऐसी ही जिज्ञासा और आत्मबोध का एक प्रसंग पाद्मोत्तर के माघ माहात्म्य में देखने को मिलता है। उक्त सुव्रत नर्मदा तट के एक अग्रहार ग्राम का महिसुर था (अध्याय २३८)। प्रस्तुत पुराण सुव्रत को उदयगिरि क्षेत्र के आसपास का राजा कहता है। (१,९) वहीं पर योगीन्द्र कालहस्ति ने इस पुराण का कथन किया गया था— गत्वा त्वं काशिकाक्षेत्रं तत्र गङ्गातटे स्थितम्। तं गुरुं कालहस्तीन्द्रं योगीशं शरणं व्रज॥ (1, 27) यह काशी मध्यभारत की गंगा तीरस्थ काशी की अपेक्षा दक्षिण का कोई शैव तीर्थ होना चाहिए। वैसे 'कालहस्ति' शब्द का प्रयोग शिवपुराण में आया है। कैलाससंहिता में दक्षिण के पर्वतों पर शिवाश्रम और शिवालयों के वर्णन में कालहस्ति पर्वत का सन्दर्भ है जिसके लिए सूत के वचन से कहा गया है कि तीर्थाटन करते हुए जब वे दक्षिण में पहुँचे तो कन्याकुमारी में पूजन और सुवर्णमुखरी नदी में स्नान किया और कालहस्तीश के दर्शन किए—

पुनरागत्य विप्रेन्द्राः सुवर्णमुखरीतटम्॥
श्रीकालहस्तिशैलाख्यनगरे परमाद्भुते।
सुवर्णमुखरीतोये स्नात्वा देवानृषीनपि॥
सन्तर्प्य विधिवद्भक्त्या समुद्रं गिरीशं स्मरन्।
समर्च्य कालहस्तीशं चन्द्रकान्तसमप्रभम्॥ (शिव. कैलास. 10,18-20)

कालहस्ति पर्वत उत्तरी अर्काट जिले में रेणुगुण्ट से एक मील दूर है। सुवर्णमुखरी नदी के तीर पर यह एक प्रसिद्ध तीर्थस्थल रहा है जिसका वर्णन शंकरविजय के अध्याय 14 में भी आता है। यहाँ बड़े मन्दिर में वायु के रूप में महादेव का विग्रह रहा है जिसे आधारभूत 76 भौतिक विग्रहों में से एक माना गया है। इस भव्य विग्रह पर दीप होने के कारण इसे अर्णनाभ महादेव कहा जाता है। स्कन्दपुराण में कहा गया है कि यह नदी अगस्त्य की तपस्या से निकली जो दक्षिण समुद्र में जाकर मिलती है। (भारत का प्राचीन एवं मध्ययुगीन भौगोलिक कोश : नन्दुलाल डे, सानुवाद, दिल्ली, 2014 ई. पृष्ठ 152; स्कन्दपुराण 33, 42-43)

शिवपुराण के इस अध्याय की विशेषता यह है कि जिस प्रकार महाविश्वकर्मपुराण का प्रारम्भ हुआ है और उसमें काशीनगरी और वहाँ के

योगीन्द्र की महिमा लिखी गई है, वैसी ही शिवपुराण की कैलाससंहिता में सूतादि के प्रसंग को लिखा गया है। पुराणकार पर शिवपुराण और सूतसंहिता सहित शैवागमों का प्रभाव स्थल-स्थल पर दिखाई देता है। प्रस्तुत पाठ में पाद टिप्पणियाँ देते हुए इस प्रभाव और विरोध को दिखाने का प्रयास भी किया गया है।

इसं पुराण में वैदिक और पौराणिक मान्यताओं का उत्तम अनुपूरण ज्ञात होता है। पुराण के पूर्वार्ध में जो वर्णन आया है, वह वैदिक पृष्ठभूमि को पोषित करता है। इसमें विष्णु, वायु, मत्स्य, मार्कण्डेयादि पुराणों के परम्परित वर्णन के विपरीत विश्वकर्म तत्त्व का विवरण अधिक है। विश्वकर्मा के युग-युग में अवतार लेने की मान्यता अपूर्व ही है। इस प्रकार यह पुराण अवतारवाद का पोषण भी करता है तथापि जीवन में विद्या के महत्व को स्वीकारने और शिल्पविद्याओं से सहज ही जीवन निर्वाह होने के सत्य का प्रतिपादन करता है। अपने सहज कर्म के आचरण से ईश्वर के अनुग्रह को प्राप्त होने की श्रीमद्भगवद्गीता की मान्यता को भी यह पोषित करता है।

पुराणकार अथवा प्रवक्ता सम्भवतः मनु के वंश के रहे हैं। (१,४१) ऐसा प्रतीत होता है कि सूत्रधार-सन्तानों अथवा शिल्पियों के समुदाय में जो-जो भी मान्यताएँ रही हैं, उनको पुराणकार ने स्पष्टतः सूत्रित करने का सुलाघव प्रयास किया है। ये ही मान्यताएँ सूत्रसन्तानगुणमंजरी या अपराजितपृच्छा के पूर्वार्द्ध में दिखाई देती है। ऐसे में यह पुराण मध्यकाल तक अपने अस्तित्व में आ चुका था। हालांकि इसके श्लोकादि किसी परवर्ती निबन्धकार ने उद्धृत किए हों, यह ज्ञात नहीं होता किन्तु ये मान्यताएँ समाज में रही हैं, यह तो स्वीकारना ही चाहिए।

••••

विषयसूची

1. प्रथम अध्याय — 1-13

राज्ञा सुव्रत की जिज्ञासा और मुनीश्वर कालहस्ति से भेंट

2. द्वितीय अध्याय — 14-18

दो प्रकार के विश्वकर्म स्वरूप का वर्णन

3. तृतीय अध्याय — 19-23

महाविभो विश्वकर्मा के सगुण स्वरूप का वर्णन

4. चतुर्थ अध्याय — 24-31

विश्वकर्म महाद्रुम स्वरूप का वर्णन

5. पञ्चम अध्याय — 32-38

मनु, मयादि की उत्पत्ति का वर्णन

6. षष्ठ अध्याय — 39-43

मनु आदि के मूर्तिरूप का वर्णन

7. सप्तम अध्याय — 44-48

अष्टविश्व कारण का वर्णन

8. अष्टम अध्याय — 49-59

पिण्डाण्ड में ब्रह्माण्ड के गुणों का वर्णन

9. नवम अध्याय — 60-66

मेरु आदि पर्वत एवं द्वीपों का वर्णन

10. दशम अध्याय — 67-72

जम्बूद्वीपखण्ड आदि का वर्णन

11. एकादश अध्याय — 73-75

भुवर्लोक आदि का वर्णन

12. द्वादश अध्याय — 76-81

कालमान आदि का वर्णन

13. त्रयोदश अध्याय — 82-87
मेरुदुर्ग निर्माण का वर्णन

14. चतुर्दश अध्याय — 88-94
सूर्यादि ऊर्ध्व लोकों का वर्णन

15. पञ्चदश अध्याय — 95-97
ब्रह्माण्ड आदि की रचना का वर्णन

16. षोडश अध्याय — 98-102
अठारह युग और युगानुसार विश्वकर्मावतार वर्णन

17. सप्तदश अध्याय — 103-106
काश्यपीय सृष्टि का वर्णन

18. अष्टादश अध्याय — 107-110
कालप्रमाण व कर्मों का वर्णन

19. एकोनविंश अध्याय — 111-114
कल्प सहित मन्वन्तरादि जीवयोनियों की आयु का प्रमाण

20. विंशोऽध्याय — 115-120
आराधनवर्ण-धर्मादि का वर्णन

21. एकविंश अध्याय — 121-126
नित्य और नैमित्तिक कर्मों का वर्णन

22. द्वाविंश अध्याय — 127-133
नित्यकर्म-कर्त्तव्यों का वर्णन

23. त्रयोविंश अध्याय — 134-138
गर्भाधान, पुंसवनादि नैमित्तिक कर्म वर्णन

24. चतुर्विंश अध्याय — 139-143
जातकर्मादि संस्कारों व लोकाचारों का वर्णन

25. पञ्चविंश अध्याय — 144-154
निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चौलकर्म, उपनयनादि संस्कारों का वर्णन

26. षडविंश
वेदाभ्यास औ
27. सप्तविंश
समावर्तनादि
28. अष्टाविंश
गोत्र-प्रवर के
29. एकोनत्रि
पाणिग्रहणार्थ
30. त्रिंश अ
पाणिग्रहण सं
31. एकत्रिंश
श्राद्धकर्म वि
32. द्वात्रिंश
सदाचार की
33. त्रयस्त्रिं
मरणासन्न की
34. चतुस्त्रिं
वानप्रस्थाश्रम
परिशिष्ट
विश्वकर्मीय
प्रमुख उपस
श्लोकानुक्रम

26. षड्विंश अध्याय 155-158
वेदाभ्यास और वार्षिक उपाकर्मादि का वर्णन

27. सप्तविंश अध्याय 159-161
समावर्तनादि संस्कारों का वर्णन

28. अष्टाविंश अध्याय 162-166
गोत्र-प्रवर के लक्षण एवं उनके नामादि का वर्णन

29. एकोनत्रिंश अध्याय 167-170
पाणिग्रहणार्थ कन्यावरण और आठ प्रकार के विवाहों का वर्णन

30. त्रिंश अध्याय 171-175
पाणिग्रहण संस्कार और तद्विषयक लोकाचारों का वर्णन

31. एकत्रिंश अध्याय 176-179
श्राद्धकर्म विधान और तिथ्यादि निर्णय वर्णन

32. द्वात्रिंश अध्याय 180-183
सदाचार की प्रशंसा और लाभों का विवरण

33. त्रयस्त्रिंश अध्याय 184-187
मरणासन्न की सेवा व निधनोपरान्त प्रेतकर्म का वर्णन

34. चतुस्त्रिंश अध्याय 188-191
वानप्रस्थाश्रम, सन्यासाश्रम के आचारों का वर्णन एवं पुराण महिमा

परिशिष्ट 195-220
विश्वकर्मीय शिल्पसारम्

प्रमुख उपस्कारक ग्रन्थ 221-226

श्लोकानुक्रमणिका 227-241

श्रीकालहस्तिमुनीन्द्रप्रोक्तं

श्रीमहाविश्वकर्मपुराणम्

(मोहनबोधिनीटीकोपेतम्)

प्रथमोऽध्यायः ॥ 1 ॥

अथ ग्रन्थारम्भावसरे मङ्गलाचरणम् —

श्रीकण्ठतनयं वन्दे श्रीकण्ठोपरि वारणम्।
विकुण्ठरदनं देवं वैकुण्ठादि सुरार्चितम्॥ 1॥

श्रीकण्ठ भगवान् शिव के पुत्र गणेश का वन्दन करता हूँ जो ग्रीवा पर हाथी के मुख को लिए सुशोभित हैं। जो भग्न एकदन्त हैं। भगवान् विष्णु आदि देवगणों से जो पूजित हैं और दिव्य स्वभाव वाले हैं।

पञ्चाननप्रियकरं चतुरानन संस्तुतम्।
षडाननाग्रजं देवं प्रणमामि गजाननम्॥ 2॥

पंचमुख वाले भगवान् शिव के प्रियात्म, चतुर्मुख ब्रह्माजी जिनकी स्तुति करते हैं और जिनके षडानन कार्तिकेय अग्रज देव हैं, उन गजानन को मैं प्रणाम करता हूँ।

श्रीसर्वमङ्गलायुक्ता वदने सदने मम।
मुदानया सा वनतां सुप्रसन्ना सरस्वती॥ 3॥

सर्वमंगलमयी श्रीदेवी लक्ष्मी और पार्वती सहित माता सरस्वती प्रसन्नमना होकर मेरे मुख और मेरे गृह में सदैव निवास करें।

मयं नीलोत्पलाभासं वेदशास्त्र प्रकाशकम्।
पुराणजनकं वन्दे कविमाद्य मुनीश्वरम्॥ 4॥

नीलकमल जैसी आभा लिए, वेद और शास्त्रों को प्रकाशित करने वाले, पुराणों के जनक और प्रथम कविवर मुनिश्रेष्ठ ब्रह्माजी को मैं प्रणाम करता हूँ।

अथ पुराणकथारम्भाह—

एकदा सुव्रतो राजा सुमन्तुं प्रत्यभाषत।
वद स्वामिन् कुलगुरो! माहात्म्यं विश्वकर्मण॥ 5॥

एक समय की बात है कि सुव्रत नामक महाराजा सुमन्तदेव से प्रार्थना करने लगे कि हे स्वामी! हे कुलगुरु! कृपया आप भगवान् विश्वकर्मा का माहात्म्य कहियेगा।

सुमन्तोवाच —

अधोवाच न राजानं सुमन्तुः प्राङ्मुख स्थितः।
शृणुश्च भक्त्या राजन! ते वदामि परमद्भुतम्॥ 6॥

इस पर कुलगुरु सुमन्त महाराजा सुव्रत की ओर मुख करके कहने लगे— हे राजन्! मैं आपको परम अद्भुत विषय को सुनाता हूँ। आप उसको भक्तिपूर्वक सुनियेगा।

राजोवाच —

अज्ञानान्ध तमन्सङ्ग विच्छेदन दिवाकर।
वक्तुं समर्थ स्तत्वार्थं भवान्मथ्यनुकम्पया॥ 7॥

यह सुनकर महाराजा सुव्रत बोले— गुरुदेव आप गहन अन्धकार जैसे अज्ञान को दूर करने में समर्थ सूर्य भगवान् की तरह है। आप मुझ पर दया करके सभी विषयों को समझाने में समर्थ हैं।

दत्तं मयार्जितं द्रव्यं विप्रेभ्यश्चैव धर्मतः।
व्रतान्यन्यानि सर्वाणि श्रृत्युक्तानि कृतानि च॥ 8॥

मैंने जो कुछ द्रव्य अपने पुरुषार्थ से अर्जित किया है, वह सब विप्रों को धर्मानुसार दान किया है। श्रुतियों में जो भी व्रतादि धर्म बताए गए हैं, उनका भी मैंने सम्पादन और आचरण किया है।

ममाज्ञां शिरसा धृत्वा भृत्यभावेन भूभुजः।
उदयास्ताद्रि मध्यस्थ देशभागेषु संस्थिताः॥ 9॥

सूर्य के उदय से लेकर अस्त होने तक पर्वतों के मध्यवर्ती क्षेत्र में जो भी देश विद्यमान हैं, उन सबके राजागण मेरी आज्ञा को शिरोधार्य करते हैं अर्थात् वे सभी मेरे अधीन हैं।

दान क्षात्र व्रतादिभ्यः कृतेभ्यन्तवत्प्रसादतः।
विबुधैर्गीयमानोऽहं सुव्रतोऽस्मि निजाह्वया ॥ 10 ॥

आपके अनुग्रह से मैंने जो भी दानादि किए तथा प्रजा की रक्षा के लिए जिस क्षात्रव्रत का निर्वाह किया और यज्ञ-व्रतादि कर्म किए, उनकी ज्ञानीगणों ने बहुत प्रशंसा की है और मेरे सुव्रत नाम को सार्थक बताया है।

एवं चिरं प्रजास्सर्वे धर्मेण परिरक्षिताः।
इतोधिक फलं किञ्चिद्यतिवातद्वदस्वमे ॥ 11 ॥

मैंने इसी रीति से धर्म के मार्ग पर चलकर चिरकाल तक प्रजा की सुरक्षा की है। इससे अधिक श्रेष्ठ और प्रजाहित का कुछ अन्य कार्य हो तो उसका भी मुझे उपदेश कीजिएगा।

सुमन्तोवाच —

त्वया पृष्टं महाराज शृणु वक्ष्यामि सुव्रत!
फलानि धर्माचरणाद्भोग-सौभाग्य-सम्पदः ॥ 12 ॥
भवन्ति स्वर्गलोकायदेव स्त्रीसङ्गमाय च।
नानाविधेभ्यो भोगेभ्यस्तद्धर्माणि च सुव्रता ॥ 13 ॥

इस पर सुमन्त बोले— हे महाराजा सुव्रत! आपने जो प्रश्न किया है, उस पर आप सुनियेगा। श्रुति और स्मृति में बताए गए धर्मों के आचरण से भोग, सौभाग्य, सम्पत्ति ही नहीं, स्वर्ग तक प्राप्त हो सकता है। वहाँ रम्भादि देवकन्याओं के साथ गमन तक मिल सकता है। हे सुव्रत! ये सभी धर्माचरण अनेकविध भोगों के लिए ही हैं।

पुनरुत्पत्ति बीजानि राग-द्वेष-भयानि च।
काममोहादि पाशेभ्यो न विमुक्तानि च क्वचित् ॥ 14 ॥

ये सभी धर्म के बीज पुनर्जन्म, राग, द्वेष और भय के निवास स्थान हैं। वे अपनी मनोकामनाएँ, मोहादि के पाशों तथा अनर्थों के बन्धनों को तोड़ने वाले नहीं हैं।

जन्मान्तरोपनिर्दिष्ट फलाढ्यानि नरेश्वरा।
योषिधिरण्याभराणार्जना संरक्षणे सदा ॥ 15 ॥
संसारचक्रे संस्थाप्य भ्रामयन् सत्क्रियाफलम्।
न दर्शयति मोक्षस्य मार्गं कामेना वञ्चितः ॥ 16 ॥

हे नरेश्वर! जो भी पुण्यकर्म कहे गए हैं, वे सदा स्त्रियाँ, धन और आभरण के अर्जन और उनकी रक्षा करने तथा पुनर्जन्म का फल देने वाले हैं। यज्ञ और दान के फल मनुष्यों को संसारचक्र में डालकर पिसते हुए कई जन्म लेते हुए नाशवान होते हैं, उनमें मोक्ष का मार्ग दिखाई नहीं देता है। (इसलिए मनुष्य को अपनी इच्छाओं से उपराम होना चाहिए)।

मायाजन्यमिमं लोकं मत्वा सद्गुरु शिक्षया।
यः कर्मपाश निर्मुक्तो ज्ञानं प्राप्य भवेत्कृति॥ 17॥

जो व्यक्ति सद्‌गुरु के उपदेश सुनता है और यह समझ लेता है कि यह संसार माया-मोहजन्य है, वह कर्मपाश से छूटकर श्रेष्ठ ज्ञान को प्राप्त कर लेता है।

सर्वमीशमयं विश्वं विश्वमेव स ईश्वरः।
अभेद इति यो वेत्ति स ज्ञानी गुरुसूक्तिभिः॥ 18॥

यह समस्त विश्व ईश्वरमय है और विश्व ही ईश्वर है। इन दोनों में कोई अन्तर नहीं है। जो व्यक्ति यह सत्य गुरु वचनों को सुनकर समझ लेता है, वही ज्ञानी है।

सर्वोत्कृष्टं परं ज्ञानं ज्ञानं त्रैलोक्य दुर्लभम्।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन ज्ञानमेव हि साधयेत्॥ 19॥

परम ज्ञान ही सबसे उत्कृष्ट है। ऐसा ज्ञान तीन लोकों में दुर्लभ होता है। इसलिए मनुष्य को समस्त प्रयास करके ज्ञान की साधना करनी चाहिए।

धर्मतः स्वसोदानात्कर्मतस्तीर्थ सेवनात्।
क्रतुभ्यश्च व्रतेभ्यश्च वरं ज्ञानं परं तपः॥ 20॥

हे राजन्! धर्म से भी बढ़कर और तप, दान, कर्म, तीर्थाटन और यज्ञों के सम्पादन तथा व्रतों के आचरण से भी ज्ञान श्रेष्ठ होता है।

ज्ञानात्कैवल्यमाप्नोति नान्यत्कर्म विमुक्तये।
अखण्डानन्द नन्दोहः ज्ञानान्नान्यत्र सिध्यति॥ 21॥

ज्ञान से मानव कैवल्य प्राप्त करता है। कर्मों के बन्धनों से विमुक्त होने के लिए ज्ञान के अतिरिक्त अन्य कोई साधन नहीं है। ज्ञान के बिना किसी अन्य उपाय में अखण्ड आनन्द की सिद्धि नहीं हो सकती है।

राजोवाच —

सर्वेषामपि धर्माणां परं ज्ञानं विवक्ष्यसि।
कथं ब्रह्मन्! मया साध्यं तस्योपकरणं वद॥ 22॥

यह सुनकर राजा सुव्रत ने कहा— हे ब्रह्मन्! आप समस्त धर्मों में ज्ञान को ही परम श्रेष्ठ बता रहे हैं। वैसे ज्ञान को मैं कैसे प्राप्त कर सकता हूँ? उस ज्ञान की साधना किस तरह है? बताइयेगा।

केन प्रभवति ज्ञानं को गुरुर्मे भविष्यति।
शरण्यः को ममा ब्रह्मन्! यदुक्तं तर्करोम्यहम्॥ 23॥

हे ब्रह्मन्! इस प्रकार का मोक्ष प्रदायक ज्ञान कैसे प्राप्त हो सकता है? उसको पाने के लिए मेरे गुरु कौन होंगे? मैं किस गुरु के आश्रय में जाऊँ? इस सम्बन्ध में आप जो भी कहेंगे, वैसा मैं अवश्य करूँगा।

सुमन्तोवाच —

ज्ञानमार्गो महाभाग दूरे भोगशरीरिणाम्।
अकिञ्चनानां हंसानां कर संसक्तदर्पणम्॥ 24॥

गुरु सुमन्त बोले— हे महाभाग! जो व्यक्ति भोगों में अटका हुआ हो, उसके लिए ज्ञानमार्ग बहुत दूर होता है। इसलिए व्यक्ति को धन के मोह से रहित, त्यागशील व सन्तों के हाथ के दर्पण की तरह होना चाहिए अर्थात् ज्ञान प्राप्ति के लिए साधक को भोगों से दूर होना चाहिए।

त्यच्छित्तं भोगसन्तुष्टं परिपक्वं भवेद्यदि।
त्यज राज्यश्रियं राजन्! राजराजस्य सन्निभ॥ 25॥

हे राजन्! आपका मन यदि सांसारिक भोगों से सन्तुष्ट हो गया हो और ज्ञान प्राप्त करने के लिए परिपक्व हो गया हो तो आप अपने राज्य वैभव को त्याग दीजिएगा।

पुत्रादिभ्यो महीं दत्वा विप्रेभ्यस्सञ्चितं धनम्।
दत्त्वा च साधुसंयोगं भुज वल्कलवाससा॥ 26॥

राज्य की भूमि को पुत्रों को सौंपकर, संचित धन-सम्पदा को विप्रों में दान करके आप वृक्ष की छाल से तैयार किए वस्त्रों (वल्कल वसन) को धारण कीजिए और सन्तों की सेवा का सेवन कीजिएगा।

गत्वा त्वं काशिकाक्षेत्रं तत्र गङ्गातटे स्थितम्।
तं गुरुं कालहस्तीन्द्रं योगीशं शरणं व्रज॥ 27॥

आप काशीक्षेत्र को प्रयाण करें और वहाँ प्रवहमान गंगा नदी के तट पर अवस्थित महायोगीश्वर सद्गुरु मुनीन्द्र कालहस्ति की शरण में जाएँ।

तेन त्वं दीक्षितस्सद्यो विगताज्ञान किल्बिषः।
भविष्यसि महाराज! ज्ञानधारण निश्चलः॥ 28॥

हे महाराज! आप वहाँ मुनीवर कालहस्ति से दीक्षा प्राप्त करके अज्ञान-अपराध से विमुक्त होकर ब्रह्मज्ञान प्राप्त करने से निश्चल हो सकते हैं।

नान्यस्तेन विना शक्तस्सम्यग्ज्ञान प्रदर्शने।
तस्मात् सुव्रत राजेन्द्र! तमेव शरणं व्रज॥ 29॥

हे महाराजा सुव्रत! कालहस्ति मुनीन्द्र के बिना और कोई भी आपको सम्यक् ज्ञान देने में समर्थ नहीं है। इसलिए आप उनकी शरण ग्रहण कीजिएगा।

राजोवाच —

कोयं श्रीकालहस्तीन्द्रस्सुमन्तु हितकारक।
तस्योत्कृष्ट प्रभावोयं कथ्यतां प्रत्ययाय मे॥ 30॥

यह सुनकर राजा सुव्रत बोले— स्वामीजी! श्रीकालहस्ति मुनीन्द्र कौन हैं? उनका प्रभाव कैसा है? इस विषय में आप मुझे विश्वासपूर्वक कहियेगा।

सुमन्तोवाच —

शृणु वक्ष्यामि राजेन्द्र! माहात्म्यं तस्ययोगिन।
कालहस्तिमुनिः शम्भोर्विलास नररूपधृत्॥ 31॥

राजा सुव्रत के प्रश्न पर मुनि सुमन्त बोले— हे राजन! मैं उन योगीन्द्र की महिमा सुनाता हूँ। श्रीकालहस्ति मुनीन्द्र भगवान् शिव की मनुष्य रूप में लीला का ही साक्षात् है, कोई अन्य नहीं।

अखण्डानन्द सन्दोह पूर्णहृन्मुनिपुङ्गवः।
औदार्य-शौर्य-गाम्भीर्य-माधुर्यगुण रञ्जितः॥ 32॥

वह मुनिराज अमित आनन्दमय हृदय के धारक हैं एवं दान, शौर्य, गाम्भीर्य, कोमल हृदय और मृदुवचन बोलने में नैपुण्य जैसे गुणों से प्रकाशवान हैं।

एकनिष्ठापरस्सोस्मि एकीभावदृगात्मवित्।
अद्वैतपद संस्थोयं द्वयवादिविनाशनः ॥ 33 ॥

वह मुनीश्वर निरन्तर एक ब्रह्म में ही निष्ठा रखते हैं। एक ही तत्त्व में दृष्टि रखते हैं। आत्मवेत्त द्वैतवादों को न स्वीकार करके केवलाद्वैत शब्द में ही स्थित रहने वाले हैं, द्वैतवादों को खण्डित करते हैं।

मलत्रयैर्विरहितस्तापत्रय विवर्जितः।
दुःखत्रय विनिर्मुक्तो दोषत्रय भयान्तकः ॥ 34 ॥

वह मुनीश्वर [आणव, माइका और कार्मक जैसे] तीनों मलिनों से मुक्त हैं। वह आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक जैसे तीनों तापों से रहित है। जन्म, जरा और मरण जैसे तीनों दुःखों से मुक्त हैं और मानसिक, वाचिक और शारीरिक जैसे तीन दोषों से निवृत्त हैं।

इषणत्रय निस्सङ्गो गुणत्रय विवर्जितः।
कालत्रयोक्त विधिकृत लोकत्रयविचारवित् ॥ 35 ॥

इतना ही नहीं, उन महात्मा को पत्नी, पुत्र और धन इन तीनों एषणाओं में इच्छा नहीं है। वह सत्त्व, रज और तम इन तीन गुणों से विमुक्त हैं। प्रातः, मध्याह्न और सायं इन तीनों कालों वह विधिपूर्वक कार्य करते हैं और वह भू-र्भु-स्व तीनों लोकों के ज्ञाता हैं।

चतुर्वेदार्थसारज्ञश्चतुर्वर्ग्गफलप्रदः।
चतुर्थाश्रमिणामाद्यश्चतुरस्तत्त्वबोधने ॥ 36 ॥

वह मुनिवर ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद इन चारों ही वेदों के सार को ग्रहण किए हुए हैं। धर्म-अर्थ, काम और मोक्ष जैसे चार पुरुषार्थों का फल प्रदान करने वाले हैं। वे चतुर्थ सन्यास आश्रम को स्वीकार करने वालों में श्रेष्ठ हैं। वे तत्त्वज्ञान का उपदेश करने में बहुत ही कुशल हैं।

पञ्चेन्द्रियविजिद्योगी पञ्चबाणान्तकान्तरः।
पञ्चप्राण समाहार योगी पञ्चत्ववर्जितः ॥ 37 ॥

वह श्रवण, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध इन पाँच विषयों को ग्रहण करने वाले कान, चर्म, आँख, जिह्वा और नाक इन पाँच इन्द्रियों पर विजय पाये हुए हैं। कामदेव के पाँच बाणों (द्रवण, शोषण, तापन, मोहन एवं उन्माद) का विनाश करने वाले शिव को उन्होंने अपने अन्तःस्थ किया है। वह प्राण, अपान, व्यान,

उदान और समान जैसे पाँच प्राणों को अधीन कर योगी बने हैं और मृत्यु को जीतकर प्रकाशित हो रहे हैं।

षट्चक्रभेत्ता स्वान्तस्थ रिपु षड्वर्गवर्जितः।
षड्गुणैश्वर्यतत्त्वज्ञो षट्शास्त्रज्ञः षड्र्मिजित॥ 38॥

इतना ही नहीं, वह मूलाधारचक्र, स्वाधिष्ठानचक्र, मणिपूरचक्र, हृदयचक्र, कण्ठचक्र और आज्ञा जैसे छह चक्रों का भेदन करके सहस्रारचक्र में पहुँचकर क्रीड़ा करने वाले हैं। अपने हृदय में काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य जैसे छह शत्रुओं को वर्जित करने वाले हैं। ऐश्वर्य, वीर्य, कीर्ति, श्री, ज्ञान और वैराग्य जैसे छह गुणों और ऐश्वर्य अर्थात् ईश्वरीय विभूति को धारण करने वाले हैं। वे तत्त्वज्ञ हैं। शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष और छन्द जैसे छह शास्त्रों के विद्वान हैं और छह शरीरस्थ उर्मियों बुभुक्षा, पिपासा (प्राणगत), शोक, मनोगत मोह, जरा और शरीरगत मृत्यु[1] को उन्होंने जीत लिया है।

सप्तर्षिकल्पस्तपसा सप्ताश्व सदृशश्चवौ।
सप्तार्चितुल्यश्शुचिना सप्तलोककृतां गुरुः॥ 39॥

वह तप करने में श्रुतर्षि, काण्डर्षि, परमर्षि, महर्षि, राजर्षि, ब्रह्मर्षि और देवर्षि जैसे सप्तर्षियों की तरह हैं। तेज में सप्ताश्व वाले सूर्य के समान हैं। परिशुद्धता में हिरण्या, कनका, रक्ता, आरक्ता, सुप्रभा, बहुरूपा और सती जैसी सप्तार्चि अग्नि के समान हैं। वह भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, महःलोक, जनलोक, तपोलोक और सत्यलोक जैसे सात लोकों के देवताओं के लिए गुरुस्थान पर महनीय हैं।

अष्टाङ्गयोगनिरतः अष्टपाश विमोचिता।
अष्टैश्वर्ययुतश्चाष्टविधानाराधने रतः॥ 40॥

वह यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि जैसे अष्टांग योग में निरत रहते हैं। वह दया, शंका, भय, लज्जा, निद्रा, कुल, शील और धन जैसे आठ बन्धनों से विमुक्त हैं। वह अणिमा, महिमा, लघिमा, गरिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व और वशित्व जैसे आठ ऐश्वर्यों से युक्त हैं और

---

१. षट्शरीरस्थोर्मि— अशनायापिपासाशोकमोहजरामरणानीतिषडूर्मयः। (मुद्गलोपनिषद् 4, 7); बुभुक्षा च पिपासा च शोकमोहौ जरामृती। षडूर्मयः प्राणबुद्धिदेहधर्मेषु संस्थिताः॥ (प्रपञ्चसारतन्त्रम् 2, 18 एवं शारदातिलक : लक्ष्मण देशिकेन्द्र 1, 44)

सूर्य, जल, पृथ्वी, वायु, अग्नि, आकाश, विप्र और चन्द्रमा जैसी अष्टविध आराधनाओं में रत रहते हैं।

कुशास्त्र खण्डनार्थाया सच्चास्त्र स्थापनाय च।
जातोयं मनुवंशेस्मिन् कालहस्तिमुनिः स्वयम्॥ 41॥

वे मिथ्यामत-शास्त्रों का खण्डन करके सद्शास्त्रों की स्थापना करने वाले हैं। इस ध्येय को लिए स्वयं मुनि कालहस्ति भगवान् मनु के वंश में अवतरित हुए हैं।

भस्मासुरवधार्थाया विष्णुः स्त्रीरूपतां गतः।
हरयस्सङ्गमनं चक्रे पुरा तन्मोह विह्वलः॥ 42॥

प्राचीनकाल में भस्मासुर के संहार के लिए जब भगवान् विष्णु ने सुन्दरी का रूप धारण किया था तब भगवान् शिव उनके सौन्दर्य पर मोहित हो गए और समागम किया था।

तद्ज्ञात्वा पार्वती रोषात्प्राहैनं व्यभिचारिणम्।
यतीन्द्रो भव भूलोके नररूपेण शङ्करा॥ 43॥

देवी पार्वती को जब यह सब ज्ञात हुआ तो वे क्रोध में भर उठी। व्यभिचार करने वाले शिव को उन्होंने भूलोक में मानव के रूप में जन्म लेने का श्राप दिया था।

तस्मात् श्रीकालहस्तीन्द्रो विलासात्पुरुषाकृतिः।
सम्प्राप्तस्स तदा काशी मित्याहुः पण्डितोत्तमाः॥ 44॥

यही कारण है कि भगवान् शिव ने अपनी लीला के अर्थ में मुनिश्रेष्ठ कालहस्ति के रूप में पुरुषाकृति धारण की है। वह इसी रूप में काशी को प्राप्त हुए हैं, ऐसा पण्डितजनों का कहना है।

एवं पुरोहिता प्रोक्तं तथ्यं श्रृत्वाध सुव्रतः।
पुत्रादिभ्यो महीं दत्वा त्याजद्राज्य श्रियं तदा॥ 45॥

कुल पुरोहित सुमन्त के मुख से इस तथ्य को सम्यक् रूप से सुनकर महाराजा सुव्रत ने अपने अधीनस्थ पृथ्वी को अपने पुत्रों को सौंपकर राज्य को छोड़ दिया।

काशीं वाराणसीं पुण्यराशिं ज्ञान प्रकाशिनीम्।
सुवासिनीं सुमनसां प्राप्तस्सुव्रतसत्तमः॥ 46॥

इसके बाद राजा सुव्रत ने अच्छे मन से काशीपुरी का मार्ग लिया जो कि वाराणसी के नाम से पुण्यराशि और ज्ञान को प्रकाशित करने वाली है। वह पुरी सुवासिनी कहलाती है।

तस्मिन्नुद्यानविपिने रम्यमण्डप शोभिते।
भवने कालहस्तीन्द्रं ददर्श सुरतेजसम॥ 47॥

उस काशी नगर में एक वनखण्ड में विशेष उद्यान था जहाँ सुरम्य मण्डप की शोभा थी और वहीं एक भवन में विराजित मुनि कालहस्ति के राजा ने दर्शन किए जो देवताओं के तेज के समान दिखाई देते थे।

समेत्य सुव्रतो राज्ञा वीतरागो सदन्तकः।
प्रणम्य विधिवद्भक्त्या प्रोवाचा प्राञ्जलिः स्थित॥ 48॥

असत्य विषयों को नाश करने वाले और विषयों में रुचि नहीं रखने वाले वह महाराजा सुव्रत मुनिवर श्रीकालहस्ति के समीप पहुँचे और हाथ जोड़कर उनसे भक्तिपूर्वक कहने लगे—

राजोवाच —

नमस्ते कालहस्तीन्द्रा लीला नरतनुभव।
समस्तशास्त्रतत्त्वज्ञ विभो धर्मविचक्षण॥ 49॥

मनुष्य का रूप धारण कर लीला करने वाले और समस्तशास्त्रों के तत्त्व को जानने वाले महाशय श्रीकालहस्ति मुनिवर! आपको मेरा प्रणाम स्वीकार हो।

राजाऽहं नवखण्डाढ्य पृथिव्यां ख्यातविक्रमः।
चिरकालं मया योगिन् विधिवत्पालिता प्रजाः॥ 50॥

हे योगीश्वर! मैं नवखण्डीय पृथ्वी में अपने पराक्रम के लिए ख्यातिलब्ध महाराजा हूँ। मैंने चिरकाल तक नीतिशास्त्र के अनुसार अपनी प्रजा का पालन किया है।

सन्त्यक्त्वा राज्यभोगान्श्च गीतवाद्यादि विभ्रमान्।
पूर्णयौवनलावण्यदारान् रम्भादि सन्निभान्॥ 51॥
पुत्रेभ्यस्सञ्चितार्थं च दत्त्वा राज्य श्रियं महन्।
प्राप्तोस्मी कालहस्तीन्द्र! युष्मच्छ्रीपादपङ्कजम्॥ 52॥

मैंने अपने समस्त राजपाट का परित्याग कर दिया है। उस राज्य में मुझे नाना प्रकार के भोग, गीत-वाद्य, नाटक आदि के विलासरूपक उपलब्ध थे। पूर्ण

यौवन सुलभ था और रम्भा जैसी पत्नियाँ सुलभ थी, किन्तु मैंने उनको छोड़ दिया। हे महात्मा कालहस्तीन्द्र! मैंने अपना अर्जित धन-वैभव और राज्य का सुख अपने पुत्रों को सौंप दिया है और आप श्रीमान् के चरणकमलों में आया हूँ।

दीक्षादानेन योगीन्द्रा! तत्वात्मज्ञान शिक्षया।
त्वत्पादभक्तिनावामां तारयस्वाभवाम्बुधेः॥ 53॥

हे योगीश्वर! मुझे आप दीक्षादान के रूप में आत्मज्ञान की शिक्षा प्रदान कीजिएगा। आपके चरणों को नौका जानकर मैं भक्ति लिए आया हूँ। आप मुझे संसार-सागर से मुक्त कीजिएगा।

एवमभ्यर्थितो राज्ञा भक्ति दृष्ट्या निरीक्षितः।
ददौ तस्मै विधानेना दीक्षां तं मुनिसत्तमः॥ 54॥

राजा सुव्रत ने जब इस प्रकार मुनि कालहस्ति के सम्मुख भक्तिपूर्वक प्रार्थना की तो उन मुनिसत्तम ने विधिपूर्वक दीक्षा प्रदान की।

दीक्षमाणोधा राजर्षिरमूर्धान् तच्चरणौ स्पर्शन्।
पृष्टवान् तुष्टमनसा स्वगुरुं कालहस्तिनम्॥ 55॥

दीक्षा के उपरान्त राजर्षि सुव्रत ने सन्तुष्ट मन से अपने सिर को गुरु के चरणों में रख दिया और अपने गुरु कालहस्ति से प्रश्न किए।

करौ द्वौ सम्पुटीकृत्य नमामि त्वां महागुरो।
विश्वोत्पत्ति विधानं यत् ब्रूहि मे संशयावहम्॥ 56॥

दोनों ही हाथों को जोड़कर राजा बोले— हे महागुरु! मैं आपको नमन करता हूँ। मैं अनेक संशयों से घिरा हुआ हूँ। आप कृपाकर मुझे विश्वोत्पत्ति के विधान के बारे में कहियेगा।

केन विश्वमिदं जातं कस्माज्ञाता हि देवताः।
कोऽपि देवोस्य विश्वस्य कस्याधारादिदं स्थितः॥ 57॥

हे स्वामी! इस विश्व ने किससे जन्म लिया है? देवतागण किससे जन्मे हैं? दिखाई देने वाले इस विश्व के देव कौन है? किसके आधार पर यह विश्व विद्यमान है?

केनेदं सृज्यते कृत्स्नं तत्सर्वं केन रक्षितम्।
केन नश्यति योगीन्द्र! वदं मे ज्ञानिनां वर॥ 58॥

हे ज्ञानियों में श्रेष्ठ! चराचर से युक्त यह समस्त जगत किसके द्वारा रचा जाता है? इस सृष्टि की रक्षा कौन कर रहा है? अन्त में यह किस प्रकार नष्ट होने वाली है? यह सब मुझे समझाइयेगा।

श्रुत्वा वाक्यं स राजर्षेर्मुख्य शिष्यस्य सादरात्।
अब्रवीदिदमाचार्यस्सर्वशास्त्रार्थानित्प्रियम्॥ 59॥

नित्य समस्त विषयों पर शास्त्रार्थ करने वाले वाले मुनि कालहस्ति ने जब अपने प्रिय मुख्य शिष्य राजा सुव्रत के वचनों को सुना तो वह कहने लगे—

कालहस्ति उवाच —

सुव्रत शृणु नीतिज्ञ! वक्ष्येऽहं पृच्छितं त्वया।
सम्यग्व्यसिता बुद्धिर्ज्ञाने त्रैलोक्य दुर्लभा॥ 60॥

मुनिश्रेष्ठ कालहस्ति बोले— हे नीतिज्ञ सुव्रत! मैं तुम्हारे प्रश्नों का उत्तर अवश्य दूँगा। ज्ञान के प्रति जिज्ञासा लिए बुद्धि का उत्पन्न होना तीनों लोकों में ही दुर्लभ है।

पुरा हरः कुमारेणा सम्पृष्टो विश्वकर्मणः।
माहात्म्यमब्रवीत्तस्मै सहस्त्रग्रन्थ सम्मितम्॥ 61॥

प्राचीनकाल में कुमार कार्तिकेय ने इस सम्बन्ध में भगवान् शिव से पूछा था। इस पर शिव ने उनको एक हजार ग्रन्थों (श्लोकों) के बराबर विश्वकर्मा का माहात्म्य सुनाया था[1]।

तद्रहस्यं महाराज! शृणु वक्ष्यामि तेऽधुना।
समस्तं विश्वकर्माणं नत्वातं सुसमाहितः॥ 62॥

हे महाराज! उस समस्त रहस्य को आज मैं भगवान् विश्वकर्मा को नमस्कार करता हुआ तुमसे कहता हूँ। तुम सावधान होकर सुनियेगा।

वेदशास्त्रेतिहासेषु पुराणेषु च सर्वतः।
विश्वकर्मा जगद्धेतु रिति राजेन्द्र! कथ्यते॥ 63॥

हे राजेन्द्र! वेद, शास्त्रों, इतिहास, पुराण आदि वाङ्मयों में यह कहा गया

---

1. यहाँ पुरातन ग्रन्थ रचना का स्मरण है। हमारे यहाँ जब भी किसी नवीन विषयमूलक शास्त्र का प्रवर्तन होता है, उसकी परम्परा को देव-संवाद के रूप में लिखा जाता है। इस प्रकार यहाँ इस पुराण के प्राचीन रूप में शिव-कार्तिकेय संवाद मूलक होना प्रतिपादित किया गया है।

है कि इस सारे संसार की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय आदि समस्त कर्मों के कारणभूत विश्वकर्मा ही हैं।

अजायता जगत्सर्वं सृष्ट्यादौ विश्वकर्मणः।
स एव कर्ता विश्वस्य विश्वकर्मा जगत्पतिः॥ 64॥

भगवान् विश्वकर्मा द्वारा ही इस संसार की सृष्टि की गई है। इसलिए समस्त विश्व के वह प्रभु ही कर्ता हैं। वह विश्वकर्मा ही जगत्पति हैं।

इति श्रीकालहस्तिमुनि प्रणीतं श्रीविश्वकर्मपुराणे राज्ञासुव्रतजिज्ञासा नाम प्रथमोऽध्यायः॥ 1॥

इस प्रकार श्रीकालहस्तिमुनि प्रणीत श्रीविश्वकर्मपुराण में राजा सुव्रत की जिज्ञासा नामक प्रथम अध्याय पूरा हुआ।

अथ द्वितीयोऽध्याय: ॥ 2 ॥

राजा सुव्रतोवाच —

नमस्ते कालहस्तीन्द्रा! कुमारायेश्वरोदितः।

को ब्रूहि विश्वकर्मेति देवो विश्वाधिनायकः ॥ 1 ॥

राजा सुव्रत बोले— हे मुनीन्द्र कालहस्ति! मैं आपको नमस्कार करते हुए यह जानना चाहता हूँ कि भगवान् शिव ने कुमार कार्तिकेय को जिन विश्वकर्मा के बारे में बताया था, वे विश्व के अधिनायक विश्वकर्मा कौन हैं?

को सौ सर्वेषु वेदेषु धाता वा विष्णुरेव वा।

महेन्द्रो वाऽथ इन्द्रो वा सूर्यो वा सोम एव वा ॥ 2 ॥

वह भगवान् सदा वेदों में स्तुत-स्मृत धाता (पितामह) हैं, विष्णु हैं, महेन्द्र, इन्द्र अथवा सूर्य हैं या सोम हैं? वह कौन हैं, मुझे बताइयेगा।

अग्निर्वा वरुणो वाऽथ कुबेरो वा यमोऽथवा।

दिक्पालो लोकपालो वा वायुर्वा पन्नगोऽथवा ॥ 3 ॥

वह अग्नि हैं अथवा वरुण? कुबेर या फिर यम हैं? वह दिक्पाल हैं या लोकपाल हैं अथवा वायु या फिर पन्नग (सर्पराज वासुकि) हैं?

गन्धर्वो वाऽथ जन्तुर्वा स्थावरो जङ्गमोथवा।

स्वीर्वा पुमानवा पण्डोवा राक्षसो वाऽथ वानरः ॥ 4 ॥

वह संगीत कुशल गन्धर्व हैं अथवा कोई जन्तु? स्थावर हैं अथवा जंगम हैं? वह स्त्री हैं अथवा पुरुष या फिर नपुंसक हैं? वह राक्षस हैं अथवा वानर हैं?

खगो वा मृगरूपो वा पशुर्वा पर्वतोऽथवा।

स्थूलसूक्ष्मोऽथवाऽऽकारो निराकारोऽथवा मुने ॥ 5 ॥

हे मुने! आप जिनके बारे में कह रहे हैं, वह कोई पक्षी हैं या मृगरूप पशु हैं अथवा पर्वत हैं? वह स्थूल हैं अथवा सूक्ष्म? वह आकारवान हैं अथवा निराकार हैं? बताइयेगा।

बालो वा तरुणो वाऽथ वृद्धो वा मध्यमोऽथवा।

तृणं गुल्मोऽथवा वृक्षो वस्तु श्रेष्ठोऽथवा मणिः ॥ 6 ॥

वह बालक हैं या तरुण? वह वृद्ध हैं अथवा मध्यमवयी हैं? वह तृण हैं अथवा गुल्म या वृक्ष? क्या वह कोई श्रेष्ठ वस्तु हैं अथवा मणि हैं?

कीदृग्रूपं गुरो तस्य केनाऽऽधारेण वर्तते।
यस्मा ज्ञातः कुलं तत्किं पिता मातास्ति वानवा॥ 7॥

हे गुरुवर! उनका रूप कैसा है? उनका आधार क्या है? वह किससे जन्मे हैं? उनकी जाति और कुल कौन सा है? उनके माता-पिता कौन हैं?

अनाथो वा सनाथो वा स्वयंभूर्वा त्वजयऽथवा।
ऊह्यू वाऽथ निरुह्यूवा वक्तव्यो यदि वा मुने॥ 8॥

हे मुनिनाथ! वे किस नाथ के संरक्षण में हैं? क्या वे अनाथ हैं? वे स्वयंभू या बिना जन्म के अजेय हैं? वे हमारे सोच में हैं या हमारे सोच के बाहर हैं? कृपा करके आप यह सब मुझे समझाइयेगा।

वदस्व कालहस्तीन्द्र! श्रोतु मर्हो भवेदऽहम्।
तत्कथामृतपानेन क्षुधा मां नैव बाधते॥ 9॥

हे कालहस्ति मुनिप्रवर! मैं अमृत के समान उस कथा के रस का पानकर बिना भूख के भी रह सकूँ। अतएव आप मुझे उस कथा को सुनने के योग्य समझें तो अवश्य ही उपदेश कीजिएगा।

मुनि कालहस्ति उवाच —

यद्विश्वकर्मणो रूपमवाग्मन सगोचरम्।
सुव्रत शृणु वक्ष्यामि ईश्वरोक्तेन वर्तमना॥ 10॥

मुनि कालहस्ति बोले— हे सुव्रत! वाणी में और मन को नहीं दिखाई देने वाले उन विश्वकर्म स्वरूप को मैं ईश्वर के कथन के रूप में आपको समझाता हूँ।

न ब्रह्मा न विष्णुश्च न रुद्रो न च देवताः।
एक एव भवेद्विश्वकर्मा विश्वाधिदेवता॥ 11॥

जब न ब्रह्मा होते हैं न ही विष्णु, न रुद्र होते हैं न ही अन्य कोई देवता, उस काल में एक मात्र विश्वकर्मा ही इस विश्व के अधिदेवता बनकर प्रकाशमान होते हैं।

निर्गुणः सगुणश्चेति द्विविधो विश्वकर्मणाः।
मूर्तिभेदो महद्गूढः सर्वेषां संशयावहः॥ 12॥

उस विश्वकर्मा के निर्गुण और सगुण दो स्वरूप हैं। उनका मूर्तिभेद समझ पाना बहुत ही गूढ़ हैं और सब (अज्ञानियों) के लिए संशयकारी है।

राजोवाच —

यन्निराकार साकारभेदं तद्विश्वकर्मणः।
कालहस्ति महायोगिन्! क्रमाद्वद सविस्तरम्॥ 13॥

यह सुनकर राजा सुव्रत बोले— हे महायोगी कालहस्ति स्वामी! परात्पर विश्वकर्मा के साकार स्वरूप और निराकार मूर्तिभेद के बारे में मुझे सविस्तार समझाइयेगा।

कालहस्ति उवाच —

निर्गुणाः पञ्चधाभेदलीलास्ता विश्वकर्मणः।
क्रमात् शृणुष्व राजर्षे! वेदमस्तक बोधिताः॥ 14॥

राजा के प्रश्न करने पर मुनि कालहस्ति बोले— हे राजर्षि! विश्वकर्मा की निर्गुण भेद लीलाएँ उपनिषदों में पाँच प्रकार की बताई गई हैं।

प्रथमस्तु निराकारः ओङ्कारस्तदन्तरम्।
चिदानन्दः परमज्योतिर्ब्रह्मानन्दस्तु पञ्चमः॥ 15॥

इनमें से प्रथम भेदलीला निराकार है। तदनन्तर ओंकार स्वरूप है। तीसरी चिदानन्द है। चतुर्थ परमज्योति और पाँचवीं भेदलीला ब्रह्मानन्द के नाम से कही गई है।

यान्निराकार भेदास्तु अवाग्मानस गोचराः।
सगुणे तु तथा पञ्चभेदास्ते विश्वकर्मणः॥ 16॥

जिस प्रकार विश्वकर्मा के मन और वाणी से दूर पाँच निराकार भेद हैं, उसी प्रकार उनके सगुण स्वरूप के भेद भी पाँच हैं।

राजोवाच —

नमस्ते कालहस्तीन्द्रा! प्रथमं विश्वकर्मणः।
निराकारं पवित्रं मे वदतत्कीदृशं गुरो॥ 17॥

राजा सुव्रत बोले—हे गुरुदेव! कालहस्तीन्द्र मुनिवर! मैं आपको नमस्कार कर रहा हूँ। पहले आप उन विश्वकर्मा के निराकार पवित्र स्वरूप को मुझे समझाइयेगा।

मुनि उवाच —

निराकारं निरालम्बं सर्वशून्यमगोचरम्।
निश्शब्दमस्पृशं रूप-रस-गन्ध विवर्जितम्॥ 18॥

राजा सुव्रत के प्रश्न पर मुनि कालहस्ति बोले — उन भगवान् का निराकार स्वरूप किसी के भी आश्रय में नहीं है। अपने बिना दूसरा कोई नहीं है। मन और बुद्धि को दिखाई देने वाला नहीं है अर्थात् अगोचर, अज्ञेय है। वह शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध जैसे पंचभूतों के गुणों से भी रहित है।

नीरूपमाद्यमोङ्कारं ब्रह्मबीजं परात्परम्।
अक्लेद्यं नाशरहितमनेकाङ्कुर कारणम्॥ 19॥

उन विश्वकर्मा का पहला तत्त्वभेद बिना रूप के ओंकार सहित है। वह ब्रह्मबीज और परात्पर अर्थात् परम से भी अधिक परम हैं। वह जल से भीगने वाले नहीं है। वह नाश से रहित हैं और अनेक अंकुरणों के कारण हैं।

आदि-मध्या-न्त रहितं मिथो व्यावृत्ति वर्जितम्।
गुणयोनि गुणातीतं समस्त व्यस्त कारणम्॥ 20॥

वह विश्वकर्मा प्रारम्भ, मध्य और अन्त के भेदभाव से रहित हैं। सत्व, रज और तम जैसे गुणों की योनि और गुणों से अतीत हैं। संसार के सभी जीवों के लिए कारणभूत बनकर सृष्टि रचते हैं।

नादबिन्दु कलातीतं सर्वपूर्णं निरञ्जनम्।
इदं ब्रह्म स्वरूपं च यत्तदोङ्कारमीरितम्॥ 21॥

वह विश्वकर्मा नादबिन्दु (बुद्धि), कला (जीव) इनको पार करके सर्वव्यापी पूर्ण हैं और शोक, मोह जैसे कलंक से रहित अर्थात् निरंजन है। ऐसे ब्रह्म स्वरूप को ही ओंकार कहा जाता है।

क्वचिन्महत् क्वचिदणु क्वचिद्गुरु क्वचिल्लघु।
क्वचित्तमः क्वचित्तेजः क्वचित् स्फुरति लीयते॥ 22॥

वह एक ही समय में कभी महान है तो कभी अणु की तरह हैं। कभी गुरुवत या भाररूप में हैं तो कभी लघु रूप में हैं। कभी अन्धकार के रूप में हैं तो कभी प्रकाश के रूप में हैं। कभी स्फुरित होने वाले तो कभी लीन करने वाले हैं।

क्वचित् पतति संयाति वात्यस्तीति न संशयः।
भावितं यत्र कुत्रैव तच्चिदानन्दमुच्यते॥ 23॥

कभी वह एक ही स्थान पर स्थित हैं तो कभी अस्थिर हैं, इसमें संशय नहीं हैं। कभी हवा की तरह प्रवहमान हैं तो कभी निश्चल रहने वाले हैं। ये सभी क्रियाएँ उनमें विद्यमान होने से वह चिदानन्द कहे जाते हैं।

सूर्ये यद्वर्तते ज्योतिर्यद्वत्तच्च हुताशने।
चन्द्रे च वर्तते ज्योतिर्यच्च तारागणेष्वपि॥ 24॥
जीवराशिषु मेघेषु वेदान्तेषु च विद्यते।
देवतान्तर भेदेषु ज्योतिर्यद्विद्यते पृथक्॥ 25॥

सूर्य में जिस तरह प्रकाश होता है, जैसे अग्नि में उजाला होता है, जिस प्रकार चन्द्रमा और तारागणों में ज्योति होती है, वैसे ही वह हैं अर्थात् वह विश्वकर्मा समस्त जीव राशियों में, बादलों में, देवताओं में, वेदान्त के मत में विद्यमान हैं। देवतान्तर भेद के अनुसार वह अलग-अलग में विद्यमान रहने वाली वाली ज्योति हैं।

यस्मिन् भूत्वा पुनर्यस्मिन् प्रलीयन्ते भवन्ति च।
ज्योतिषां परमं स्थानं तत्परं ज्योतिरिष्यते॥ 26॥

यह सारा संसार जिससे जन्म लेकर फिर जिसमें लीन हो रहा है और जैसे पुनः पुनः जन्म और मरण हो रहे हैं, उन ज्योतियों की परम ज्योति वही विश्वकर्मा हैं।

पुष्पमध्ये यथा गन्धो पृथ्वी मध्ये यथा जलम्।
शङ्खमध्ये यथा नादो वृक्षमध्ये यथा रसः॥ 27॥
तथा सर्वशरीरेषु अण्ववण्वंतरेष्वपि।
स्थित्वा भ्रमयतींदं हि तत्परं ब्रह्म उच्यते॥ 28॥

जिस प्रकार पुष्प के बीच गन्ध होती है, जैसे पृथ्वी के मध्य में जल होता है, जैसे शंख के बीच ध्वनि होती है और जिस तरह वृक्षों में रस विद्यमान होता है, वैसे ही सभी शरीरों और अणु-परमाणु में स्थित रहकर उनको इस संसार में घुमाने वाले वे परब्रह्म ही हैं।

इति श्रीकालहस्ति मुनि प्रणीत श्रीविश्वकर्मपुराणे द्विधाविश्वकर्म स्वरूपवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः॥ 2॥

इस प्रकार श्रीकालहस्ति मुनि द्वारा रचित श्रीविश्वकर्मपुराण में दो प्रकार के विश्वकर्मा के स्वरूप के वर्णन के साथ दूसरा अध्याय पूरा हुआ।

अथ तृतीयोऽध्याय: ॥ 3 ॥

राजा सुव्रतोवाच —

सगुणे कति भेदास्ते साकारा विश्वकर्मण:।
ब्रूवतां पुरुषव्याघ्र कालहस्ति महामुने॥ 1॥

राजा सुव्रत बोले— पुरुषों में श्रेष्ठ! हे कालहस्ति महामुने! अब परात्पर विश्वकर्मा के सगुण साकार भेदों के बारे में आप मुझे समझाइयेगा।

विराड्रूप विश्वरूपमेकरूपं परं शिवम्।
पञ्चमं विश्वकर्माणं नमामि सगुणे तथा॥ 2॥

प्रथम विराटरूप, द्वितीय विश्वरूप, तृतीय एकरूप, चतुर्थ परमशिव और पाँचवें विश्वकर्म स्वरूप— इन पाँच रूपों को मैं नमस्कार करता हूँ।

विराटादिं मा चक्ष्व पञ्चरूपेषु चाधुना।
कालहस्तिन् कृतार्थोस्मि त्वया सुज्ञान बोधत:॥ 3॥

हे कालहस्ति महाराज! उक्त पाँच रूपों में से अब आप मुझे पहले विराटरूप के बारे में बताइयेगा। आपके दिए गए इस सुज्ञान से मैं कृतार्थ हो जाऊँगा।

मुनि कालहस्ति उवाच —

विराड्रूपमसङ्काशमचिन्त्यं वा गगोचरम्।
अनन्तकोटि सूर्याभं नानाराग प्रभोज्वलम्॥ 4॥

इस पर मुनि कालहस्ति बोले— उस विश्वकर्मा के रूप के विषय में हम मन से सोच नहीं सकते। वाणी से भी कह नहीं सकते। वह प्रभु अनन्तकोटि सूर्यों से प्रकाशित नाना प्रकार के रंगों से शोभायमान हैं।

ऊर्ध्वरेस् विरूपाक्षं व्योमकेशं दिगम्बरम्।
रोमरन्ध्रं स्थितानेक कोटिं ब्रह्माण्ड जालकम्॥ 5॥

वह ऊर्ध्वरेतस् है। वह विरूपाक्ष है। आकाश को अपने केश बनाकर उन्होंने दिशाओं को ही अपने वस्त्र बनाए है। इतना ही नहीं, उन विराटरूप के रोमरन्ध्रों में अनेकानेक ब्रह्माण्ड बने हुए हैं।

स्वेदाम्बुकण सङ्काश प्रतीकस्थित सागरम्।
नटसत्वर सन्धूत जटासन्दोह वैभवम्॥ 6॥

उस विराटमूर्ति में ये महासमुद्र स्वेद बिन्दुओं की तरह प्रकाशित होते हैं। उस मूर्ति के तेजी से नाट्य करते समय उनकी जटाएँ कम्पायमान होती हैं।

कपालमालिकाक्रान्तं मायातीतं परात्परम्।
वज्र-शूल-गदाहस्तं भस्मोद्धूलित विग्रहम्॥ 7॥

वह विश्वकर्मामूर्ति कपाल मालाओं से शोभायमान है। वह माया के पार और परात्पर हैं। उनके हाथों में वज्र, शूल और गदा जैसे आयुध धारण किए हुए हैं। उनका शरीर भस्म-विभूति का विलेपन किए हुए है।

एवमक्षरमव्यक्तं नाद्यन्तं विश्वकर्मणः।
इदं विराटस्वरूपं च दर्शितं ते महीपते॥ 8॥

हे महीपते! इस प्रकार नाश रहित, अव्यक्त, आदि और अन्त से हीन विश्वकर्मा के विराट् स्वरूप के दर्शन मैंने आपको करवाये हैं अर्थात् बताया है।

विश्वरूपं प्रवक्ष्यामि शृणु राजन्! जगद्गुरोः।
यदा श्रवणमात्रेण मुच्यते सर्वकिल्बिषैः॥ 9॥

हे राजन! उन जगद्गुरु विश्वकर्मा के बारे में कहता हूँ जिनके सुनने मात्र से समस्त पापों से छुटकारा मिल जाता है।

नमामि विश्वकर्माणं ब्रह्माणं विश्वतोमुखम्।
कोटि सूर्याधिकाभासं कोमलामल विग्रहम्॥ 10॥

उन विश्वकर्मा, ब्रह्मा और विश्वतोमुख को नमस्कार जो करोड़ से भी अधिक सूर्यों के प्रकाश से आभासवान हैं और कोमल तथा स्वच्छ विग्रह वाले हैं।

नानावर्णविचित्राङ्गं नानालङ्कारशोभितम्।
सर्वतोवदनैर्दीपं सर्वतो बाहुभिर्युतम्॥ 11॥

वह विश्वरूप नाना प्रकार के वर्णों और विचित्र अंगों वाला है। वह अनेकानेक अलंकारों से विभूषित है। वह सभी दिशाओं में मुखों से दीप्तिमान और सभी ओर भुजाओं से युक्त हैं।[१]

---

१. तुलनीय—विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतोबाहुरुत विश्वतस्पात्। सं बाहुभ्यां धमति सं पतत्रैर्द्यावाभूमी जनयन्देव एकः॥ विश्वकर्मा विमना आद्विहाया धाता विधाता परमोत संदृक्।

सर्वदिव्यायुधधरं छन्दोवाह सुसंस्थितम्।
बहूदराङ्घ्रि सम्पन्नमनेकाम्बरभूषणम्॥ 12॥

अनेक दिव्य आयुधों को धारण करके, गायत्री छन्द जैसे वाहनों पर अधिरोहण करके, अनेक पाँवों, अनेकानेक उदरों, नाना परिधानों और आभूषणों को धारण किए वह मूर्ति शोभित हैं।

चन्द्रसूर्याग्निनयनैर्दंष्ट्रा वक्त्रैश्चभीषणम्।
दिव्यरत्नकिरीटाङ्कं दिव्याभरणभूषितम्॥ 13॥

वह मूर्ति दिव्यरूप में है। चन्द्रमा, सूर्य, अग्नि जैसी आँखों सहित वह अनेक दाढ़ों वाले मुख को लिए भयोत्पादन करने वाले हैं। उनके सिर पर किरीट मुकुट में अनेक दिव्यरत्न जड़े हुए हैं और वह स्वयं दिव्य आभरणों से भूषित है।

सुगन्धिपुष्पमाल्यैश्च स्फुरच्चन्दनचर्चितम्।
सुरासुरादृश्यमान विग्रहं विश्ववैभवम्॥ 14॥

यही नहीं, वह विश्वरूप मूर्ति सुगन्धित पुष्पों की मालाएँ धारण किए हैं। वह चन्दन का आलेपन किए हुए हैं। वह सुन्दर विश्ववैभव मूर्ति देवता और दानवों के लिए दिखाई देने वाली नहीं है।

देवता-ऋषि-गन्धर्व-नाग-यक्षैश्च किन्नरैः।
विद्याधराप्सरोभिश्च सरिद्भिस्सागरैस्तथा॥ 15॥
सिद्ध-भूतगणै शैलैस्तरुभिर्मृगपक्षिभिः।
विविधैर्दृश्यमानं तद्विश्वरूपमितीरितम्॥ 16॥

किन्तु, वह विश्वरूप अनेक देवतागणों, ऋषिगणों, गन्धर्वों, नागगणों, यक्षगणों, किन्नरों, विद्याधरों, अप्सरांओं, नदियों, सागरों, सिद्धों, भूतगणों, पर्वतों, वृक्षों, मृगादि जन्तुओं और पक्षियों सहित विविध प्रकारेण दृश्यमान है।[१]

तेषामिष्टानि समिषा मदन्ति यत्रा सप्तऋषीन् पर एकमाहुः॥ (ऋग्वेद मंडल 10, 81, 3; 10, 82, 2)

तत्र यास्कभाष्यम् : विश्वकर्मा विभूतमनाः व्याप्ता धाता च विधाता च परमः च संद्रष्टा भूतानाम्। तेषां इष्टानि वा। कान्तानि वा। गतानि वा। मतानिं वा। नतानि वा। अद्भिः समोदन्ते। यत्र एतानि सप्त ऋषीणानि ज्योतीषिं। तेभ्यः परः आदित्यः। तानि एतस्मिन् एकं भवन्ति इति अधिदैवतम्...। (निरुक्तम् 10, 26)

१. तुलनीय— पश्यामि देवांस्तव देव देहे सर्वांस्तथा भूतविशेषसङ्घान्। ब्रह्माणमीशं

एकः पुराणपुरुषः प्रकृतीशः परात्परः।
विश्वाकारस्त्रयीमूर्तिः सृष्टेराद्यः पुमान्विभुः ॥ 17 ॥

वह पुराणपुरुष हैं। वह प्रकृति के ईश्वर और परात्पर हैं। उनका आकार समस्त संसार है। वे त्रयीमूर्ति और सृष्टि से पहले ही सर्वव्यापि पुरुष हैं।

पादौ द्वौ तस्य पातालं पीठं धरणी मण्डलम्।
नाभिर्ब्रह्माण्डमनिलः प्राणोग्निर्भवन्मुखम् ॥ 18 ॥

उनके दो चरण पाताल लोक हैं। धरणी की पीठिका उनका आसन है। ब्रह्माण्ड उनकी नाभि हैं। वायु उनका प्राण और अग्नि उनका मुख हैं।[१]

चन्द्रसूर्यौ च नेत्रेद्वये शिरोद्यौः श्रवणे दिशः।
नक्षत्रग्रहताराश्च पुष्पमाला बभुर्विभोः ॥ 19 ॥

सूर्य और चन्द्रमा नेत्र उनके नेत्र स्वरूप हैं। स्वर्गलोक उनका सिर हैं। कान समस्त दिशाएँ बने हैं। नक्षत्र, ग्रह और तारादिक उनके गले में पुष्पमालाओं की तरह प्रकाशमान हैं।[२]

एते सर्वसुरालोका जायन्ते चादिपूरुषे।
तमेकमूर्तिमित्याहुर्विश्वकर्माणमव्ययम् ॥ 20 ॥

उस आदिपुरुष के फलस्वरूप ही सारे देवताओं और लोकों की उत्पत्ति होती है। वह एकमूर्ति विश्वकर्मा ही हैं[३] जिनको सर्वथा अव्यय कहा गया हैं।

लिङ्गाकारः परशिवो दिव्यतेजोमयोव्ययः।
आदिमध्यान्तरहितशशान्तः स्थाणुरसौ गुरुः ॥ 21 ॥

वह जगद्गुरु लिंगाकार हैं, दिव्य तेजोमय परमशिव हैं। उनका नाश नहीं

कमलासनस्थमृषींश्च सर्वानुरगांश्च दिव्यान्। अनेकबाहूदरवक्त्रनेत्रं पश्यामि त्वां सर्वतोऽनन्तरूपम्। नान्तं न मध्यं न पुनस्तवादिं पश्यामि विश्वेश्वर विश्वरूप॥ (श्रीमद्भगवद्गीता 11, 15-16 इत्यादिनां)

१. तुलनीय– किं स्विदासीदधिष्ठानमारम्भणं कतमत्स्वित् कथासीत्। यतो भूमिं जनयन्विश्वकर्मा वि द्यामौर्णोन्महिना विश्वचक्षाः॥ (ऋग्वेद 10, 81, 2; तथा सातवलेकर भाष्य मन्त्र 842)

२. तुलनीय– चक्षुषः पिता मनसा हि धीरो घृतमेने अजनन्नम्नमाने। यदेदन्ता अददृहन्त पूर्व आदिद् द्यावापृथिवी अप्रथेताम्॥ (ऋग्वेद 10, 82, 1)

३. तुलनीय– यो नः पिता जनिता यो विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा। यो देवानां नामधा एक एव तं सम्प्रश्नं भुवना यन्त्यन्या॥ (ऋग्वेद 10, 82, 3)

होता। वह आदि, मध्य और अन्त से रहित हैं। उनमें कोई विकार रही हैं। वे शान्त स्वभाव वाले निश्चल और स्थाणु हैं।

पीठं धरित्री वलयं लिङ्गमाकाश सम्मितम्।
भूगोलमुदिरं तस्य सागरास्सरितो नगाः ॥ 22 ॥

उनके लिए यह धरती ही पीठासन है। आकाश को कायाकार जानना चाहिए। यह भूगोल, सागर, नदियाँ और पर्वत उनका उदर भाग है।

वेदोस्स वदनं कान्तं नेत्राण्यग्रीन्दु भास्कराः।
स्फुरच्चन्द्रसहस्त्राभं वपुस्तस्य महात्मनः ॥ 23 ॥

वेद उनके सुन्दर मुख की तरह हैं। अग्नि, चन्द्रमा और सूर्य उनके नेत्रों की तरह कान्तिमान हैं। उन महात्मा का देह हजार चन्द्रमाओं की आभा से प्रकाशमान होता है।

साकार रूपाण्ये तानि निर्गुणस्य महाविभोः।
अनन्तानन्त वीर्यस्य ब्रह्मणो विश्वकर्मणः ॥ 24 ॥

इस प्रकार उन निर्गुण महाविभु का साकार स्वरूप जानना चाहिए। यह निश्चित है कि वे ब्रह्मण विश्वकर्मा अनन्त शक्ति वाले हैं।

इति श्रीकालहस्तिमुनि प्रणीत श्रीविश्वकर्मपुराणे महाविभो विश्वकर्मे सगुण स्वरूप वर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ 3 ॥

इस प्रकार कालहस्ति मुनि द्वारा प्रणीत श्रीविश्वकर्मपुराण में महाविभु विश्वकर्मा के सगुण स्वरूप के वर्णन नाम वाला तीसरा अध्याय पूरा हुआ।

अथ चतुर्थोऽध्याय: ॥ 4 ॥

राजा सुव्रतोवाच —

नमस्ते कालहस्तीन्द्रा! निराकारो जगद्गुरु:।
कथं साकार विभवं तद्रहस्यं वद प्रभो:!॥ 1 ॥

राजा सुव्रत कहने लगे— हे कालहस्ति मुनीश्वर! आपको नमस्कार हो। आपके कथनानुसार यदि उन जगद्गुरु का स्वरूप निराकार है तो उनका पूर्वकथित साकार वैभव कैसे है? इस रहस्य को आप मेरे प्रति कहने की कृपा कीजिएगा।

मुनि कालहस्ति उवाच —

निर्गुणं सगुणं चेति द्विविधं विश्वकर्मण:।
रूपं भवति तत्प्राप्तौ सगुणं निर्गुणाय च॥ 2 ॥

इस पर मुनि कालहस्ति ने कहा— निर्गुण और सगुण विश्वकर्मा के ये दो रूप हैं। उनकी प्राप्ति अथवा निर्गुणात्मक सिद्धि के लिए सगुण सहकार दे रहा है।

राजा सुव्रतोवाच —

निराकारो विभुर्जातस्साकारेण कथं प्रभु:!
तद्रहस्यं वद प्राज्ञ कृपया मुनि सत्तमा!॥ 3 ॥

यह सुनकर सुव्रत बोले— हे मुनि सत्तम! निराकार प्रभु साकार कैसे होते हैं। कृपा करके इस रहस्य को आप समझाने का कष्ट कीजिएगा।

मुनि कालहस्ति उवाच —

आसीत् पूर्वं निरालम्बे निश्शब्दे रूपवर्जिते।
स्पर्शशून्येगन्धहीने नादोजातो महात्मनि॥ 4 ॥

पूर्व में सृष्टिकाल में आधार-आश्रय विहीन, नि:शब्द, रूप से हीन, स्पर्श से शून्य, गन्ध से रहित सृष्टि में महान् नाद उत्पन्न हुआ।

नादेन जायते बिन्दुर्बिन्दुना जायते कला।
नादबिन्दुकलायोगोऽव्यय: प्रणव उच्यते॥ 5 ॥

उस नाद से बिन्दु हुआ। बिन्दु से कला हुई। उन नादबिन्दु-कला के संयोग से अव्यय कहा जाने वाला प्रणव उत्पन्न हुआ।[१]

प्रणवं बीजमभवदनेकाङ्कुरकारणम्।
अदाह्यमग्निनाद्विश्च न क्लेद्यं नाशवर्जितम्॥ 6॥

वह प्रणव अनेक अंकुरों के लिए बीजरूप कारण कहा गया है। वह अग्नि से कभी नहीं जलने वाला है। वह जल से कभी नहीं भीगता है। इस प्रकार वह नाश से रहित कहा गया है।

एक एव महद्बीजं समस्त व्यस्तकारणम्।
परं ब्रह्म परं बीजमङ्कुरं जायते ततः॥ 7॥

वह एक महद्बीज है जो समस्त जीव-जगत के लिए कारणभूत है। वह परम ब्रह्म परम बीज है जिससे इस जगत का अंकुरण हुआ है।

तदङ्कुरात्प्रवृत्तो भूद्विश्वकर्माह्वयोद्रुमः।
मूलवल्कलशाखाभिर्विश्वं व्याप्य स वर्तते॥ 8॥

वह अंकुर ही बाद में जड़-वल्कल-काण्ड शाखाओं वाला विश्वकर्मा नामक महावृक्ष विस्तारित हुआ है। वही विश्व बनकर प्रकाशित हो रहा है।[२]

तद्रुमःपुरुषो देवो विश्वमूर्तिरगोचरः।
स्वयंभूर्भगवान् ब्रह्मा विश्वकर्मात्रयीमयः॥ 9॥

वह वृक्षपुरुष ही आदिदेव भगवान् है। मन की दृष्टि से अगोचर विश्वाकार होकर वह भगवान् स्वयंभू हुए हैं। ब्रह्मा विश्वकर्मा त्रयीमय (ऋक्सामयाजुष्) है।

---

१. तुलनीय— स बिन्दुनादबीजत्वभेदेन च निगद्यते। तद्विस्तारप्रकारोऽयं यथा वक्ष्यामि साम्प्रतम्॥ बिन्दोस्तस्माद्भिद्यमानाद्रवोऽव्यक्तात्मको भवेत्। स रवः श्रुतिसम्पन्नैः शब्दब्रह्मेति कथ्यते॥ अव्यक्तादन्तरुदितत्रिभेद गहनात्मकम्। महन्नामभवेत्तत्त्वं महतोऽहङ्कृतिस्तथा॥ भूतादिवैकारिकतैजसभेदक्रमादहङ्कारात्। कालप्रेरितया गुणघोषयुजा शब्दसृष्टिरथ शक्त्या॥ शब्दाद् व्योम स्पर्शतस्तेन वायुस्ताभ्यां रूपाद्वह्निरेतै रसाच्च। अम्भांस्येतैर्गन्धतो भूर्धराद्या भूताः पञ्चस्युर्गुणोनाः क्रमेण॥ इत्यादि। (प्रपञ्चसारतन्त्रम् 1, 43-47)

२. यहाँ बीजरूपधारी आदिम विश्वकर्मातत्त्व ही विश्वरूप विश्वकर्मा के रूप में ज्ञेय है। यहाँ अद्वैत वेदान्ततत्त्व के रूप का उपदेश है। यह ऋग्वैदिक विश्वकर्माभौवन ऋषि की मान्यता के निकट है, जिसमें कहा गया है कि वे संकल्प मात्र से ही विभिन्न सम्पदाओं को इच्छित रूप देते हुए प्रथम उत्पन्न जगत को संव्याप्त करते हैं और अन्य नवसृजित लोकों में भी प्रविष्ट होते हैं— स आशिषा द्रविणमिच्छमानः प्रथमच्छदवराँ आ विवेश॥ (ऋग्वेद 10, 81, 1)

सहस्त्रशीर्षोऽनन्तः सहस्त्राङ्घ्रिः सहस्त्रदृक्।
सहस्त्रमूर्तये तस्मै नमः साहस्त्रनामवान्॥ 10॥

वह अनन्त भगवान् हजारों सिर वाले, हजारों पाँवों वाले और हजारों आँखों वाले हैं।[१] उन हजार नामों वाले सहस्त्रमूर्ति को नमस्कार है।

स एवादिर्मूलभूतः स परं ब्रह्म उच्यते।
स एव शाश्वतः स्थाणुः स एव त्रिगुणात्मकः॥ 11॥

वह विश्वकर्मवृक्ष ही मूलभूत कारण-पुरुष है। वही परब्रह्म कहा गया है। वह सदा शाश्वत है। चलायमान नहीं अपितु स्थाणु है। वह सत्त्वादि तीनों गुणों वाला है।

सुव्रत राजोवाच —

को ब्रह्मा को महाविष्णुः को रुद्रः कोऽथ वासवः।
कोऽर्क श्रीकालहस्तीन्द्र! देवे श्रीविश्वकर्मणि॥ 12॥

यह सुनकर राजा सुव्रत ने पूछा— हे कालहस्तीन्द्र देव! विश्वकर्मा ही यदि देवाधिदेव है तो फिर ब्रह्मा कौन है? विष्णु कौन है? रुद्र कौन है और कौन वसु है? कौन सूर्य है? यह कहियेगा।

मुनि उवाच —

ब्रह्माविष्णुशिवस्सूर्यस्सुरास्सेन्द्राश्च कोणपाः।
तस्याङ्गेष्वेव वृक्षस्य वर्तन्ते विश्वकर्मणः॥ 13॥

मुनि कालहस्ति कहने लगे— ब्रह्मा, विष्णु, शिव, सूर्य, इन्द्रादि देवता और राक्षस ये सभी विश्वकर्मीय वृक्ष के ही अंगभूत है।

राजोवाच —

कुत्र ब्रह्मा महाविष्णुः कुत्र रुद्रश्च वासवः।
कुत्र सूर्यश्च वृक्षेस्मि वर्तन्ते ब्रूहि मे गुरो॥ 14॥

सुव्रत ने पूछा— हे गुरुवर्य! उस विश्वकर्मा के महावृक्ष में ब्रह्मा का कहाँ निवास है? कहाँ पर महाविष्णु, कहाँ पर रुद्र और कहाँ पर वासव है? कहाँ सूर्य

---

१. तुलनीय— सहस्त्रशीर्षा पुरुषः सहस्त्राक्षः सहस्त्रपात्। स भूमिं विश्वतो वृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम्॥ (ऋग्वेद पुरुषसूक्त 10, 90, 1)

रह रहे हैं, आप कृपया इस सम्बन्ध में समझायेगा।

गुणानि त्रिणि सन्तस्य रजस्सत्त्वतमांसि च।
रजो रक्तं तमः कृष्णं सत्त्वं तु श्वेतवर्णकम्॥ 15॥

विश्वकर्मा तत्त्वतः सत्त्व, रज और तम इन तीनों ही गुणों में विराजमान हैं। उनमें रजोगुण में लाल रंग, तमोगुण में काला और सत्त्वगुण में सफेद रंग होता है।

विष्णुः सत्त्वेन रजसा ब्रह्मा च तमसा हरः।
विश्वकमैव तद्रूपैर्जायते त्रिगुणैस्त्रिधा॥ 16॥

इन तीनों ही गुणों से वह विश्वकर्मा ही सत्त्वगुण से विष्णु की तरह, रजोगुण से ब्रह्मा और तमोगुण से रुद्र की तरह अवतारित होते रहे हैं।[१]

भूयस्तस्मि प्रलीयन्ते प्रभवन्ति पुनर्द्रुमे।
न तस्मास्त्रिगुणातीतो विश्वकर्मा भवेन्नृपा॥ 17॥

हे नृप! वे उस वृक्ष से ही जन्म लेकर उसी में लीन होते रहे हैं। उनके तीन गुणों से अतीत विश्वकर्मा को नहीं जानते हैं।[२]

---

१. इन तीनों ही देवताओं में भेद गुणों के कारण दिखाई देता है, लेकिन इनका मूल विश्वकर्मा ही है। यह प्रसंग विश्वकर्मासूक्त के अनुसार लगता है जहाँ सभी देवताओं के रूप धारण करके उनके नामों को अंगीकृत करने वाले उन एक ही देव को बताया गया है— यो नः पिता जनिता यो विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा। यो देवानां नामधा एक एव तं सम्प्रश्नं भुवना यन्त्यन्या॥ (ऋग्वेद 10, 82, 3)
गीता में इसको इस श्लोक से प्रतिपादित किया गया है— रजस्तमश्चाभिभूय सत्त्वं भवति भारत। रजः सत्त्वं तमश्चैव तमः सत्त्वं रजस्तथा॥ (श्रीमद्भगवद्गीता 14, 10)

२. संसार के स्वरूप को वृक्ष के द्रष्टान्त से परिभाषित करने का यत्न प्राचीन काल से चला आ रहा है। श्वेताश्वतरोपनिषद् में आया है— स वृक्षकालाकृतिभिः परोऽन्यो यस्मात् प्रपञ्चः परिवर्ततेऽयम्। धर्मावहं पापनुदं भगेशं ज्ञात्वात्मस्थमृतं विश्वधाम॥ (श्वेताश्वतर. 6, 6; विशेष द्रष्टव्यः ईशोपनिषद् 5, 5, 1) शिवपुराण में सनातन ब्रह्मवृक्ष का वर्णन आया है जो सभी जीव-प्राणियों का उपजीवी बताया गया है। (शिव. वायवीय संहिता पूर्व. 12, 73-77) ब्रह्म को निर्विशेषवादी इस भौतिक वृक्ष का मूल मानते हैं और सांख्यदर्शन के अनुसार इसी मूल से पहले प्रकृति, पुरुष और तब तीन गुणों की उत्पत्ति होती है। तदोपरान्त आकाशादि पाँच स्थूल तत्त्व, फिर दस इन्द्रियाँ मन आदि होते हैं। इस प्रकार वे समस्त संसार को चौबीस तत्त्वों में विभाजित करते हैं। यदि ब्रह्म, जिसे यहाँ विश्वकर्मा के नाम से कहा गया है, समस्त अभिव्यक्तियों का आधार है तो एक प्रकार से यह भौतिक जगत् 180 अंश (गोलार्द्ध) में है ओर दूसरे 180 अंश (गोलार्द्ध) में आध्यात्मिक जगत है। गीतायथारूप में इस पर विचार किया गया है। गीता के श्लोक हैं— ऊर्ध्वमूलमधःशाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम्।

मूर्तिभेदेन जनितास्तद्देवा विश्वकर्मणः ।
लक्ष्यन्ते पृथगात्मानो वेदेषु प्रतिपादिताः ॥ 18 ॥

विश्वकर्मा की मूर्ति से अलग-अलग जन्म धारण करने वाले देवतागणों को वेदों में अलग-अलग रूपों में प्रतिपादित करके दिखाए गए हैं।

राजोवाच—

एको ब्रह्मा जगत्कर्ता एको विष्णुस्तथैव च।
एको रुद्रो महादेवस्त्रीमूर्तत्यात्मा दिवाकरः ॥ 19 ॥
इति वेदेषु गीयन्ते विद्यमानाः पृथक्सुराः ।
कथामेते प्रजायन्ते विश्वकर्मणि ते मुने ॥ 20 ॥

यह रहस्य सुनकर राजा सुव्रत बोले— एक ब्रह्मा ही जगत के कर्ता है। वैसे ही विष्णु एक हैं और एक ही महादेव रुद्र है जो सृष्टि, स्थिति और लय करने वाले हैं। सूर्य को त्रिमूर्तिस्वभाव वाला कहा गया है। हे मुने! ये सभी देवता अलग-अलग है और वेदों में इनका पृथक् ही गुण गाया गया है। ऐसे में ये देवता विश्वकर्मा भगवान् से कैसे जन्म ले रहे हैं? इसका आशय समझाइये।

मुनि उवाच —

एकमूले महावृक्षे जातास्ते च पृथक्सुराः ।
लक्ष्यन्ते रूपभेदेन तारतम्य विशेषतः ॥ 21 ॥

मुनि कालहस्ति बोले— एक ही मूल का विश्वकर्मा संज्ञक महावृक्ष है और उसके मूल से अनेक रूपों और अनेक भेद-भावों के तारतम्य से जन्मे ये देवगण अनेक प्रकार के दिखाई देते हैं।

पञ्चशाखा भवन्त्यादौ विश्वकर्म महातरोः ।
शिवोमूर्तिर्मूर्तिमांश्च कर्ता-कर्म च नामभिः ॥ 22 ॥

विश्वकर्मा नामक महावृक्ष से सबसे पहले पाँच शाखाओं का उद्भव हुआ, इनके नाम हैं— 1. शिव, 2. अमूर्त (निराकार), 3. मूर्त (साकार), 4. कर्ता और 5. कर्म।

छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित्॥ अधश्चोर्ध्वं प्रसृतास्तस्य शाखा गुणप्रवृद्धा विषयप्रवालाः। अधश्च मूलान्यनुसन्तानि कर्मानुबन्धीनि मनुष्यलोके॥ (श्रीमद्भगवद्गीता 15, 1-2; तुलनीय कठोपनिषद् 2, 3, 1)

ब्रह्माविष्णुश्च रुद्रश्च ईश्वरश्च सदाशिवः।
पञ्चब्रह्ममयं प्रोक्तमादीजं पञ्चशाखि॥ 23॥

प्रथमतः जन्म लेने वाली इन पाँच शाखाओं को ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर और सदाशिव के रूप में जाना गया। ये पाँच शाखाएँ पंचब्रह्ममय जगत है।

बभूव पञ्चशाखाभिस्तत्तरोर्विश्वकर्मणः।
नानादेवमयं दीप्तिं प्रतिशाखा सहस्त्रकम्॥ 24॥

विश्वकर्मा के स्वरूप वाले उस वृक्ष की पाँच शाखाओं से अनेक देवगण दीप्तिमान हुए जिनसे हजारों प्रतिशाखाएँ भी चलीं।

उपशाखा ऋषिमया बभूवस्तत्तरोरिह।
अनुशाखास्त्वसंख्याता यक्ष-गन्धर्व-राक्षसाः॥ 25॥

इसी प्रकार उस विश्वकर्मा महावृक्ष की ऋषि के समान कई उपशाखाएँ भी हैं। उसकी अनुशाखाओं के रूप में असंख्य यक्ष, गन्धर्त और राक्षस भी हुए हैं।

विद्याधराप्सरसिद्धास्तस्य वक्ष्यन्ति पल्लवाः।
तदास्तु जन्तवः प्रोक्ता नानारूप नरादयः॥ 26॥

विद्याधर, अप्सराएँ, सिद्धगण उस वृक्ष के पल्लवों की तरह कहे गए हैं। इसी प्रकार नाना प्रकार के जीव-जन्तु और नर उसके पत्तों की तरह हैं।

तन्मूलवल्कला नागा गुच्छाश्चन्द्रग्रहादयः।
नक्षत्राणि सुपुष्पाणि वेदान्तानि फलानि च॥ 27॥

उसके मूल और छाल के रूप में पातालगत नागों को जानना चाहिए। चन्द्रमादि ग्रह उसके पुष्पगुच्छ हैं। नक्षत्रगण को सुन्दर पुष्प और वेदान्त को उसके फल के रूप में समझना चाहिए।

ब्रह्मानन्दरसाह्यस्मिन् रसा एव महाद्रुमै।
सन्ति प्रणवबीजानि विश्वकर्म स्वरूपिणि॥ 28॥

उस विश्वकर्म स्वरूप महावृक्ष के फलों के रस के रूप में ब्रह्मानन्दरस है और उसके फलों के बीज प्रणव (ॐ) को जानना चाहिए।

सुव्रतोवाच —

एवं भूते महावृक्षे नानादेवमयो मुने।
कथं भाव्यो विश्वकर्मा योगिभिश्चैवमादृशैः॥ 29॥

यह सुनकर राजा सुव्रत ने पूछा— हे मुने! उस ब्रह्माण्डाकार वृक्ष के देवताओं सहित विश्वकर्मा के दर्शन मुझ जैसे साधक और योगियों के लिए कैसे सुलभ होंगे?

मुनि उवाच —

विश्वं गर्भेण संधृत्वा विश्वकर्मा जगत्पतिः।
वटपत्रपुटे शेते यद्दशङ्गुल$_{10}$मात्रकः ॥ 30 ॥

इस पर मुनि कालहस्ति बोले— वह जगत्प्रभु विश्वकर्मा समस्त विश्व को अपने गर्भ में धारण[१] करके 10 अंगुल परिमाण के होकर वटपत्र पर शयन करने वाले हैं।

बालार्क कोटि लावण्यो बालरूपी दिगम्बरः।
योगमायायुतो देवो विश्वकर्मा च पत्रके ॥ 31 ॥

ऐसा लगता है मानो वह करोड़ बाल सूर्यों के तेज को धारण किए हो। वह विश्वकर्मा दिगम्बर हो अपनी योगमाया के साथ उस वटपत्र पर सोये हैं।

अनाभिकमलं ब्रह्मा अकण्ठं वैष्णवी तनुः।
आशीर्शमीश्वरो ज्ञेयो विश्वकर्मत्र ईतनौ ॥ 32 ॥

उन विश्वकर्मा का वेदरूपी शरीर चरणों से लेकर नाभिकमल तक ब्रह्म स्वरूप लिए हैं। नाभि से कण्ठ तक विष्णु के स्वरूप जैसा और वहाँ से सिर तक ईश्वर स्वरूप जैसा शोभायमान है।

कराभ्यां स पदाङ्गुष्ठं वक्त्रे निक्षिप्य चुम्बयन्।
योगनिद्रा समायुक्तो शेते न्यग्रोधपत्रके ॥ 33 ॥

परमेश्वर विश्वकर्मा अपने हाथों से पाँव का अँगूठा अपने मुँह में लेकर चूसते हुए योगनिद्रा से युक्त उस वटपत्र पर शयित हैं।[२]

सुव्रतोवाच —

पञ्चवक्त्रः सहस्राक्ष अनन्तश्चेति तं जनाः।
कथं वदन्ति लोकेस्मिन् यद्गुरो! बालरूपिणम् ॥ 34 ॥

---

१. तुलनीय— परो दिवा पर एना पृथिव्या परो देवेभिरसुरैर्यदस्ति। कं स्विद्गर्भं प्रथमं दध्र आपो यत्र देवाः समपश्यन्त विश्वे ॥ तमिद्गर्भं प्रथमं दध्र आपो यत्र देवाः समगच्छन विश्वे। अजस्य नाभावध्येकमर्पितं यस्मिन्विश्वानि भुवनानि तस्थुः ॥ (ऋग्वेद 10, 82, 5-6)

२. तुलनीय— भागवतमहापुराण एवं प्रश्न संहिता।

यह सुनकर राजा सुव्रत ने मुनिवर से पूछा— हे गुरोत्तम! बालस्वरूप उन विश्वकर्मा को सांसारिक लोग पाँच मुख वाले, हजार आँख वाले और अनन्त कहते हैं। ऐसा क्यों हैं?

मुनि उवाच —

ब्रह्मणः पञ्चशाखास्ताः पञ्चवक्त्राणि तस्य च।
सहस्त्र प्रतिशाखाश्च सहस्त्रञ्च शिरांसि च॥ 35॥

उन ब्रह्मस्वरूप विश्वकर्मा के पाँच मुख ही पाँच शाखाएँ हैं। उनके हजार सिर हजार प्रतिशाखाओं के रूप में जानने चाहिए।

बभूवानन्त सञ्ज्ञो सावनन्त प्रतिशाखिकः।
सहस्त्रबीजसम्पन्नः सहस्त्राक्षः सहस्त्रपात्॥ 36॥

वे विश्वकर्मा महावृक्ष अनन्त उपशाखाओं, अनन्त नामों, अनन्त बीजों, अनन्त नेत्रों और अनन्त चरणों से सुशोभित हैं।

जन्मकर्माभिधानानि गणितुं विश्वकर्मणः।
देवैरपि न शक्यानि का कथानश्च सुव्रतः॥ 37॥

हे सुव्रत! भगवान् विश्वकर्मा के अवतारों, कर्मों और उनके नामों की गणना करना देवताओं के लिए भी शक्य है तो हम लोगों की क्या बिसात है अर्थात् यह कार्य कठिन ही हैं।

इति श्रीकालहस्तिमुनि प्रणीत श्रीविश्वकर्मपुराणे विश्वकर्म महाद्रुम स्वरूप वर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः॥ 4॥

इस प्रकार कालहस्ति मुनि द्वारा प्रणीत श्रीविश्वकर्मपुराण में विश्वकर्म महाद्रुम स्वरूप वर्णन नाम वाला चौथा अध्याय पूरा हुआ।

अथ पञ्चमोऽध्यायः ॥ 5 ॥

राजा सुव्रतोवाच —

कालहस्ति मुने! त्वत्तः कृतार्थोऽस्मि गतस्पृहः।
शृण्वन् यद्विश्वकर्माणि चरित्रं विश्वकर्मणः ॥ 1 ॥

राजा सुव्रत बोले— हे कालहस्ति मुनिवर! आपने भगवान् विश्वकर्मा के जिस कर्म और चरित्र को सुनाया, उसे सुनकर मेरी कामना पूरी हुई है और मैं कृतार्थ हुआ हूँ।

कालहस्ति मुनि उवाच —

पुण्यवानसि राजर्षे! यतो मां परिपृच्छसि।
विश्वकर्म कथा नृणामै हि कामुष्मिकप्रदा ॥ 2 ॥

कालहस्ति मुनि कहने लगे— हे राजर्षि! आप पुण्यवान है कि आपने मुझसे विश्वकर्मा भगवान् के चरित्र के विषय में पूछा है। ये कथाएँ प्रजा की कामनाएँ पूर्ण करने वाली हैं।

विश्वगर्भो महातेजा विश्वोत्पादन कौतुकः।
दधौस पुरुषाकारं त्रिजगद्गुरुरव्ययः ॥ 3 ॥

वे विश्वकर्मा समस्त विश्व को अपने गर्भ में स्थित रखने के सामर्थ्य वाले, महातेज के धारणकर्ता, विश्व के उत्पादन जैसा कौतुक करने वाले, नाशरहित और तीन लोकों के लिए गुरु के नाम वाले हैं। वे विश्वसृष्टि के लिए पुरुषाकार धारण करते हैं।[१]

पञ्चवक्त्रस्त्रिनेत्रोसौ जटाजूट विराजितः।
रक्तगौररुचिश्शान्तो विभुर्भासित चर्चितः ॥ 4 ॥

विश्वकर्मा के पाँच मुख और तीन आँखें हैं। उनके सिर पर जटाजूट विराजित हैं। वह लाल और गौर मिले-जुले वर्ण वाले, शान्त स्वभाव, सर्वव्यापि और विभूति का लेपन किए विराजमान हैं।

---

१. इस प्रसंग में 'सो कामयत बहुस्यां प्रजायेय' जैसा श्रुति प्रमाण विचारणीय है। अन्य उदाहरण भी द्रष्टव्य है : स आशिषा द्रविणमिच्छमानः प्रथमच्छदवाँ आ विवेश:॥ (ऋग्वेद 10, 82, 1)

लेखनीं-पुस्तकं-पाश-मसि-सूत्रा-भयं धनुः।
कुठारमङ्कुशं बाणं बिभ्राणो दशभिर्भुजैः॥ 5॥

विश्वकर्मा अपनी दस भुजाओं में सृष्टिक्रम से 1. लेखनी, 2. पुस्तक, 3. पाश, 4. तलवार, 5. सूत्रमाला, 6. अभयमुद्रा, 7. धनुष, 8. कुठार, 9. अंकुश और 10 बाण जैसे आयुधों को धारण करते हैं।[१]

सहस्त्रादित्य सङ्काशो दिव्याभरणभूषितः।
दिव्याम्बरधरो देवो योगमाया समावृतः॥ 6॥

वह हजारों सूर्यों के समान प्रकाशमान और दिव्य अलंकारों से विभूषित है। वह योगमाया के साथ दिव्य परिधानों को धारण करने वाले देवता हैं।

भूत्वाथ पुरुषाकारो विश्वकर्मादि पूरुषः।
प्रतीकेष्व सृजद्देवान् विश्वोत्पत्ति चिकीर्षया॥ 7॥

जिन भगवान् विश्वकर्मा के विषय में यहाँ कहा गया है, पुरुषरूपधारी वे विश्वकर्मा विश्व की रचना करने के लिए अपने अंगों से (यथावश्यकता) नाना देवताओं की सर्जना करते हैं।

मुखेभ्यो ब्रह्मणः पञ्चजाता मन्वादयः क्रमात्।
मनुर्मयश्च त्वष्टा च शिल्पी विश्वज्ञ एव च॥ 8॥

उनके मुख से ब्राह्मण हुए और उनसे क्रमशः मनु आदि पाँच जनों की उत्पत्ति हुई है। ये हैं— 1. मनु, 2. मयं, 3. त्वष्टा, 4. शिल्पी और 5. विश्वज्ञ।[२]

बाहुभ्यः क्षत्रियाजाता ऊरुभ्यो वैश्यजातयः।
पदभ्यां शूद्रस्तु सञ्जातः क्रमात्तद्विश्वकर्मणः॥ 9॥

---

१. हेमाद्रि ने विश्वकर्मा का स्वरूप इस प्रकार उद्धृत किया है— विश्वकर्म्मा तु कर्त्तव्यः सुररूपधरः प्रभुः। सन्दंश पाणिर्द्विभुजः तेजोमूर्त्तिधरो महान्॥ (चतुर्व्वर्गचिन्तामणि, व्रतखण्ड प्रथम अध्यायय, पृष्ठ 104)

२. ब्राह्मणोत्पत्तिमार्तण्ड में विश्वज्ञ को दैवज्ञ कहा गया है। विवरण है— ब्राह्मणानां च जन्मैव शिवक्राच्च पञ्चवक्त्र समुत्पन्नाः पञ्चभि कर्मभिर्द्विजाः। मनुर्मयस्त्वष्टा शिल्पिकश्च तथैव च। दैवज्ञ पञ्चमश्चैव ब्राह्मणाः पञ्च कीर्तिताः॥ तमोगुणो मनुश्चैव मयः सत्वगुणः स्मृतः। रजोगुणोथ त्वष्टा च शिल्पिकात्रिगुणात्मकः॥ दैवज्ञः शुद्धसत्त्वश्च ब्रह्माण्डे स विजायते॥ यो वै गुणत्रयं वेद मुच्यते सर्वबन्धनात्। मनुः स्फटिकवर्णश्च नीलवर्णोमयः स्मृतः॥ त्वाष्ट्रको रक्तवर्णश्च शिल्पिको धूम्रवर्णकः। स्वर्णवर्णश्च दैवज्ञः पञ्च वर्णाः प्रकीर्तिताः॥ (प्रकरण 51, श्लोक 1-2, 8-11; विश्वब्रह्म कुलोत्साह पृष्ठ 65 व अन्य)

इसी क्रम से विश्वकर्मा के बाहुओं से क्षत्रिय और जंघाओं से वैश्य उत्पन्न हुए। पाँवों से शूद्रों की उत्पत्ति हुई।[१]

जातश्चन्द्रोस्य मनसि जातस्सूर्यश्च चक्षुषि।
इन्द्राग्नि च मुखे प्राणे मरुत् पृथ्वीपदे तथा॥ 10॥

उन विश्वकर्मा के मन से चन्द्रमा की, नेत्रों से सूर्य, मुख से इन्द्र और अग्नि, प्राणों से वायु और पाँवों से पृथ्वी की उत्पत्ति हुई।

नाभाबभूदन्तरिक्षं मस्तके च त्रिविष्टपम्।
दिशस्तु जाताः श्रोत्रेषु मेघास्ते केशसम्भवाः॥ 11॥

विश्वकर्मा की नाभि से अन्तरिक्ष की, सिर से स्वर्गलोक, कानों से दिशाओं और केशों से मेघों की उत्पत्ति हुई।[२]

आपस्तद्रोमरन्ध्रेषु नद्यस्तत्पादमूलतः।
सागराश्चास्य कुक्षौ च सञ्जातास्सर्वपर्वताः॥ 12॥

इसी प्रकार केश के छिद्रों से जल, चरणों के मूल से नदियाँ और कुक्षी से समुद्र तथा समस्त पर्वतों की उत्पत्ति हुई।

एवं स विश्वमकरोत् स्वाङ्गेषु सचराचरम्।
स तस्माद्विश्वकर्माख्यो बभूव जगदीश्वरः॥ 13॥

इस तरह उन देवेश्वर ने अपने सारे अंगों से चराचर सहित विश्व को सृजित किया है। इसीलिए वे विश्वकर्मा जगदीश्वर के नाम से जाने जाते हैं।

सुव्रतोवाच —

को मनुः को मयस्त्वष्टा कश्शिल्पी मुनि सत्तमा।
वदतां कश्च विश्वज्ञस्तेषां मूर्तीः स्वरूपतः॥ 14॥

यह सब सुनकर सुव्रत बोले— हे मुनिसत्तम! आप द्वारा बताए गए मनु कौन हैं? मय और त्वष्टा कौन है? शिल्पी कौन है? यह भी बताएँ कि विश्वज्ञ

---

१. तुलनीय— वक्त्रात्तस्य ब्राह्मणाः सम्प्रसूतास्तद्वक्षसः क्षत्रियाः पूर्वभागतः। वैश्या ऊरुभ्यां तस्य पद्भ्यां च शूद्राः सर्वे वर्णा गात्रतः सम्प्रसूताः॥ (शिव. वायवीय. पूर्व. 12, 77)

२. तुलनीय — ब्राह्मणोऽस्य मुखमासिद् बाहू राजन्यः कृतः। ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायतः॥ चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत। मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च प्राणाद्वायुरजायत॥ नाभ्या आसीदन्तरिक्षं शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत। पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकाँ अकल्पयन्॥ (ऋग्वेद 10, 90, 12-14)

कौन हैं? उन सभी के मूर्तिभेद और स्वरूप कैसे हैं? बताइयेगा।

मुनि उवाच —

शिव एव मनुः प्रोक्तो विष्णुरेव मयः स्मृतः।
त्वष्टा ब्रह्मैव शिल्पीन्द्रो विश्वज्ञो भास्करस्तथा॥ 15॥
जन्मनाम भवेत्तेषां पञ्चानां नामपञ्चकम्।
मनुर्मयश्च त्वष्टेति शिल्पी विश्वज्ञ इत्यपि॥ 16॥

इस पर मुनि बोले— शिव ही मनु कहे गए हैं। विष्णु ही मय जानने चाहिए। ब्रह्मा ही त्वष्टा, इन्द्र ही शिल्पी और सूर्य ही विश्वज्ञ है।[१] इन पाँचों के ये जन्मनाम हैं। यह नामपंचक[२] हैं— मनु, मय, त्वष्ट, शिल्पी और विश्वज्ञ।

राजोवाच —

जन्मनः कारणं तेषां कालहस्ति महामुने!
वदतां पुरुषव्याघ्र सर्वशास्त्र विचक्षणा॥ 17॥

हे सभी शास्त्रों के ज्ञाता! हे पुरुषश्रेष्ठ! कालहस्ति महामुने! उन मनु आदि के जन्म लेने का कारण क्या है? बताइयेगा।

मुनि उवाच —

द्रुमसंस्थो जगत्कर्ता जगदुत्पादनोत्सुकः।
स्वार्थे शक्तिस्वरूपो भूत्साशक्तिः पञ्चधा भवेत्॥ 18॥

मुनि कालहस्ति बोले— पूर्व में जिस विश्वकर्मा-महावृक्ष की संस्था के विषय में कहा गया है, उस जगत्कर्ता ने संसार को उत्पन्न करने की आकांक्षा से अपनी काया को शक्ति का स्वरूप बनाया। वह शक्ति पाँच प्रकार की है।

तासां नामानि वक्ष्यामि आदिशक्तिरभूत्पुरा।
इच्छाशक्तिर्द्वितीयास्यात्क्रियाशक्तिस्तृतीयका॥ 19॥

---

१. तुलनीय— ऐश्वर्यं मनुरूपं च मयरूपं वैष्णवम्। वैरिञ्चं त्वाष्ट्ररूपं च माहेन्द्रं शिल्पिकस्य च॥ रूपं नारायणस्यैव दैवज्ञस्य प्रकीर्तितम्। पञ्च रूपाणि यो वेदमुच्यते सर्वकिल्विषात्॥ (ब्राह्मणोत्पत्तिमार्तण्ड प्रक. 51, 6-7)

२. पंचालों के समुदाय में भी यह मान्यता रही है। कहा गया है— पाञ्चालानां च सर्वेषामाचार इति गीयते। अष्टाङ्गयोगः कर्मषट्कं पञ्चयज्ञा इति श्रुति॥ (उपर्युक्त, पाञ्चाल ब्राह्मणोत्पत्ति प्रकरण 51)

मायाशक्तिश्चतुर्थी स्यात् ज्ञानशक्तिस्तु पञ्चमी।
वसन्ति ताश्च शाखासु पञ्चब्रह्मासु सङ्गताः ॥ 20 ॥

अब उन पाँचों शक्तियों के नाम बताता हूँ— प्रथम आदिशक्ति है जो प्रारम्भ में रची गई। द्वितीय इच्छाशक्ति है और तीसरी क्रियाशक्ति है। चतुर्थी मायाशक्ति और पाँचवीं ज्ञानशक्ति है। इन पाँच शक्तियों के रूप में शाखा रूप धारण करके वह पञ्च ब्रह्मा सहित निवास कर रहे हैं।

ब्रह्माणपञ्चपूर्वादि चतुर्दिक्षु च मध्यमे।
वसन्ति वक्त्रशाखासु शक्तिभिर्विश्वकर्मणः ॥ 21 ॥

उक्त मनु आदि पंचब्रह्म पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर और ऊर्ध्व (मध्य) दिशाओं में पाँच शक्तियों सहित निवास कर रहे हैं।

ब्रह्माविष्णुश्च रुद्रश्च ईश्वरश्च सदाशिवः।
पञ्चानां ब्रह्मणां राजन् पञ्चैतेप्यधिदेवताः ॥ 22 ॥

हे राजन्! इस प्रकार मनु इत्यादि पंचब्रह्म के लिए क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर और सदाशिव ये पाँचों अधिदेव कहे गए हैं।

पूर्वं तु शिवनामास्यममूर्तित्वस्य दक्षिणम्।
पश्चिमं मूर्तिमन्तां उत्तरं क्रतुनामकम् ॥ 23 ॥
मध्यं कर्मनामास्यं ब्रह्मणो विश्वकर्मणः।
एवमास्यानि जानीहि राजेन्द्र! मतिमन्विभोः ॥ 24 ॥

वह विश्वकर्मब्रह्म पूर्व दिशा में शिव नामक मुख वाले हैं। दक्षिण में अमूर्तित्व नामक मुख वाले, पश्चिम में मूर्तिमन्त मुख वाले, उत्तर में क्रतु (यज्ञ) नामक मुख वाले हैं और मध्य में वह कर्म नामक मुख वाले हैं।[१] हे बुद्धिमान राजन्! इस प्रकार उस जगत्पति के मुख नामसहित बताए गए हैं।

---

१. इसी प्रकार प्रायः शिव के पंचमुखों का वर्णन आता है। आगमों से यह सुस्थापित है कि भगवान् शिव के स्थिति, पालन, संहार, निग्रह या तिरोभाव और अनुग्रह— ये पाँच कृत्य हैं। संसार का रचनात्मक स्वरूप स्थिति है, सृष्टि का यथास्थिर रहना पालन है, तदोपरान्त नष्टभूत होना संहार है, प्राणों के उत्क्रमण को तिरोभाव कहा जाता है और इन चारों ही कृत्यों से मुक्ति अनुग्रह की परिचायक है। व्यासजी की स्वीकारोक्ति है : सर्गः संसारसंरम्भस्तत्प्रतिष्ठा स्थितिर्मता। संहारो मर्दनं तस्य तिरोभावस्तदुत्क्रमः॥ तन्मोक्षोऽनुग्रहस्तन्मे कृत्यमेवं हि पञ्चकम्। सर्गादि यच्चतुःकृत्यं संसारपरिजृम्भणम्। पञ्चमं मुक्तिहेतुर्वै नित्यं मयि च सुस्थिरम्॥ (शिवपुराण विद्येश्वरीसंहिता 10, 3-4)

आदिशक्त्या मुखे पूर्वे शिवो भून्मनुनामकः।
इच्छाशक्त्याविष्णुरासीद्दक्षिणास्ये मयो विभुः॥ 25॥
क्रियाशक्त्या पश्चिमास्ये ब्रह्माभूत्वष्ट नामकः।
मायाशक्त्योत्तरे वक्त्रे वासवश्शिल्पि नामकः॥ 26॥
ज्ञानशक्त्या मध्यमास्ये विश्वज्ञो भूत्सभास्करः।
एवं तद्वृक्षशाखास्य पञ्चके शङ्करादयः॥ 27॥

आदिशक्ति सहित शिव के पूर्वमुख से मनु नाम वाले हुए। इच्छाशक्ति सहित विष्णु के दक्षिणमुख से मय हुए। क्रियाशक्ति सहित ब्रह्मा के पश्चिममुख से त्वष्टा नाम वाले हुए। मायाशक्ति सहित इन्द्र के उत्तर मुख से शिल्पी संज्ञा वाले हुए। ऐसे ही ज्ञानशक्ति सहित सूर्य से मध्य या ऊर्ध्वमुख से विश्वज्ञ हुए। इस प्रकार उक्त वृक्ष की शाखा रूपी मुखों से शंकरादि पाँचों की उत्पत्ति हुई।

ते एव पञ्च ब्रह्माणो जगदाधार हेतवः।
असृजन् शक्तियुक्ता हि प्रपञ्चं सचराचरम्॥ 28॥

समस्त जगत के लिए आधारभूत कारण हुए ये पाँच ब्रह्मा ही अपनी-अपनी शक्तियों से अपने स्थावर-जंगम सहित संसार की सृष्टि करने वाले हैं।

शाखाभेदेन जातानां मन्वादीनां पृथक्-पृथक्।
भवन्ति शाखाभेदाश्च तेषां पूर्वादितः क्रमात्॥ 29॥

निर्व्वाणतन्त्र नामक ग्रन्थ शिव के इन मुखों का ध्यान आया है जो इस प्रकार है : विभाव्य मुखपद्मं हि शिवस्य वरवर्णिनि। सद्योजातं वामदेवमघोरस्य ततः परम्॥ तत्पुरुषं तथेशानं पञ्चवक्त्रं प्रकीर्तितम्। सद्योजातस्य वै शुक्लं शुद्धस्फाटिकसन्निभम्॥ पीतवर्णं तथा सौम्यं वामदेवं मनोहरम्॥ कृष्णवर्णमघोरस्य समं भीमविवर्द्धनम्। रक्तं तत्पुरुषं देवि! दिव्यमूर्ति मनोहरम्॥ श्यामलस्य तथेशानं सर्व्वदेवशिवात्मकम्। चिन्तयेत् पश्चिमे चाद्यं द्वितीयस्य तथोत्तरे॥ अघोरं दक्षिणे देवं पूर्व्वे तत्पुरुषं तथा। ईशानं मध्यतो ज्ञेयं चिन्तयेद्भक्तितत्परः॥ (निर्व्वाणतन्त्र षष्ठ पटलम्)
इसी प्रकार एकलिङ्गपुराण की मान्यता है : जिनका पश्चिम दिशा में सद्योजात मुखारविंद है, उत्तर की ओर वामदेव मुखारविंद, दक्षिण की ओर अघोर मुखारविंद, पूर्व की ओर तत्पुरुष मुखारविंद और ऊर्ध्व में ईशान मुखारविंद है; वे ही पृथ्वी, जल, अग्नि, पवन, आकाश, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर तथा वे ही सदाशिव हैं; वे ही इस जगत को उत्पन्न करते हैं, इसका पालन, इसका संहार करते हैं, इसे अंतर्धान और अनुग्रह करते हैं; इस प्रकार वे ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश, सदाशिव— इन पाँच रूपों से संयुक्त हैं और उक्त पाँचों ही कार्यों को पृथक्-पृथक् करते हैं, वे भगवान् एकलिंगजी प्रणवमय और श्रीगुरु हैं— सद्यो वामस्त्वघोरः पुरुष इति मुखैरीश्वरोऽपीन्दुकाष्ठावाची पूर्वोर्ध्वगैः सत्कुजलशुचिमरुत्खैर्विधाता रमेशः। रुद्रश्चेशः सदादिः शिव इति जगत्सृष्टिसंस्थाननाशान्तर्द्धानानुग्रहैश्च प्रणवमयगुरुश्चैकलिङ्गोऽवताद्वः॥ (एकलिङ्गपुराण 32, 123)

शाखाभेद के अनुसार जन्मे इन मनु आदिकों की पूर्वादि दिशाओं के क्रम से अलग-अलग वेद शाखाएँ भी कही गई हैं।

ऋक्शाखा पूर्वादिक् संस्था यजुश्शाखा तु दक्षिणा।
पश्चिमा सामशाखा च उदक्संस्था त्वथर्वणा॥ 30॥
मध्यस्था प्रणवाशाखा यत्तरोर्विश्वकर्मणः।
तत्तच्छाखासु जातानां मन्वादीनां तथाभवत्॥ 31॥

उस विश्वकर्मा-महावृक्ष में ऋक् वेद सम्मत शाखाएँ पूर्व दिशा में कही गई है और यजुर्वेद की शाखाएँ दक्षिण दिशा में बताई गई हैं। पश्चिम दिशा में सामवेद की शाखाएँ हैं और उत्तर दिशा में अथर्ववेद की शाखाएँ हैं। प्रणव शाखा मध्यस्थ अथवा ऊर्ध्व दिशा में है। उन शाखा में जन्मे मनु, मय आदि को उस वेद शाखा वाला ही समझना चाहिए।[१]

ऋक्शाखा भून्मनोः पूर्वं यजुश्शाखा मयस्य च।
साम शाखा भवत्त्वष्ट्रुः शिल्पिशाखात्वर्थणा॥ 32॥
विश्वज्ञ शाखाप्रणवा तत्तरोरभवत्प्रभोः।
पञ्चशाखास्तु मन्वादेरभवस्पूर्वजाः क्रमात्॥ 33॥

इस न्याय से विश्वकर्मा महावृक्ष की शाखाओं के अनुसार मनु की ऋक् शाखा, मय की यजुः शाखा, त्वष्टा की साम शाखा, शिल्पी की अथर्व शाखा और विश्वज्ञ की प्रणव शाखा हुई। इस प्रकार उस विश्वकर्मा वृक्ष की पूर्वादि दिशाओं से पाँच शाखाएँ ऋक् आदि शाखाएँ मनु आदि के क्रम से कही गई है।

तासु पञ्चसु शाखासु अनुशाखा विभेदतः।
भवन्ति शाखाभेदाश्च ऋषीणां सुव्रताऽधुना॥ 34॥

हे सुव्रत! उपर्युक्त महावृक्ष की मन्वादि की पाँच शाखाओं की अनुशाखाओं के भेद से ही अब ऋषियों के शाखाभेद होते हैं।

इति श्रीकालहस्तिमुनि प्रणीत श्रीविश्वकर्मपुराणे मन्वमयादीनां उत्पत्ति वर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः॥ 5॥

इस प्रकार कालहस्ति मुनि द्वारा प्रणीत श्रीविश्वकर्मपुराण में मनु, मय आदि की उत्पत्ति के वर्णन नाम वाला पाँचवाँ अध्याय पूरा हुआ।

---

१. तुलनीय— कृष्ण यजुर्वेद में इस प्रसंग में आए 'प्राचीदिकामादि' मन्त्र का प्रमाण द्रष्टव्य है।

अथ षष्ठोऽध्यायः ॥ 6 ॥

राजा सुव्रतोवाच —

मनोर्मयस्य त्वष्ट्रश्च विश्वज्ञस्य च शिल्पिनः।
मूर्तिरूपाणि मे ब्रूहि कालहस्ति मुनीश्वरा ॥ 1 ॥

हे कालहस्ति मुनिराज! आप मनु, मय, त्वष्ट्र, विश्वज्ञ और शिल्पी इन पाँचों के मूर्ति स्वरूपों को बताइयेगा।

कालहस्ति मुनि उवाच —

मनुः स्फटिक सङ्काशो भस्मोद्धूलित विग्रहः।
स्मित प्रसन्न वदनै पञ्चभिः परिशोभितः ॥ 2 ॥

इस प्रश्न पर मुनि कालहस्ति बोले— मनु (शिवरूप) स्फटिक के समान श्वेत दीप्तिमान, अपने वदन पर भस्म को मले हुए, मुस्कान लिए, पाँच प्रसन्न मुख सहित शोभायमान होते हैं।

जटाप्रकर सम्बद्धस्पुरच्छन्द्र कलाधरः।
गलद्गङ्गाम्बु सम्पात विग्रह नीलकन्धरः ॥ 3 ॥

वह जटाजूटधारी हैं। वह चन्द्रमा को धारण किए, गंगा नदी के जल से भीगे हुए और नीलकण्ठ का विग्रह लिए होते हैं।

सदा काशीसमायुक्तस्स महूग्रस्त्रीलोचनः।
कर्णकण्ठावलग्राहिफणि माणिक्य रञ्जितः ॥ 4 ॥

वह सर्वदा काशीनगर में निवास करते हैं। महा उग्र रूप में रहते हैं। वह तीन नेत्र वाले हैं। उनके कानों और कण्ठ में सर्पावली फण सहित है। वह माणिक्य की तरह दीप्तिमान हैं।

वृषस्कन्ध समारूढः सहस्त्रादित्य भासुरः।
विकचत्कुन्द मन्दार कल्हारादैरलङ्कृतः ॥ 5 ॥

वह वृषभ पर सवार होते हैं और हजार सूर्यों की तरह प्रकाशवान हैं। सुगन्धित कुन्द, अर्क, कल्हार इत्यादि पुष्पों की मालाओं से अलंकृत होते हैं।

लेखनीं पुस्तकं पाशमक्षसूत्रं करैर्वहन्।
दण्डं कमण्डलुं चर्मशूलं वज्रं वराभये ॥ 6 ॥

वह अपने हाथों में क्रमशः कलम, पुस्तक, पाश, अक्षसूत्र, दण्ड, कमण्डलु, चर्म, त्रिशूल, वज्र, वरद और अभयमुद्रा को धारण करते हैं।

सिद्धचारणगन्धर्वयक्षकिन्नर सेवितः।
स्तूयमानो मुनिगणैर्वन्दितामरयूथपः॥ 7॥

वह सिद्धगण, चारण, गन्धर्व, यक्ष, किन्नरगणों से सेवित हैं। मुनिगण उनकी स्तुति करते हैं और देवताओं के समूह उनकी वन्दना करते हैं।

अनेनैश्वर्यरूपेण योगमुद्रा समन्वितः।
लीलया मोहायस विश्वं मनुरासीन्महीपते॥ 8॥

हे महीपते! इस प्रकार वह ऐश्वर्य के रूप में योगमुद्रा से समन्वित होते हैं। वे सारे विश्व को अपनी लीलाओं से मोहित करते हुए विराजमान हैं।

मयो नीलाम्बुदश्यामः कमलामललोचनः।
चतुर्बाहुर्गुडाकेशो गरुडासन संस्थितः॥ 9॥

मय (विष्णुरूप) नीले मेघ के समान श्यामकाया वाले हैं। उनके नेत्र स्वच्छ कमल जैसे हैं। वे चारभुजा वाले और निद्रा को जीतने वाले ईश्वर हैं और गरुड़ के आसन पर विराजमान हैं।

पीताम्बरोपनं व्यानशशुक्लवस्त्रोत्तरीयकः।
प्रसन्नवदनः शान्तः सात्त्विको भक्तवत्सलः॥ 10॥

वे पीताम्बर धारण करते हैं। उनके केश लाल हैं। वे शुक्ल उत्तरीय धारण किए, प्रसन्नमुख, शान्तस्वरूप, सात्त्विक प्रकृति और भक्तों पर कृपा करने वाले हैं।

वनमालाङ्कितोरस्को हारकेयूर शोभितः।
स्मितगण्डस्थलोद्भासि कुण्डलद्वय मण्डितः॥ 11॥

वह अपने अंक में वनमाला धारण करते हैं और हार, केयर से शोभायमान हैं। वे मुस्कान लिए हैं। वे दो कुण्डलों से अलंकृत हैं।

हैमेनकटिसूत्रेण दीप्तो नीलोत्पलच्छविः।
शङ्खचक्रगदाशार्ङ्गधृतः सुरगणावृत्तः॥ 12॥

वह स्वर्ण का कटिसूत्र धारण किए दीप्तिमान और नीलकमल की छवि लिए हैं। वह अपने हाथों में शंख, चक्र, गदा और शार्ङ्ग नामक धनुष धारण करते हैं और देवताओं के गणों से घिरे हुए रहते हैं।

रूपेणानेन शान्तेन ज्ञानमुद्रा समन्वितः।
स मयो लीलया विश्वं संरक्षति सदा मुदा॥ 13॥

वह इस प्रकार का स्वरूप रखते हैं जो कि शान्ति और ज्ञानमुद्रा से युक्त हैं। ऐसे मय अपनी लीलाओं से सदा ही विश्व का संरक्षण करते हुए प्रसन्न रहते हैं।

त्वष्टा चतुर्मुखोपेतो रक्तकान्ति तनु प्रभः।
बालार्क कोटि लावण्यो राजते हंसवाहनः॥ 14॥

त्वष्टा (ब्रह्मारूप) चारमुख वाले है और उनका शरीर लाल कान्तिमय है। वह उदित होते हजारों सूर्यों के जैसा लावण्य लिए और हंसवाहन पर विराजित रहते हैं।

रक्ताम्बर धरो देवो दिव्यचन्दन चर्चितः।
चतुर्मुखैश्चतुर्वेद्यान् परमेष्ठी वदत्यसौ॥ 15॥

वह देव लाल परिधान धारण करते हैं। अपने शरीर पर दिव्य चन्दन का लेप करते हैं। उन परमेष्ठी के चार मुखों से चारों ही वेदों का उच्चारण होता है।

पद्मं च लेखनीं पुस्तकं कुठारञ्च कमण्डलुम्।
शूलं दण्डं चाक्षसूत्रं बिभिर्तयष्टभुजैरयम्॥ 16॥

वह अपने आठ हाथों में क्रमशः पद्म, लेखनी, पुस्तक, कुठार, कमण्डलु, शूल, दण्ड और अक्षमाला को धारण करते हैं।

रक्तमाल्याञ्चितोरस्को नानालङ्कारभूषितः।
व्याख्यानमुद्रा सहितः सृष्टिकर्मणि संस्थितः॥ 17॥

वह रक्तमाला को धारण किए और अनेकानेक अलंकारों से शोभायमान हैं। वह व्याख्यानमुद्रा में रहते हुए सृष्टिकर्म में तत्पर होते हैं।

शिल्पि मरकतश्यामः सहस्रनयनोज्ज्वलः।
चित्रमाल्याम्बरधरो गजवाहन संस्थितः॥ 18॥

शिल्पी (इन्द्ररूप) मरकत के समान श्याम वर्ण वाले हैं। उनके हजारों उज्ज्वल नेत्र हैं। वे नाना रंगों वाले पुष्पों की मालाएँ और रंग-बिरंगे वस्त्र धारण करते हैं और गज पर आरूढ़ होते हैं।

सदा देवाङ्गनागीतनृत्तवाद्यैस्सुतोषितः।
चापवज्रधरोदान्तो देवर्षिगण सेवितः॥ 19॥

वे सदा ही देवांगनाओं-अप्सराओं के गीत गायन, नृत्य नर्तन और वाद्यों के वादन से सन्तुष्ट रहते हैं। अपने हाथ में वह धनुष, वज्र धारण करते हैं और देवर्षिगणों से सेव्यमान रहते हैं।

देवानामग्रणीरिन्द्रो रक्षसां कुलनाशकः।
विद्याधराप्सरोभिश्च स्तूयमानः कुलाद्रिजित ॥ 20 ॥

वह देवताओं में अग्रणी देवराज इन्द्र की तरह राक्षसों के कुलों के नाशक हैं। उनकी स्तुति विद्याधर और अप्सराएँ करती हैं। उन्होंने पर्वतों के कुल को जीता था।

अनेन शिल्पिरूपेण त्रिलोकान् परिपालयन्।
तत्त्वमुद्रा समायुक्तो भुङ्क्ते भोगाननूपमान् ॥ 21 ॥

इस प्रकार शिल्पी रूप में वह तीनों ही लोकों का परिपालन करते हैं और तत्त्वमुद्रा धारण करते हुए श्रेष्ठतम भोगों का उपभोग करते हैं।

हिरण्याङ्गः स विश्वज्ञः सहस्त्र किरणोज्ज्वलः।
सप्ताश्वरथ मध्यस्थः पद्मासन विराजितः ॥ 22 ॥

जिनके अंग स्वर्ण जैसे हैं, वहं विश्वज्ञ (सूर्यरूप) हैं। वह हजारों उज्ज्वल किरणों वाले हैं। वे सात अश्वों वाले रथ के बीच पद्मासन पर विराजित रहते हैं।

पद्मार्चितः पद्मकरः पद्ममण्डल संस्थितः।
हेमाम्बरधरो देवः किरीटी लोकबान्धवः ॥ 23 ॥

वह कमलों से अर्चित, हाथ में पद्म धारण किए और कमलों के मण्डल पर स्थित होते हैं। स्वर्ण के परिधान करने वाले, किरीट मुकुट धारण कर्ता और लोक के बन्धु हैं।

केयूरहाराभरणः स्फुरन्मकरकुण्डलः।
शङ्खचक्रधरोदेवः पाशहस्तो विराजते ॥ 24 ॥

वह केयूर और हार जैसे आभरण और कानों में मकर कुण्डल धारण करते हैं। उनके हाथों में शंख, चक्र और पाश आयुध रहते हैं।

सम्बोधमुद्रासहितो लोकसाक्षितमोपहः।
उद्बोधयति विश्वज्ञो विश्वं सुप्ततः रूपतः ॥ 25 ॥

वह सम्बोध मुद्रा सहित लोक के कर्म के साक्षी हैं। अन्धकार का हरण

करने वाले हैं। अच्छी तरह तपे हुए ऐसे स्वरूप वाले विश्वज्ञ विश्व को उपदेश करते हैं।

इति श्रीकालहस्तिमुनि प्रणीत श्रीविश्वकर्मपुराणे मन्वादीनां मूर्तिरूप वर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ 6 ॥

इस प्रकार कालहस्ति मुनि द्वारा प्रणीत श्रीविश्वकर्मपुराण में मनु आदि के मूर्तिरूप वर्णन नाम वाला छठवाँ अध्याय पूरा हुआ।

अथ सप्तमोऽध्यायः ॥ 7 ॥

राजा सुव्रतोवाच —

कीदृग्विधौपकरणैः स्वयं सन्त्राण हेतुभिः ।
ब्रह्माण्डमसृजत्पूर्वं विश्कर्मा जगत्पतिः ॥ 1 ॥

राजा सुव्रत ने पूछा हे मुनिवर! वह जगत्पति विश्वकर्मा रक्षा के हेतु और किन उपकरणों से इस ब्रह्माण्ड की रचना करते हैं?

तद्रहस्यं पुरोद्भूतं कालहस्ति महामुने ।
श्रद्धया श्रोतुमिच्छामि वक्तुमर्हसि सर्वतः ॥ 2 ॥

हे कालहस्ति मुनि! पूर्वकाल में उत्पन्न वह सब रहस्य श्रद्धापूर्वक सुनने की मेरी इच्छा है। आप उसको सर्वविध कहियेगा।

कालहस्ति मुनि उवाच —

पृथ्वीपयोग्निर्वायुश्चाकाशश्चन्द्रभास्करौ ।
परमात्मा च एतेऽष्टौ विश्वकारण हेतवः ॥ 3 ॥

महात्मा कालहस्ति बोले— 1. भूमि, 2. जल, 3. अग्नि, 4. वायु, 5. आकाश, 6. सूर्य, 7. चन्द्रमा और 8. परमात्मा स्वयं— ये आठ विश्व की सृष्टि के कारणभूत पदार्थ हैं।

एतानष्टौ तनुं कृत्वा ब्रह्माण्डमस्त्रृजद्विभुः ।
अष्टमूर्तिरभूत्तस्माद्विश्वकर्मा च मूर्तिमान् ॥ 4 ॥

इन आठों ही पदार्थों को अपना शरीर बनाकर वह प्रभु विश्वकर्मा इस संसार की सर्जना करते हैं। इसी कारण विश्वकर्मा की मूर्ति को अष्टमूर्ति का नाम दिया गया है।

ते रेव करणैः सोऽयं पिण्डाण्डं च चकारह ।
उभै ब्रह्माण्डपिण्डाण्डे ज्ञातवे कुशलैः समे ॥ 5 ॥

उन विश्वकर्मा ने इन आठ संसाधनों से ब्रह्माण्ड ही नहीं, पिण्ड-अण्ड (मनुष्य व अन्य प्राणियों के शरीर) को भी रचा है। जो ज्ञानवान् हैं, वे लोग ब्रह्माण्ड और पिण्ड-अण्ड को एक समान ही मानते हैं।[१]

---

१. कहावत है— 'यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे...।' रघुवंश में शारीरिक ढाँचे के लिए पिण्ड

सुव्रतोवाच —

यदा ब्रह्माण्डरूपेण चाष्टभेद गुणाऽपि।
कलितः समुदायश्च वद मे विश्वकर्मणा॥ 6॥

मुनि कालहस्ति के वचनों को सुनकर राजा सुव्रत ने पूछा— यदि आठ गुणों से ही ब्रह्माण्ड की रचना की गई है तो इनके समुदाय को विश्वकर्मा ने किस तरह धारण किया है? यह समझाइये।

मुनि उवाच —

आकाशो मनुनाजातः पवनस्तु मयाद्भूत।
जातं त्वष्टुश्च तत्तेजः जलं तच्छिल्पितो भवत्॥ 7॥
विश्वज्ञाद्भूतलं जातः पञ्चतत्त्वानि शक्तयः।
पञ्चभिस्तान्य जायन्ते जगत्कारिणकैः क्रमात्॥ 8॥

इस प्रश्न पर मुनि बोले— मनु से आकाश, मय से वायु, त्वष्टा से अग्नि, शिल्पी से जल और विश्वज्ञ से भूमि हुई है। हे सुव्रत! जगत के लिए जो कारण बनते हैं, वे मनु आदि पाँचों से ये पाँच महातत्त्व और पाँच शक्तियाँ जन्म लेती हैं।

पृथ्वी जलञ्च तेजश्च वायुराकाशमेव च।
मनुराकाशतत्त्वस्थो वायुतत्त्व स्थितो मयः॥ 9॥
त्वष्टा तु तेजस्तत्तस्वस्थः शिल्पि च जलतत्त्वगः।
विश्वज्ञो भूमितत्त्वस्थ क्रमात्तिष्ठन्ति शक्तिभिः॥ 10॥

यह जानना चाहिए कि ये पाँचों ब्रह्मा अपनी-अपनी शक्तियों सहित रहते

पर्याय आया है— एकान्तविध्वंसिषु मद्विधानां पिण्डेष्वनास्था खलु भौतिकेषु। (रघु. 2, 57) श्रीमद्योगगीता में कहा गया है कि पिण्ड और ब्रह्माण्ड की एकता का जो चिन्तन है वह भी समस्त ध्यानों में उत्तम ध्यान मान्य है। उसकी विधि के प्रसंग में आया है कि जो भी वस्तुएँ इस ब्रह्माण्ड में विद्यमान हैं, वे सभी इस देह में सूक्ष्म रूप से स्थित रहती हैं— पिण्डब्रह्माण्डयोश्चैक्यचिन्तनं ध्यानमुत्तमम्। तस्य चापि प्रकारं ते कथयामि महीपते॥ ब्रह्माण्डे यानि वस्तूनि तानि सर्वाणि देहके। विद्यन्ते पृथिवीपाल सूक्ष्मरूपेण सर्वदा॥ (योगगीता 15, 33)

सन्त श्रीपीपाजी महाराज ने कहा है : जो ब्रह्मण्डे सो ही पिण्डे, जो खोजे सो पावै। पीपा प्रणवै परमतत्त्व कोई सद्गुरु मिलै लखावै॥ (गुरुग्रन्थ साहब में संकलित सन्त पीपाजी की वाणी)

हैं और क्रम से मनु आकाश तत्त्व में, मय वायु तत्त्व में, त्वष्टा अग्नि तत्त्व में, शिल्पी जल तत्त्व में और विश्वज्ञ भूमि तत्त्व में निवास करते हैं।

आदिशक्तिस्तु भूमिस्था इच्छाशक्तिर्जलेस्थिता।
क्रियाशक्तिस्तु तेजस्था मायाशक्तिर्मरुतस्थिता॥ 11॥
ज्ञानशक्तिः स्थिताकाशे तत्त्वेषु सततं क्रमात्।
आदिशक्त्यादयः पञ्च तिष्ठन्तिच्छात्रकुञ्जर!॥ 12॥

हे शिष्याग्रणी! पाँचों इन्द्रियाँ पाँच तत्त्वों के आश्रय में रहती हैं, वैसे ही क्रमशः आदिशक्ति भूमिस्थ है, इच्छाशक्ति जलस्थ है, क्रियाशक्ति तेज अर्थात् अग्निस्थ है, मायाशक्ति वायुस्थ हैं और ज्ञानशक्ति आकाशस्थ हैं। इस प्रकार आदिशक्त्यादि पाँच तत्त्वों में विद्यमान रहती हैं।

वायुराकाश सम्बद्धः आकाशं वायुकीलितम्।
आकाशे कम्पमाने तु जायते व्यजने मरुत्॥ 13॥

वायुतत्त्व आकाश से सम्बद्ध रखता है। उसी प्रकार आकाश भी वायु से मिला हुआ रहता है। इस प्रकार परस्पर सम्बन्ध होने से वैसे ही जाने जैसे आकाश में पँखा कम्पित करने से लगता है कि वायु बह रही है।

अग्निस्तु वायु सम्बद्धस्स वायुः कीलितोग्निना।
वायुधमितो वह्निस्सद्यः प्रज्वलति ध्रुवम्॥ 14॥

इसी प्रकार अग्नि और वायु परस्पर सम्बद्ध है। अग्नि ने वायु को मिला रखा है। धमन से वायु प्रवाहित करने से अग्नि निश्चित रूप से प्राज्वल्यमान होती है।

उदकं चाग्नि सम्बद्धमम्बुना कीलितोनलः।
सूर्य भान्वग्नि तैक्ष्णेन सद्यो वृष्टिः प्रजायते॥ 15॥

जल और अग्नि भी परस्पर सम्बद्ध है। अग्नि ने जल को मिला रखा है। जब सूर्य बहुत तेज तपता है तो उससे वृष्टि सम्भव होती है।

पृथ्वी जल सम्बद्धा पृथिव्या कीलितं जलम्।
जलेः प्रसारिता भूमिः घट्जिता भवति ध्रुवम्॥ 16॥

इसी प्रकार भूमि और जल एक दूसरे से सम्बद्ध है। इसलिए जल से भीगी हुई पृथ्वी उपजाऊ होकर ओषधियुक्त वनस्पतियों और वृक्षों को उत्पन्न कर रही है।

ओषध्यश्चन्द्र सम्बद्धाः पञ्चतत्त्वैश्च कीलिताः।
भूवार्युनलवाय्वभैर्भवन्त्योषदयोमृतम्॥ 17॥

ओषधि, लताएँ आदि चन्द्रमा से सम्बन्ध रखकर पंचभूतों से मिलाप रखती हैं। भूमि और वायु, अग्नि और वायु आदि इन पंचभूतों के संयोग से ये औषध, अन्न रूप रसामृत बन रहे हैं।

अन्नमोषधि सम्बद्धं तदन्नं सूर्य कीलितम्।
सूर्यांशुभिश्चातितीक्ष्णैरन्नं पक्वमुपैति च॥ 18॥

अन्न और ओषधियों सूर्य से सम्बन्ध रखती हैं। सूर्य का भी इनके साथ मेल है। सूर्य की तेज किरणों के फलस्वरूप ही अन्न और ओषधियाँ परिपक्व होती हैं।

जन्तवस्त्वन्न सम्बद्धाः परमात्मा प्रकीलिताः।
परमात्मनि ते जीवा वर्धन्तेन्नेन सम्प्रति॥ 19॥

इसी प्रकार जीव चराचर का अन्न के साथ सम्बन्ध हैं। उनका परमात्मा के साथ भी सम्बन्ध हैं। जीवराशि अन्न का आहार करके अभिवृद्धि को प्राप्त करती है और परमात्मतत्त्व को सिद्ध करती हैं।

जीवानां जीवनं जीवो जीवा जीवस्य मृत्यवः।
जीवेन जायते जीवो जीवो जीवेन रक्ष्यते॥ 20॥

जीवों के लिए प्राण ही जीवित रखने वाला है। जीव के लिए प्राण ही मृत्यु है अर्थात् प्राण के निकल जाने पर उसका देहावसान हो जाता है। प्राण से ही जीव जन्म लेता है अर्थात् एक प्राणी से दूसरा प्राणी जन्म लेता है। जीव को प्राण ही बचा रहा है।

नश्यन्त्योषधयः तत्त्वपञ्चानां च विपर्यये।
भूमिर्नश्यति कल्पान्ते जलप्रलयसंयुता॥ 21॥

कल्पान्त में पंचतत्त्वों का विपर्यय हो जाता है। तब ओषधियाँ भी नष्ट हो जाती हैं। जो भूमि अन्न व ओषधियों को उत्पन्न करती हैं, वह धरती स्वयं भी प्लवन के समय डूब जाती है।

जलं च पीबते नित्यं समुद्र वडवाग्निना।
वायुना हन्यतेग्निश्च वायुर्व्योम्नि विलीयते॥ 22॥

ऐसे ही भूमि को डुबोये रखने वाले जल का समुद्र की वडवाग्नि नित्य ही पान करती है। उस अग्नि को वायु दीपक के समान बुझा देता है और अन्त में उस वायु को आकाश अपने में विलीन कर लेता है।

एवं हि स्पष्टं ब्रह्माण्डं धारयन् रक्षियन् विभुः।
नाशयन् क्लेशयन् हर्षं कलयन् तस्य सोवति॥ 23॥

इस प्रकार भगवान् विश्वकर्मा इस ब्रह्माण्ड को स्पष्ट रूप से धारण करते हुए उसकी रक्षा कर रहे हैं। वे ही इसका नाश करते हैं, कष्ट देते हैं और हर्ष प्रदान करते हैं— यह इसके साथ उनकी लीला ही है।

इति श्रीकालहस्तिमुनि प्रणीत श्रीविश्वकर्मपुराणे अष्टविश्वकारणवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः॥ 7॥

इस प्रकार कालहस्ति मुनि द्वारा प्रणीत श्रीविश्वकर्मपुराण में आठ विश्व कारण वर्णन नामक सातवाँ अध्याय पूरा हुआ।

अथ अष्टमोऽध्यायः ॥ 8 ॥

राजा सुव्रतोवाच —

कालहस्तिन्नमस्तुभ्यं नरेन्द्रगण वन्दित!
पिण्डाण्डे दर्शय प्राज्ञ ब्रह्माण्डस्य गुणाश्च मे ॥ 1 ॥

राजा सुव्रत बोले— राजाओं के समुदाय द्वारा वन्दित हे कालहस्ति मुने! आपको नमस्कार है। जैसा कि आपने ब्रह्माण्ड व पिण्ड के बारे में बताया तो ब्रह्माण्ड के सारे ही गुण पिण्डाण्डों में किस प्रकार दिखाई देते हैं? आप मुझे समझाइयेगा।

मुनि उवाच —

पञ्चतत्त्वगुणाजन्तौ ख्याताः पञ्चेन्द्रियाणि च।
पञ्चशक्तिगुणाः पञ्चख्याताः कर्मेन्द्रियाणि च ॥ 2 ॥

कालहस्ति मुनि बोले— पाँच तत्त्वों के गुण प्राणियों में कान, चर्म, आँख, जीभ और नाक— इन पाँच ज्ञानेन्द्रियों के रूप में ख्यात है और पाँच शक्तियों के गुण क्रमशः वाणी, हाथ, पाँव, गुदा और लिंग— इन पाँच कर्मेन्द्रियों के रूप में विख्यात है।[१]

चन्द्रसूर्यात्मनामैको गुणः प्रोक्तो मनस्तिविति।
मन सर्वेन्द्रियाणां च प्रत्यक्षे च प्रवर्तकम् ॥ 3 ॥

चन्द्रमा और सूर्य मनोरूपी हैं। यह मन ही पूर्वोक्त दसों इन्द्रियों को प्रत्यक्षतः विषयों में प्रवर्तित करता है। इस प्रकार यह प्रत्यक्ष प्रवर्तक हैं।[२]

आकाशस्य गुणः शब्दस्तच्छब्दो मनुसञ्ज्ञकः।
वायोः स्पर्शगुणः प्रोक्तः स स्पर्शो मय उच्यते ॥ 4 ॥

---

१. मनु ने माना है कि कान, चर्म, नेत्र, जीभ और नाक ये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं। गुदा, लिंग, हाथ, पाँव और वाणी ये पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं— श्रोत्रं त्वक्चक्षुषी जिह्वा नासिका चैव पञ्चमी। पायूपस्थं हस्तपादं वाक्चैव दशमी स्मृता॥ बुद्धीन्द्रियाणि पञ्चैषां श्रोत्रादीन्यनुपूर्वशः। कर्मेन्द्रियाणि पञ्चैषां पाय्वादीनि प्रचक्षते॥ (मनुस्मृति 2, 90-91)

२. मनु ने मन को ग्यारहवीं इन्द्रिय कहा है, जिसकी विजय को इन्द्रियजीत स्वीकारा गया है— एकादशं मनो ज्ञेयं स्वगुणेनोभयात्मकम्। यस्मिञ्जते जितावेतौ भवतः पञ्चकौ गणौ॥ (उपर्युक्त 2, 92)

इनमें आकाश तत्त्व का गुण शब्द अर्थात् ध्वनि है। वह शब्द मनु संज्ञक है। वायु में स्पर्श गुण है। वह स्पर्श मय कहा गया है।

रूपमग्निगुणः प्रोक्तं त्वष्टा तद्रूपमुच्यते।
रसो जलगुणः प्रोक्तस्तद्रसः शिल्पिरूपकः॥ 5॥
गन्धो भूमिगुणः प्रोक्तो विश्वज्ञो गन्ध एव सः।

अग्नि का गुण रूप है। वह रूप ही त्वष्टा कहा गया है। जल का गुण रस है। वह रस ही शिल्पी का रूप कहा गया है। इस प्रकार भूमि का गुण गन्ध है। वह गन्ध विश्वज्ञ कही गई है।

आदिशक्ति गुणो यश्च वचनं परिकीर्तितम्॥ 6॥
इच्छाशक्तिगुणो यश्च गमनं यत्र कुत्रचित्।
क्रियायागुण आदानं मायायास्तु विसर्जनम्॥ 7॥
आनन्दो ज्ञानशक्तेश्च कमेन्द्रियगुणा इमे।
मनोगुणास्सुखं दुःखं चन्द्रार्क परमात्मनाम्॥ 8॥

इसी प्रकार आदिशक्ति का गुण वाक् अर्थात् वाणी कहा गया है। इच्छाशक्ति का गुण है जहाँ-तहाँ गमन करना। क्रियाशक्ति का गुण आदान-प्रदान करना है। मायाशक्ति का गुण (मल-मूत्रादि) विसर्जन करना है और ज्ञानशक्ति का गुण कर्मेंद्रियों द्वारा आनन्दित होना कहा गया है— इस प्रकार ये वचन, गमन, लेन-देन, विसर्जन और आनन्द कर्मेंद्रियों के गुण हैं। मन के गुण सुख-दुःख हैं जो चन्द्र-सूर्य परमात्मा से हैं।

श्रोत्रं शब्दगुणग्राह्यमाकाशमिति कीर्तितम्।
गात्रं स्पर्शास्पदं ज्ञेयं तद्वायोरिति कीर्तयते॥ 9॥

कर्णेन्द्रिय शब्द गुण को ग्रहण करती है। शब्द या ध्वनि आकाश से उत्पन्न है। काया स्पर्श गुण को ग्रहण करती है। उसको वायु से उत्पन्न कहा गया है।

नेत्रं रूपाश्रयं ख्यातं तत्तेजः परिकीर्तितम्।
जिह्वारसगुणग्राह्य सा जलं परिकीर्तिता॥ 10॥
घ्राणं गन्धगुण ग्राह्यं पृथ्वी सा परिकीर्तिता।

आँखें रूप का आश्रय ग्रहण करती हैं। रूप को अग्नि से उत्पन्न कहा गया है। जीभ रस के गुण को ग्रहण करती है। वह रस जल से उत्पन्न बताया गया है।

नाक गन्ध के गुण को ग्रहण करता है। वह गन्ध गुण पृथ्वी से उत्पन्न है।[१] ये सब उनके सात्त्विक अंश से उत्पन्न हैं।

आदिशक्तिस्तु वदनमिच्छाशक्तिः पदद्वयम्॥ 11॥
पाणिद्वयं क्रियाशक्तिर्मायाशक्तिर्गुदं च सा।
ज्ञानशक्तिरूपस्थं च मनो हृदयपङ्कजम्॥ 12॥
तान्येकादश सन्त्यत्र इन्द्रियाणि च नित्यशः।
जन्तोरङ्ग विभागेषु दर्शयन्तः स्वकान् गुणान्॥ 13॥

बोलने में सहायक मुख को आदिशक्ति का रूप कहा गया है। गमन करने में सहायक दोनों पाँव इच्छाशक्ति के रूप हैं। दोनों हाथों को क्रियाशक्ति का रूप और गुदा को मायाशक्ति का रूप कहा गया है। ज्ञानशक्ति का रूप उपस्थ है और मन हृदय-कमल है। इस प्रकार नित्य पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ और एक अन्तरेन्द्रिय मन ये ग्यारह इन्द्रियाँ शरीर के भागों में स्थित होकर अपने-अपने गुणों के अनुसार सक्रिय रहती हैं।

---

१. विश्वकर्मीय अपराजितपृच्छा में कहा गया है कि पञ्चभूतों का परोभाव पञ्चात्मक होता है, जो निम्नानुसार होगा—देह में (1.) त्वचा, (2.) मांस, (3.) अस्थि, (4.) नख और (5.) रोम— ये पाँचों पृथ्वी के गुण होते हैं, ऐसा ब्रह्मवादियों का कहना है। इसी प्रकार (1.) लार, (2.) मूत्र, (3.) शुक्र, (4.) मज्जा और (5.) रक्त— ये पाँचों गुण जल से बनते हैं, ज्ञानियों का सदा से ही ऐसा कहना है। इसके अतिरिक्त (1.) क्षुधा, (2.) तृष्णा, (3.) निद्रा, (4.) आलस्य और (5.) कान्ति— देह में इन पाँचों गुणों को तेजोत्पन्न जानना चाहिए, ऐसा ब्रह्मवादियों का स्वीकारना है। वायु से उत्पन्न होने वाले गुण हैं— (1.) धावन या दौड़ना, (2.) प्लवन या बहना, (3.) सङ्कोचन या सिकुड़ना, (4.) प्रसारण या फैलना और (5.) निरोध। इसी प्रकार (1.) राग, (2.) द्वेष, (3.) भय, (4.) मोह और (5.) प्रसाद या प्रसन्नता— ये पाँचों गुण आकाश की व्यवस्था में कहे गए हैं। इस प्रकार इन पञ्चतत्त्वों से पच्चीस गुण उत्पन्न होते हैं। इन सबके पृथक्-पृथक् प्रत्येक के पुनः पाँच गुण होते हैं— अथ चैवं प्रवक्ष्यामि महाभूतविनिर्णयम्। पञ्चात्मकः परो भावो ह्यपरं पञ्चभूतकम्॥ त्वचामांसास्थिनखरा रोमाण्यत्राद्य पञ्चकम्। क्षितेरेतान् गुणान् पञ्च वदन्ति ब्रह्मवादिनः॥ लाला मूत्रं तथा शुक्रं मज्जा रक्तं च पञ्चमम्। इमान्यपांव्यञ्जकानि वदन्ति ज्ञानिनः सदा॥ क्षुधा तृषा तथा निद्रा चालस्यं कान्तिरेव च। तेजस्तु समुत्पन्ना वदन्ति ब्रह्मवादिनः॥ धावनं प्लवनं चैव सङ्कोचनप्रसारणे। निरोधः पञ्चमश्चैव वायोरेतत्तु पञ्चकम्॥ रागद्वेषौ भयं मोहः प्रसादश्चैव पञ्चमः। एते पञ्च गुणाः प्रोक्ता आकाशस्य व्यवस्थिताः॥ पञ्चतत्त्वैः समुत्पन्ना गुणानां पञ्चविंशतिः। पृथक् पृथक् च प्रत्येकं पञ्च पञ्चकसम्भवः॥ (अपराजित. 11, 14-20)

चन्द्रसूर्याग्निनाडीनां मध्ये हृत्कमले स्वयम्।
परमात्मा विश्वकर्मा भाति ज्योतिर्मयः सदा॥ 14॥

इस प्रकार शरीर में चन्द्रनाड़ी, सूर्यनाड़ी और अग्निनाड़ी (इडा, पिंगला और सुषुम्ना)— इन तीन नाड़ियों के मध्य में कमल जैसे हृदय में ज्योतिर्मय होकर परमात्मा विश्वकर्मा सदा ही प्रकाशित होते हैं।[१]

प्राणवायुस्वरूपेण मनुश्च हृदि तिष्ठति।
अपानवायुरूपेण गुदे तिष्ठति वै मयः॥ 15॥

इनमें प्राण वायु स्वरूप मनु हृदय में विराजित हैं। अपान वायु स्वरूप मय गुदा में विद्यमान हैं।

व्यानवायुस्वरूपेण त्वष्टा सर्वत्र तिष्ठति।
उदानवायुरूपेण शिल्पी कण्ठे तु तिष्ठति॥ 16॥

व्यान वायु स्वरूप त्वष्टा सर्वांग में परिव्याप्त हैं। उदान वायु स्वरूप शिल्पी कण्ठ प्रदेश में स्थित है।

समानवायुरूपेण विश्वज्ञो नाभिदेशके।
पञ्चशक्तिस्वरूपेण मूर्ध्नि नागादि वायवः॥ 17॥

समान वायु के रूप में विश्वज्ञ नाभि प्रदेश में है। इसी प्रकार नागादि वायु पंचशक्ति के स्वरूप में शिरोप्रदेश में अवस्थित हैं।

ब्रह्माण्ड इव पिण्डाण्डे सप्तत्वचि च तारकाः।
दन्त-लोम-नखाश्च व्याजा तिष्ठतिन्त सुव्रत॥ 18॥

हे सुव्रत! ब्रह्माण्ड में जिस तरह तारागण विद्यमान होते हैं, वैसे ही पिण्डाण्ड में सात प्रकार की त्वचाएँ दाँत, रोम और नख होते हैं।

ब्रह्माण्डावरणस्थाने त्वचस्तिष्ठन्ति सप्त च।
स्थाने नक्षत्रे खेटानं दन्त-लोम-नखाः स्मृताः॥ 19॥

ब्रह्माण्ड के आवरण स्थान में सात त्वचाएँ हैं। ये नक्षत्र, तारों के स्थानों में दाँत, केश और नख के रूप में पहचाने गए हैं।

---

१. मन्त्रपुष्प में यह रहस्य ज्ञेय है— पद्मकोश प्रतीकाशं हृदयं चाप्यधोमुखं परमात्मा व्यवस्थितः।

नाड्यस्तु देवतास्थाने शैलस्थाने तु कीकसम्।
स्वेद बाष्प वसा रक्त मलमूत्र परासवः॥ 20॥

पिण्डाण्ड में ब्रह्माण्ड के देवताओं के स्थान में नाड़ियाँ हैं। पर्वतों के स्थान पर हड्डियाँ हैं। वैसे ही निकलने वाला पसीना, आँसू, चर्बी, रक्त, मल, मूत्र और श्लेष्म, कफादि रहते हैं।

बडवानलरूपेण जठराग्निश्च तिष्ठति।
तद्दाहात् क्षुत्पिपासे च जनिते जन्तु दुःखदेः॥ 21॥

ब्रह्माण्ड में विद्यमान बडवानल (जंगल की आग) की तरह पिण्डाण्ड में जठराग्नि (पेट की आग) विद्यमान है। उसके ताप के फलस्वरूप जन्तु को दुःखदायक भूख और प्यास होती है।

क्षुत्पिपासावशदन्नं नित्यं मश्नन्ति जन्तवः।
अन्नपानैश्च जायते कामक्रोधौ च जन्तुषु॥ 22॥

प्राणीमात्र अपनी भूख और प्यास के वशीभूत होकर अन्न-पान का आहार करते रहते हैं। इस अन्न-पान के फलस्वरूप जीवों में काम और क्रोध होते हैं।

ताभ्यां जातौ लोभमोहौ ताभ्यां मदमत्सरौ।
एतैश्च रिपुभिः षड्भिः ज्ञान हीनास्तु दुःखिताः॥ 23॥

उन काम और क्रोध के कारण ही लोगों में लोभ और मोह होते हैं। उनसे मद और मात्स्र्य उत्पन्न होते हैं। इन छह शत्रुओं— काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्स्र्य[1] के फलस्वरूप मनुष्य ज्ञान से हीन और दुखी होते हैं।

न वेत्ति परमात्मानं शान्तं हृत्पद्म संस्थितम्।
तस्माद्भवति जन्मभ्यो जीवराशिः पुनः पुनः॥ 24॥

इन शत्रुओं के विद्यमान रहने के कारण प्राणि अपने हृदयकमल में अवस्थित शान्त परमात्मा को नहीं पहचान पाते हैं। परमात्मा का ज्ञान नहीं होने के कारण वे बारम्बार जन्म ग्रहण करते हैं।

सुव्रतोवाच —

पिण्डोत्पत्ति प्रकारं मे कालहस्ति मुने वद।
कथं गर्भेषु नारीणां जन्तुर्वर्धति जायते॥ 25॥

---

१. तुलनीय— कामक्रोधलोभमोहमदमात्स्यार्यमित्यरिषड्वर्गः। (मुद्गलोपनिषद 4, 4)

इस बीच राजा सुव्रत बोले— हे कालहस्ति मुने! अब पिण्डोत्पत्ति के प्रकार के बारे में कहियेगा। आप बताइयेगा कि नारियों के गर्भ में किस प्रकार जीव आते और जन्म लेते हैं?

मुनीश्वरोवाच —

स्वर्गेऽपि भोगान्भुक्त्वासौ धात्रा जन्मनि चोदितः।
जन्तु पतति भूलोके उडुर्विष्णुपदादिव॥ 26॥

इस प्रश्न पर मुनि बोले— जीवात्मा स्वर्ग में अपने कर्मों का उपभोग करने के बाद कर्म के वश पृथ्वी पर जन्म लेते हैं। वे आकाश से भूमि पर तारों के टूटकर गिरने की तरह गिरते हैं।

स ओषधि मनु प्राप्य भूत्वान्नं यस्य कस्यचित्।
ऋणानुबन्धतः पुंसः गर्भं विशति मानवः॥ 27॥

भूमि पर आने के बाद वे जीव कदाचित् ओषध अर्थात् धान्य बनकर अन्न बनते हैं और ऋणानुबन्ध के कारण उनका मनुष्य के गर्भ में निवेश होता है।

स्त्रीजन्मनि तथा जन्तोः कारणाद्यदि कर्मणः।
स्त्रीगर्भशोणितं भूत्वा वर्तते नाभिदेशतः॥ 28॥

उक्त जीव के कर्म के अनुसार स्त्री के गर्भ में नाभि प्रदेश के समीप रक्त दिखाई देगा। जिस जीव का जिस स्त्री के गर्भ में प्रवेश का योग हो, उस स्त्री के गर्भ में उस जीव के लिए उसके उपयुक्त रक्त का निर्माण होगा।

पद्मकोशनिभे गर्भे स्त्रीणां नाभिप्रदेशतः।
अस्ति शोणितसंयुक्तं मांसकोशमधोमुखम्॥ 29॥
तत्र कोशे विकसिते प्रतिमासि च योषिताम्।
तदन्तश्शोणितं योनेः स्त्रवते ऋतुसञ्ज्ञितम्॥ 30॥

स्त्रियों के नाभिप्रदेश के समीप कमल के आकार वाले कोश में रक्त से युक्त अधोमुख एक मांसकोश होता है। स्त्रियों का वह मांसकोश प्रत्येक मास विकासमान रहता है। इस बीच, कोश में जो रक्त रहता है, वह योनि द्वारा स्त्रावित होने लगता है। इसी को ऋतु, ऋतुस्त्राव या ऋतुरक्त (मासिकधर्म) कहा जाता है।[१]

१. विधानपारिजातकार का मत है कि चार दलों से युक्त नाभि के मूल में पुष्प रहता है। उसी में समस्त स्त्रियां गर्भ के सम्भव के कारण को धारण करती हैं। यह बाल्यकाल में चतुर्दल

तत्र पुष्पं विकसितमापञ्चदश वासरम्।
तत्सकाश दिशेष्वेव भवेन्मुकुलितं पुनः॥ 31॥

स्त्री के गर्भ में वह पुष्प (आवर्त) पन्द्रह दिनों तक विकसित रहता है और शेष पन्द्रह दिन मुकुलित होकर रहता है।

तज्जन्तोर्ब्रह्मसन्धानाज्जन्मनः कारणे यदि।
ऋतौ स्त्रीपुंसयोगेन पिण्डमुत्पद्यते तदा॥ 32॥

ब्रह्म-विधान से जन्म के कारण ऋतुकाल में यदि स्त्री-पुरुष का समागम होता है तो वह जीव स्त्री के गर्भ में आता है और उसके लिए (शुक्ल शोणित संयोग से) पिण्ड तैयार होता है।

तयोः स्त्री पुंसयोश्शुक्रशोणितं योजिते यदि।
पिण्डमुत्पद्यते गर्भे पुष्पं मुकुलितं भवेत्॥ 33॥

स्त्री पुरुष के सहवास के दौरान पुरुष के शुक्र और महिला के रक्त का यदि संयोग होता है तो गर्भ में उत्पन्न वह पिण्ड पुष्प के रूप में मुकुलित या विस्तारित होता है।

शोणितादधिकं वीर्यं पुंपिण्डमिति निर्दिशेत्।
वीर्याश्चेदधिकं रक्तं स्त्रीपिण्डमिति निश्चयः॥ 34॥

इस काल में यदि स्त्री के शोणित से पुरुष वीर्य अधिक हो तो पुरुष पिण्ड और शुक्र की अपेक्षा शोणित अधिक हो तो स्त्री पिण्ड का निर्माण होता है। यह निश्चित है।

पुंसां संयोगवेलायां मलं यस्मिन्निबध्यते।
कुष्ठी भवेत्यसौ गर्भं मूत्रं चेत् क्षयरोगवान्॥ 35॥

संगमकाल में यदि पुरुष वीर्य के रूप में मल से संयोग हो जाता है तो होने वाला शिशु कुष्ठ रोग से पीड़ित होता है और वीर्य यदि मूत्र से संयोजित हो

गर्भाशय नीचे मुख करके बन्द रहता है। युवावस्था पर विकसित या खुल जाता है। जब स्त्रियों का यह पुष्प खिल जाता है तो उससे स्वभावतः रजस्राव होता है और तब से यह ऋतुधर्म प्रत्येक मास में होता है— नाभिमूले स्थितं पुष्पं चतुर्दलसमन्वितम्। तस्मिन्सर्वाश्च दधते गर्भसम्भवकारणम्॥ अधोमुखं स्थितं स्त्रीणां बाल्ये तु मुकुलीकृतम्। बाल्यात्परं वयःप्राप्तौ मुकुलं विकसद्भवेत्॥ उत्फुल्ले कुसुमे स्त्रीणां स्वभावेन भवेद्रजः। तदाप्रभृति सर्वासां मासि मासि ऋतुर्भवेत्॥ (बृहद्दैवज्ञरञ्जनम् 49, 9-11)

तो होने वाला शिशु क्षय रोग से पीड़ित होता है (ऐसा विश्वास रहा है)।

स्त्रीणां संयोगवेलायां मलं यस्मिन्निबद्यते।
पाण्डुरोगी सकुक्षिस्थो मूत्रं चेन्मेहरोगवान्॥ 36॥

संयोग के समय यदि स्त्री के मल[१] के साथ सम्बद्धता हो तो होने वाला शिशु पाण्डुरोगी (सफेद दाग वाला) होता है और यदि कुक्षी में ही यदि मूत्र से सम्बद्ध हो जाए तो वह मेह रोग वाला होता है।

ऋतुस्नानदिने बाला जायते पुरुष संगमात्।
द्वितीयेऽहनि भवेद्धीमान् तृतीये चोर एव च॥ 37॥
स्नानाच्चतुर्थे नास्त्येव पञ्चम्यां जायते नृपः।
षष्ठे च जायते क्लीब सप्तम्यां धनवान् भवेत्॥ 38॥
अष्टम्यां तु दरिद्रः स्यान्नवम्यां विजयी भवेत्।
दशम्याञ्च भवेन्नीचो भोगी एकादशे दिने॥ 39॥
द्वादशे दिवसे मूर्खो विद्वानेव त्रयोदशे।
चतुर्दशे तु परभृत योगी पञ्चदश दिने॥ 40॥

यदि ऋतुस्नान के पहले ही दिन पुरुष से संगम हुआ तो बालिका की उत्पत्ति होती है। द्वितीय दिवस ऋतुमती से संयोग से होने वाला शिशु बुद्धिमान होता है। तृतीय दिवस ऋतुमती से संयोग से होने वाला शिशु चोर होता है। ऋतुस्नान के चतुर्थ दिवस संयोग होने पर गर्भ नहीं ठहरता है जबकि पाँचवें दिन ऋतुमती के साथ संयोग से होने वाला शिशु राजा होता है। छठवें दिन संयोग पर होने वाला शिशु नपुंसक होता है और सातवें दिवस ऋतुमती से संयोग पर होने वाला शिशु भविष्य में धनवान होता है। आठवें दिवस संयोग पर होने वाला बालक दरिद्र होता है और नवें दिन संयोग से होने वाला शिशु विजयशील होता है। दसवें दिवस ऋतुमती से संयोग से होने वाला शिशु नीच होता है और ग्यारहवें दिवस संयोग से उत्पन्न शिशु भोगी होता है। बारहवें दिवस के संयोग से

---

१. प्रपञ्चसारतन्त्रम् में मायीयादि तीन मलों का सन्दर्भ मिलता है कि स्त्री का रक्त 'मायिय' कहा जाता है और क्रिया करने के कारण पुरुष का मल 'कार्मक' है। जब दोनों एक दूसरे से मिल जाते हैं तो उस संयुक्त मल का नाम 'आणव' कहा गया है — मायीयं नाम योषोत्थं पौरुषं कार्मकं मलम्। आणवं नाम संयुक्तं मिलितं तन्मलद्वयम्॥ (प्रपञ्चसारतन्त्रम् 1, 73)

उत्पन्न शिशु मूर्ख होगा और तेरहवें दिवस ऋतुमती से संयोग पर उत्पन्न होने वाला शिशु विद्वान होता है। चौदहवें दिवस होने वाला शिशु दूसरों का भरण-पोषण करने वाला और पन्द्रहवें दिवस ऋतुमती से संयोग होने पर उत्पन्न होने वाला शिशु योगीवर्य होता है।[1]

रजोवत्यास्त्रिया यस्तु दिवसत्रय मध्यमे।
सङ्गमं कुरुते मोहाद्राक्षसो भवति ध्रुवम्॥ 41॥

स्त्री के रजस्वला होने के बाद तीन दिवस तक उसके साथ सहवास नहीं करना चाहिए। यदि कोई मोहवश इस अवधि में संयोग करता है तो वह निश्चित ही राक्षस होता है।

प्रथमेऽहनि चण्डाली द्वितीये ब्रह्मघातकी।
तृतीये रजकी प्रोक्ता चतुर्थेऽहनि शुध्यति॥ 42॥

इसका कारण यह है कि पुष्पवती स्त्री पहले दिन चाण्डाली होती है, दूसरे दिन ब्रह्मघातिनी, तीसरे दिन धोबिन के समान होती है जबकि चौथे दिन शुद्ध होती है।[2]

रजोवती दिवा निद्रां कुरुते पापकर्मकृत्।
खननाज्जायते भूमेः परहिंसारतस्तथा॥ 43॥

---

१. ज्योतिषग्रन्थों का मत इस प्रकार है कि ऋतुस्नान के चौथे दिवस सहवास से होने वाला शिशु क्लेशकारक होता है। पाँचवें दिवस समता, छठवें दिवस अल्पायु पुत्र, सातवें दिवस कन्या, आठवें दिवस उत्कृष्ट पुत्र, नवें दिवस अच्छी कन्या, दसवें दिवस संयोग से दीर्घायु पुत्र, ग्यारहवें दिवस सुन्दर कन्या, बारहवें दिवस सहवास से धर्मात्मा पुत्र, तेरहवें दिवस संभोग से सती कन्या, चौदहवें दिवस शुभ व सात्त्विक, धनी पुत्र, पन्द्रहवें दिवस संयोग पर लक्ष्मी व सौभाग्य युक्त कन्या तथा सोलहवें दिवस सहवास पर यदि गर्भाधान होता है तो पुत्र दीर्घायु व राजा होता है —तुर्ये पुत्रभवे क्लेशं पञ्चमे समता फलम्। षष्ठेल्पायुः सुतः प्रोक्तः सप्तमे कन्यका तथा॥ अष्टमे पुत्र उत्कृष्टो नवमे कन्यका शुभा। दीर्घायुर्दशमे पुत्रः कन्यकैकादशे वरा॥ द्वादशे धर्मकृत्पुत्रा सती कन्या त्रयोदशे॥ चतुर्दशदिने पुत्रः लक्ष्मीवान्सात्विकः शुभः॥ पञ्चदशदिने कन्या लक्ष्मीसौभाग्यसंयुता। दिने षोडशके पुत्रो दीर्घायुर्नृपतिर्भवेत्॥ (बृहद्दैवज्ञरञ्जनम् 49, 85-88) इसी प्रकार जातकपारिजात में कहा गया है— पुत्रोऽल्पायुर्दारिकावंशकर्तावन्ध्या पुत्रः सुन्दरीशो विरूपा। श्रीमान् पापा धर्मशीलस्तथा श्रीः सर्वज्ञः स्यात् तुर्यरात्रात् क्रमेण॥ (जातकपारि. 3, 18)

२. तुलनीय— ज्योतिषसार पृष्ठ 54, मुहूर्तचिन्तामणि की पीयूषधाराटीका (5, 6) में इस श्लोक को भारद्वाज का बताया गया है।

जो रजोवती स्त्री दिन में शयन करती है तो उससे होने वाला शिशु अपराध प्रवृत्ति वाला होता है। यदि वह इस दौरान भूमि की खुदाई करती है तो उससे हिंसा करने वाला पुत्र उत्पन्न होता है।

धान्यसङ्घट्टनादभ्रष्टः कुत्सितो दूरचालनात्।
भारस्योद्वहनादगुलीलाली भवति कर्मतः ॥ 44 ॥

इसी प्रकार यदि ऐसी स्त्री धान्य कूटती है तो होने वाला शिशु भ्रष्टकर्मी होता है, दूर गमने पर कुत्सित, भारी वस्तुएँ उठाने पर गुल्म रोगी और ऐसे ही अन्य काम करने पर होने वाला शिशु मुँह से थूक निकालने वाला होता है। इसलिए ऐसी स्त्री को बिना कोई काम किए विश्राम करना चाहिए।

प्रथमेमासिसंयोगः शुक्रशोणितयोर्ध्रुवम्।
द्वितीये मासि काठिन्यं तृतीयेऽवयवोद्भवः ॥ 45 ॥

संयोग के उपरान्त पहले मास में शुक्र और शोणित का संयोग द्रव के रूप में होता है। उसके उपरान्त दूसरे मास में वह कठिन होता है। तीसरे महीने में पिण्ड के अवयवों का विकास होने लगता है।

चतुर्थे चास्थि जननं पञ्चमे चर्मसम्भवः।
केशानां जननं षष्ठे सप्तमे प्राणसम्भवः ॥ 46 ॥

चौथे महीने में हड्डियों का निर्माण आरम्भ होता है। पाँचवें महीने में चमड़ी का बनना शुरू होता है। छठवें महीने में केशों की उत्पत्ति होती है। सातवें महीने में उसमें जीव (प्राण) पड़ जाता है।

सुज्ञानं चाष्टमे मासि क्षुत्तृष्णे नवमे तथा।
प्रसवं दशमे मासि क्रमात्पिण्डं प्रजायते ॥ 47 ॥

आठवें महीने में उस पिण्डस्थ जीव को अच्छे-बुरे का ज्ञान होना आरम्भ होता है। नवें महीने में वह भूख और प्यास की अनुभूति करने लगता है। इसी क्रम में दसवें महीने में वह गर्भ से बाहर निकलता है।

गर्भिणीवाञ्छितं भक्ष्यं नो चेत् स बधिरो भवेत्।
अन्धः पुरुषसंयोगात् षण्मासादुपरि ध्रुवम् ॥ 48 ॥

गर्भिणी (चूंकि वह द्विजीवी होती है) के दोहद अर्थात् उसकी खाने-पीने की सारी इच्छाओं की पूर्ति करनी चाहिए। यदि उसकी इच्छाओं की पूर्ति नहीं की जाती है तो होने वाला शिशु बहरा हो सकता है। यदि गर्भ के छठवें मास के

बाद स्त्री-पुरुष का संयोग हो तो उत्पन्न होने वाला शिशु अन्धा हो सकता है।

गर्भिण्या सम्भुज्यते यत्तद्रसं गर्भ सम्भृतः।
भुङ्क्ते सौ ब्रह्मरन्ध्रेण मधुरं तु विशेषतः॥ 49॥

गर्भिणी स्त्री द्वारा सेवन किए गए पदार्थों का रस गर्भस्थ शिशु अपने ब्रह्मरन्ध्रों के सहयोग से ग्रहण करता है।[१] मधुर पदार्थों को वह शिशु अधिक चाहता है। इसलिए गर्भिणी स्त्रियों को मधुर पदार्थों का अधिक उपभोग करना चाहिए।

जित्वा ये रिपुषड्वर्गं योगिनः स्वान्त संस्थितः।
ब्रह्माण्डधारिणं ज्ञात्वाह्यममृतत्वं भजन्ति ते॥ 50॥

ऐसे योगी जो अपने अन्तस्थ में विद्यमान छह शत्रुओं (काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य) को जीत लेते हैं, वे अपने हृदय में विद्यमान ब्रह्माण्ड को धारण करने वाले विश्वकर्मा को पहचानते हैं और वे ही अमृततत्त्व को प्राप्त कर सकते हैं।[२]

इति श्रीकालहस्तिमुनि प्रणीत श्रीविश्वकर्मपुराणे पिण्डाण्डे ब्रह्माण्डस्य गुणानां वर्णनं नाम अष्टमोऽध्यायः॥ 8॥

इस प्रकार कालहस्ति मुनि द्वारा प्रणीत श्रीविश्वकर्मपुराण में पिण्ड-अण्ड में ब्रह्माण्ड के गुणों का वर्णन नामक आठवाँ अध्याय पूरा हुआ।

---

१. यह मत भी है कि माता द्वारा किए गए आहार से जो छह प्रकार का रस बनता है, वह शिशु की नाभि से जुड़कर प्रतिदिन उसको मिलता है जिससे वह पुष्टि प्राप्त करता है— मातुराहारवीर्येण षड्विधेन रसेन च। नाभिस्तत्र निबद्धेन वर्धते स दिने दिने॥ (प्रपञ्चसार, प्रयोगदीपिकाटीका 1, 86)

२. उपनिषदों का वचन है कि वे सर्वव्यापी विश्वकर्मादेव सदा सर्वदा महात्मा बनकर जन-जन के हृदय में विराजित हैं। उन महापुरुष को जो कोई अपने हृदय में वास देते हैं, वे सब अमृत पाकर अमर हो जाते हैं— एष देवो विश्वकर्मा महात्मा सदा जनानां हृदये संनिविष्टः। हृदा मनीषा मनसाभिक्लृप्तो य एतद्विदुरमृतास्ते भवन्ति॥ (श्वेताश्वतरोपनिषद् 4, 17)

अथ नवमोऽध्यायः ॥ 9 ॥

राजा सुव्रतोवाच —

मूलाधारं किमाधाय ब्रह्माण्डे त्रिजगन्ति च।
असृजद्विश्वकर्मादौ ब्रूवतां कालहस्तिराट् ॥ 1 ॥

राजा सुव्रत ने पूछा— हे कालहस्ति मुनिराज! अब आप यह समझाइयेगा कि परमेश्वर ने सबसे पहले किसे मूल कारण बनाकर इस ब्रह्माण्ड में तीन लोकों का सृजन किया है?

समस्त भुवनाधारं मत्वा ब्रह्माण्डमध्यतः।
विश्वकर्मा महामेरुं विश्वशङ्कुं निधाय सः ॥ 2 ॥
पद्मकोशनिभं मेरुं कृत्वा तस्मिन्महून्नते।
असृजद्विश्वकर्मायं भुवनानि चतुर्दश ॥ 3 ॥

इस प्रश्न पर मुनि कालहस्ति बोले— उन विश्वकर्मा ने महोन्नत मेरुपर्वत को ब्रह्माण्ड के बीच समस्त लोकों का आधार बनाया है अर्थात् विश्व का शंकु बनाकर ब्रह्माण्ड के बीच कमलकोश की तरह मेरुपर्वत को रखकर इन चौदह भुवनों की सृष्टि की है।

मेरोर्नालेतु पातालं मर्त्यलोकं दलेषु च।
एवमग्रे नागलोकमकल्पयदयं क्रमात् ॥ 4 ॥

उन्होंने उक्त मेरुपर्वत रूपी कमलकोश नाल के रूप में क्रमशः नीचे पाताल की रचना की है। उस पर मृत्युलोक को उसके दल के रूप में बनाया है। इसी प्रकार आगे की ओर नागलोक की रचना की है।

अभितः कर्णिनां पद्मेदलानीव वसुन्धरा।
मेरुमाक्रम्य तिष्ठत्येष्वष्ठास्वपि दिशासु ॥ 5 ॥

उस कमलदल की कर्णिकाओं के रूप में भूमि की रचना की गई है। इस प्रकार वह मेरुपर्वत आठों दिशाओं से आक्रम्य रूप सा दिखाई देता है।

पद्मनालान्तरे सूक्ष्म विवराणीव सप्त च।
पातालल्लोकास्तिष्ठन्ति मेरोर्नाले बिलेषु च ॥ 6 ॥

उक्त मेरुपर्वत रूप पद्मनाल के अन्तर में सात सूक्ष्म छिद्रों की रचना की

गई है। मेरु की उस नाल के बिलों में अतल-वितल आदि पाताल विराजित किए गए हैं।

भूमेरधस्सप्तलोकान् भूम्याश्चोर्ध्वे तु सप्त च।
विश्वकर्मा सृजन्मेरौ भुवनानि चतुर्दश॥ 7॥

इस प्रकार भूमि के नीचे सात लोक हैं और भूमि के ऊपर भी सात लोक हैं। भगवान् विश्वकर्मा ने इसी रूप में मेरु पर्वताश्रित चौदह भुवनों या लोकों की रचना की है।[१]

स्वयमेव महामेरु रूपेण पुरुषाकृतिः।
भूत्वा स्वाङ्गेषु देवेशः चक्रे लोकान् पृथग्विधान्॥ 8॥

सर्वदेवतामय वह विश्वकर्मा स्वयं महामेरु रूप पुरुषाकृति में हैं और अपने शरीर के अंगों-अवयवों में नानाविध जगत के अंगों का विधान करने वाले हैं।

मेरोः पादतलाधारं सप्तपाताल सञ्ज्ञितम्।
लोकं चक्रे तमः पूरं विश्वकर्मा महाबिलम्॥ 9॥

मेरु के चरणतल का आधार लेकर सात पाताल उनके नाम सहित हैं। वहाँ पर विश्वकर्मा कृत एक लोक अन्धकार से परिपूर्ण हैं जो महाबिल कहा जाता है।

आधारशक्तिस्तत्रास्ते डाकिनीगणसेविता।
कालरात्रिर्महामाया शिरस्याधाय भूतलम्॥ 10॥

उस पाताल में आधारशक्ति विराजित है जिसकी निरन्तर सेवामें डाकिनियों का गण लगा रहता है। वह महामाया के रूप में कालरात्रि है जो अपने सिर पर भूतल को धारण किए हैं।

गुल्फाधारान्महमेरोर्लोकं चक्रे महातलम्।
वसन्ति वायवस्तत्र धृत्वा लोकान् फणा इव॥ 11॥

उस मेरुपर्वत के गुल्फों (टखनों) को आधार बनाकर महातल नामक

---

१. तुलनीय– भूर्लोकश्च भुवश्चैव तृतीय स्वः प्रकीर्तितः। महर्जनस्तपः सत्यं सप्तलोकाः प्रकीर्तिताः॥ भूमेरधस्तात् सप्तैव लोकांस्तान्नामभिः शृणु। ततः सुतलपातालौ तमस्स्तालस्ततः परः। सुशालश्च विशालश्च सप्तमश्च रसातलः॥ (साम्बपुराण 19, 11 व 14-15)

लोक की रचना की गई है। उस महातल पर वायु विराजित है और सर्प के फणों की तरह स्वरूप में हैं।

जङ्घाधारान्महामेरोश्चक्रे लोकं रसातलम्।
जलपूरं महानदं विश्वकर्मा जगत्प्रभुः ॥ 12 ॥

जगत्प्रभु विश्वकर्मा ने उस मेरुपर्वत की जंघाओं को आधार बनाकर रसातल की रचना की है जो महानद के जल से परिपूरित हैं।[१]

वराहरूपी भगवान् तस्मिन्नास्ते रसातले।
बिभ्रद्विश्वंसदन्ष्ट्रभ्यां यत्र तत्र समुद्धरन्॥ 13 ॥

उस रसातल में वराह रूप धारण किए भगवान् विराजित हैं। वह अपनी बड़ी दाढ़ों के ऊपर उठाकर पृथ्वी का उद्धार किए हुए हैं।

मेरोर्जानुद्वयाधाराच्चक्रे लोकं तलातलम्।
तत्रास्ते कूर्मरूपेण लोकान् धृत्वाविभुर्हरिः ॥ 14 ॥

भगवान् विश्वकर्मा ने दोनों जानुओं (घुटनों) को आधार बनाकर तलातल नामक लोक की रचना की है। वहाँ पर भगवान् श्रीहरि कूर्म के रूप में पृथ्वी को धारण करते हैं।

मेरोरूरुद्वयाधारं सुतलं समकल्पयत्।
तल्लोकं पालयन्नास्ते बलिरधैत्यपतिः स्वयम्॥ 15 ॥
स महाधर्मनिरतस्सदा पुण्य जनाश्रितः।
तस्यद्वारप्रदेशे तु विष्णुरास्ते गदाधरः ॥ 16 ॥

इसी प्रकार मेरुपर्वत के दोनों ही ऊरुओं (जंघाओं) के आधार पर सुतल नामक लोक की कल्पना की गई है। उस लोक के अधिपति होकर बलि स्वयं उसका पालन कर रहे हैं। वह राजा बलि सदा महाधर्म में लगे रहते हैं और पुण्यजनों के आश्रित हैं। उनके प्रासाद के द्वारप्रदेश पर विष्णु गदाधर के रूप में विराजित हैं।

---

१. सीमाओं को तोड़कर बहने वाली सिन्धु और ब्रह्मपुत्र जैसी नदियाँ जैसा कि शिशुपालवध की टीका में मल्लिनाथ का मत है— प्राक्स्रोतसो नद्यः प्रत्यक्स्रोतसो नदा नर्मदा विनेत्याहुः। (शिशुपाल. 66) महानद् का अर्थ बहुत ध्वनि करने वाला भी होता है। (भट्टिकाव्य. 6, 117; मालविकाग्निमित्रम् 5, 10; रघुवंश 1, 78; मेघदूत 9 इत्यादि)

मेरोरपानमाधारं कृत्वा वितल नामकम्।
लोकं चक्रे स विश्वात्मा फणिमाणिक्यरञ्जितम्॥ 17॥

उन विश्वात्मा भगवान ने मेरुपर्वत के अपान के आधार पर वितल नामक लोक की रचना की है। वह लोक सर्पों के सिर पर विराजित रहने वाली मणियों से दैदीप्यमान रहता है।

अनन्ताख्यो महाशेषः शिरोभिर्धरणीधृतः।
तत्रास्ते नागसङ्घैश्च संश्रितस्तक्षकादिभिः॥ 18॥

उस लोक में अनन्त नामक महाशेषनाग हैं जो इस पृथ्वी को अपने सिर पर उठाए रहते हैं। वहाँ पर नागों का विस्तृत संघ है जो तक्षक आदि के साथ उनकी सेवा में जुटा रहता है।

मेरोर्वस्तिप्रदेशस्मिन्नतलं समकल्पयत्।
करेणुभिर्वसन्यत्र नित्यं लोकेष्ट दिग्गजाः॥ 19॥

मेरुपर्वत के पेडू (नाभि के नीचे का प्रदेश) पर उन विश्वकर्मा ने अतल नामक लोक की रचना की है। उस अतल लोक में आठ दिग्गज अपनी पत्नियों सहित नित्य विराजित रहते हैं।

धूमज्योत्यम्बुवायूनां मेघानामास्पदाश्चते।
भवन्ति सप्तलोकाश्च क्षित्यधोदिशि निर्मिताः॥ 20॥

भूमि के नीचे निर्मित किए गए ये सातों लोक धुआँ, ज्योति, जल, वायु और मेघों के लिए सर्वथा योग्य हैं।

मेरोर्नितम्बमाधारं कृत्वा भूमिमकल्पयत्।
पञ्चाशत्कोटि विस्तीर्ण योजनामब्दिमेखलाम्॥ 21॥

विश्वकर्मा ने मेरुपर्वत के नितम्ब प्रदेश के आधार पर भूमि की परिकल्पना की है। यह पचास करोड़ योजन के बराबर विस्तार लिए है। उस पृथ्वी के लिए समुद्र मेखला की तरह है।

स्फुरत्पद्मदलाकारैः सप्तद्वीपैस्सुमण्डलाम्।
कृत्वास्याः कर्णिकां मेरुं विश्वकर्मा सृजद्धराम्॥ 22॥

उन विश्वकर्मा ने स्फुरित पद्मदल के आकार की तरह इस पृथ्वी को सात मण्डलों के रूप में सुन्दर बनाया है। उन्होंने ही मेरुपर्वत को इस पृथ्वी की

कर्णिका (गाँठ) के रूप में रचा है।

मेरोर्दक्षिणदिग्भागे विभुर्जम्बूद्रुमं प्रभो।
लक्षयोजनविस्तीर्णं लक्षयोजनमायतम्॥ 23॥

विश्वकर्मा प्रभु ने मेरुपर्वत के दक्षिण दिशा-विभाग में जम्बू (जामुन) का वृक्ष उत्पन्न किया है। उस वृक्ष का विस्तार और प्रसार एक-एक लाख योजन है।

गजतुल्यफलान्यस्य सततं निपतन्त्यधः।
तेषामल्किन्नरसो भूम्यामभूज्जम्बू महानदी॥ 24॥

उस जम्बूवृक्ष के फल गज के प्रमाण वाले हैं जो उससे निरन्तर नीचे गिरते रहते हैं। उनके रस से भूमि पर जम्बू नामक महानदी निकलकर बहती है।

तस्यां जातं हिरण्यं तज्जाम्बूनद्यामिति श्रुतम्।
पङ्कं शिलाश्च मणयो जलमिक्षुरसोपमम्॥ 25॥

ऐसा सुना जाता है कि उस नदी से सुवर्ण उत्पन्न होता है जो 'जाम्बूनद' कहलाता है। उस नदी का कीचड़, उसकी चट्टानें मणियों जैसी हैं और जल गन्ने के रस के समान होता है।[१]

तद्वृक्षो दक्षिणे देशे स्थापितो विश्वकर्मणा।
तस्माद्दक्षिण दिक्संस्थो जम्बूद्वीप इतीरितः॥ 26॥

विश्वकर्मा भगवान् ने उस वृक्ष के दक्षिण में एक देश स्थापित किया है। उसके दक्षिण दिशा में स्थित विस्तृत क्षेत्र जम्बूद्वीप के नाम से कहा जाता है।

मेरोर्नैर्ऋत्यदिग्भागे महाप्लक्षद्रुमोभवत्।
तद्दिक्संस्थो भवत् प्लक्षदीप नाम्ना प्रकीर्तितः॥ 27॥

मेरुपर्वत की नैर्ऋत्य (दक्षिण-पश्चिम) दिशा में महान् प्लक्ष (पाकड़) का वृक्ष है। उस दिशा में विद्यमान भूभाग का नाम प्लक्षद्वीप कहा गया है।

मेरोः पश्चात्कुशेसंस्थे कुशद्वीपो भवत्तथा।
तस्य पार्श्वे शरवणो देवानां शस्त्रहेतुकः॥ 28॥

---

१. जाम्बूनद सुवर्ण से ही देवताओं के गहने बनाए जाते थे। रघुवंश (18, 44) में इसका वर्णन आया है। अन्यत्र भी है— कृतरुचश्च जाम्बूनदैः। (शिशु. 4, 66) वायुपुराण में कहा गया है कि जम्बूद्वीप में पर्वत के गण्ड से जम्बू नाम की नदी निकली थी, जिससे अग्नि के समान कान्तिवाले जाम्बूनद नामक सुवर्ण की प्राप्ति होती थी। (वायु. 35, 30)

उक्त मेरुपर्वत के पश्चिमी भाग में कुश (दर्भ घास) क्षेत्र पर स्थित कुश नामक द्वीप है। उसके पास ही देवताओं को शस्त्र प्रदान करने वाला शरवरण भी हैं।

मेरोर्वायव्य दिक्संस्थे क्रौञ्चाद्रौ मेरुसन्निभे।
तस्मात् क्रौञ्चो भवद्द्वीपो संसृष्टो विश्वकर्मणा॥ 29॥

मेरूपर्वत के वायव्यकोण में स्थित क्रौंच नामक पर्वतराज मेरु के समान ही दिखाई देता है। इसलिए उस भाग को क्रौंच द्वीप कहा जाता है। यह सब भगवान् विश्वकर्मा की रचना है।

मेरोरूत्तरदिग्देशे सिन्धुर्नाम महानदी।
तद्भागसंस्थिते नाम्ना सिन्धुद्वीप इतीरितः॥ 30॥

सिन्धु नामक महानदी मेरुपर्वत की उत्तर दिशा में प्रवहमान है। उसके भागवर्ती प्रदेश को सिन्धुद्वीप के नाम से जाना जाता है।

मेरारीशान्यकोणेस्मिन् संस्थितः शाल्मलिद्वृक्षः।
नवलक्षं योजनानां विस्तारश्चोन्नतस्तथा॥ 31॥

मेरुपर्वत के ईशान कोण में शाल्मलि (सेमल) का विशाल वृक्ष है। उसकी ऊँचाई और विस्तार नौ लाख योजन के बराबर है।

शम्भोर्भरुण्डरूपस्य शरभस्य हरिद्विषः।
तन्नाम शाल्मलिद्वीपमभूदीशाना संस्थितम्॥ 32॥

भगवान् शम्भु वहाँ हरि (विष्णु और सिंह) के शत्रु शरभ के रूप में अधिपति-स्वामी हैं। उस द्वीप का नाम शाल्मलिद्वीप है जो ईशान कोण में अवस्थित है।[1]

---

१. शिव का शरभावतार प्रसिद्ध है। लिङ्गपुराण में इस प्रसंग की विस्तृत कथा आई है। विष्णु के नरसिंह अवतार के समय उनके तेज को शान्त करने के लिए शरभावतार हुआ। इसलिए इस अवतार को विष्णु का वैरी भी कहा गया है। (पूर्व. अध्याय 95-96) पौराणिक आख्यायिकाओं में शरभ को एक जन्तु माना गया है। उसके आठ पाँव होते, ऊँची आंखें और चार पाँव ऊपर होते थे। वह सिंह को भी मारने के लिए तत्पर रहता था— अष्टपादूर्ध्वनयन ऊर्द्धपादचतुष्टयः। तं सिंहं हन्तुमागच्छन् मुनेस्तस्य निवेशनम्॥ (महाभारत 12,117, 12) कोशों में उसको करभ भी कहा गया है। ऐसा आया है कि वह आठ पाँव का होता था और सिंह के अधिक बलवान माना जाता था— शरभकुलमजिह्मं प्रोद्धरत्यम्बुकूपात्। (ऋतुसंहार 1, 23)

उक्त मेरुपर्वत के पश्चिमी भाग में कुश (दर्भ घास) क्षेत्र पर स्थित कुश नामक द्वीप है। उसके पास ही देवताओं को शस्त्र प्रदान करने वाला शरवरण भी हैं।

मेरोर्वायव्य दिक्संस्थे क्रौञ्चाद्रौ मेरुसन्निभे।
तस्मात् क्रौञ्चो भवद्द्वीपो संसृष्टो विश्वकर्मणा॥ 29॥

मेरूपर्वत के वायव्यकोण में स्थित क्रौंच नामक पर्वतराज मेरु के समान ही दिखाई देता है। इसलिए उस भाग को क्रौंच द्वीप कहा जाता है। यह सब भगवान् विश्वकर्मा की रचना है।

मेरोरूत्तरदिग्देशे सिन्धुर्नाम महानदी।
तद्भागसंस्थिते नाम्ना सिन्धुद्वीप इतीरितः॥ 30॥

सिन्धु नामक महानदी मेरुपर्वत की उत्तर दिशा में प्रवहमान है। उसके भागवर्ती प्रदेश को सिन्धुद्वीप के नाम से जाना जाता है।

मेरारीशान्यकोणेस्मिन् संस्थितः शाल्मलिद्रुक्षः।
नवलक्षं योजनानां विस्तारश्चोन्नतस्तथा॥ 31॥

मेरुपर्वत के ईशान कोण में शाल्मलि (सेमल) का विशाल वृक्ष है। उसकी ऊँचाई और विस्तार नौ लाख योजन के बराबर है।

शम्भोर्भरुण्डरूपस्य शरभस्य हरिद्विषः।
तन्नाम शाल्मलिद्वीपमभूदीशाना संस्थितम्॥ 32॥

भगवान् शम्भु वहाँ हरि (विष्णु और सिंह) के शत्रु शरभ के रूप में अधिपति-स्वामी हैं। उस द्वीप का नाम शाल्मलिद्वीप है जो ईशान कोण में अवस्थित है।[1]

---

१. शिव का शरभावतार प्रसिद्ध है। लिङ्गपुराण में इस प्रसंग की विस्तृत कथा आई है। विष्णु के नरसिंह अवतार के समय उनके तेज को शान्त करने के लिए शरभावतार हुआ। इसलिए इस अवतार को विष्णु का वैरी भी कहा गया है। (पूर्व. अध्याय 95-96) पौराणिक आख्यायिकाओं में शरभ को एक जन्तु माना गया है। उसके आठ पाँव होते, ऊँची आंखें और चार पाँव ऊपर होते थे। वह सिंह को भी मारने के लिए तत्पर रहता था— अष्टपादूर्ध्वनयन ऊर्द्ध्वपादचतुष्टयः। तं सिंहं हन्तुमागच्छन् मुनेस्तस्य निवेशनम्॥ (महाभारत 12,117, 12) कोशों में उसको करभ भी कहा गया है। ऐसा आया है कि वह आठ पाँव का होता था और सिंह के अधिक बलवान माना जाता था— शरभकुलमजिह्मं प्रोद्धरत्यम्बुकूपात्। (ऋतुसंहार 1, 23)

प्राग्भागे संस्थितं मेरोर्वनं पुष्कर नामकम्।
तत्रास्ते पुष्करोर्नाम मुनीनामधिराणमुनिः ॥ 33 ॥
तिस्रः कोट्योर्धकोटि च तीर्थानि भुवनत्रये।
वसन्ति यानि तीर्थानि पुष्करस्याश्रमस्थले ॥ 34 ॥

मेरुपर्वत की पूर्व दिशा में पुष्कर नामक वन (पुष्करारण्य, पोखरण) है। उस वन में मुनियों के अधिराज पुष्कर नामक मुनि विराजमान हैं। तीनों लोकों में स्मृत साढ़े तीन करोड़ करोड़ तीर्थ उस पुष्कर मुनि के आश्रम-स्थल में कहे गए हैं।

तन्नाम्ना पूर्वदिक्संस्थो निर्मितो विश्वकर्मणा।
पुष्करद्वीप आस्ते स सिद्धविद्याधराश्रयः ॥ 35 ॥

ऐसे पुष्कर मुनि के नाम पर विश्वकर्मा ने मेरु की पूर्व दिशा में उक्त पुष्कर द्वीप की रचना की है। वह द्वीप सिद्ध और विद्याधरों का आश्रय बना हुआ है।

इति श्रीकालहस्तिमुनि प्रणीत श्रीविश्वकर्मपुराणे मेर्वादिपर्वतद्वीपश्च वर्णनं नाम नवमोऽध्यायः ॥ 9 ॥

इस प्रकार कालहस्ति मुनि द्वारा प्रणीत श्रीविश्वकर्मपुराण में मेरु आदि पर्वत और द्वीप का वर्णन नामक नवाँ अध्याय पूरा हुआ।

अथ दशमोऽध्यायः ॥ 10 ॥

कालहस्ति मुनि उवाच —

सप्तद्वीपेषु चैकस्मिन्नवखण्डान्यकरोद्विभुः।
जम्बूद्वीपे नियुक्तानि वक्ष्येऽहं विश्वकर्मणा॥ 1 ॥

मुनि कालहस्ति आगे बोले— उन प्रभु विश्वकर्मा ने सात द्वीपों में एक-एक द्वीप में नौ खण्ड किए हैं। ऐसे जम्बूद्वीप के खण्डों के बारे में कहता हूँ।

इन्द्रखण्डं ताम्रखण्डं चन्द्रखण्डं मतः परम्।
नागखण्डमत प्रोक्तं रसखण्डं तथैव च॥ 2 ॥
ततश्चाप्सरः खण्डं च ब्रह्मखण्डमतः परम्।
ततो गभस्तिखण्डं च नगखण्डमतः परम्॥ 3 ॥

ये नौ खण्ड हैं— 1. इन्द्रखण्ड, 2. ताम्रखण्ड, 3. चन्द्रखण्ड, 4. नागखण्ड, 5. रसखण्ड, 6. अप्सरखण्ड, 7. ब्रह्मखण्ड, 8. गभस्तिखण्ड और 9. नगखण्ड।

एकैस्मिन्पुनस्तेषु नवधाखण्डितं पुनः।
तेषां नामानि वक्ष्यामि श्रृणु सुव्रततत्त्वतः॥ 4 ॥

हे सुव्रत! उक्त नवखण्ड पुनः एक-एक नौ भागों में विभाजित किए गए हैं। उनके नाम बताता हूँ। तुम उनके बारे में तत्त्व से सुनियेगा।

प्रथम भारतं खण्डं खण्डं किम्पुरुषस्य च।
हरिपूरुषखण्डञ्च ततः खण्डमिलावृत्तम्॥ 5 ॥
ततो रमाख्य खण्डञ्च ततः हिरण्यमयम्।
कुरुखण्डं भद्रखण्डं केतुमालाह्वयं तथा॥ 6 ॥

उनमें से पहला भारतखण्ड है, द्वितीय किम्पुरुषखण्ड है। तीसरा हरिपुरुषखण्ड है, उसके बाद चौथा इलावृत्तखण्ड है। इसके बाद पाँचवाँ रमा नामक खण्ड है और छठवाँ हिरण्यमयखण्ड हैं। सातवाँ कुरुखण्ड, आठवाँ भद्रखण्ड और नवाँ केतुमालखण्ड कहा गया है।

षट्पञ्चाशद्देशभेदाश्चैकस्मिन् भुविते भवन्।
तेषां नामानि वक्ष्यामि देशानां भारतांशके॥ 7 ॥

इनमें से पहले भारत नामक खण्ड में अन्तर्गत कुल छप्पन देश बताए गए हैं। उनके नाम बताता हूँ।

अङ्गबङ्गकलिङ्गाश्च गौलकाश्मीरमागधाः।
महाराष्ट्रञ्च सौराष्ट्र साल्व कोसल कैकयाः॥ 8॥

1. अंग, 2. बंग, 3, कलिंग, 4. गौल, 5. काश्मीर, 6. मगध, 7. महाराष्ट्र, 8, सौराष्ट्र, 9. साल्व, 10. कोसल और कैकय।

हूणबर्बरगान्धार लाटकर्णाटगूर्जरा।
चोलद्राविडपाञ्चाला मालवं सिंहलं तथा॥ 9॥

12. हूण देश, 13. बर्बर, 14. गान्धार, 15. लाट, 16. कर्णाट, 17. गूर्जर, 18. चोल, 19. द्राविड, 20. पांचाल, 21. मालव और 22. सिंहल।

पुलिन्दपुल्कसं चैवमाभीरं यवनस्तथा।
कान्यकुब्जं विदेहश्च त्रिगर्ता चैव सैन्धवम्॥ 10॥

23. पुलिन्द, 24. पुल्कस, 25. आभीर, 26. यवन, 27. कान्यकुब्ज, 28. विदेह, 29. त्रिगर्त और 30. सिन्धु।

भोटिका च वराटश्च कामरूपश्च कोङ्कणम्।
बङ्गालगौडनेपाल काम्बोजनिषधस्तथा॥ 11॥

31. भोटिका, 32. वराट, 33. कामरूप, 34. कोंकण, 35. बंगाल, 36. गौड़, 37. नेपाल, 38. काम्बोज, 39. नैषध।

तुलुञ्चं च तुरुष्कञ्च कुरु कङ्कमरुःकषा।
चम्पाकश्शूरसेनश्च विदर्भः कुन्तलोत्कला॥ 12॥

40. तुलुन, 41. तुरुष्क, 42. कुरु, 43. कंक. 45. मरु, 46. चम्पा, 47. शूरसेन, 48. कुन्तल और 49. उत्कल।

आन्ध्रकेरललङ्काश्च मत्स्यं पाण्ड्यं च दाहलम्।
उशीरदेश-स्त्रीराष्ट्रं इत्येते देशभेदकाः॥ 13॥

इसी प्रकार 50. आन्ध्र, 51. केरल, 52. लंका, 53. मत्स्य, 54. पाण्ड्य दाहल, 55. उशीरदेश और 56. स्त्रीराज्य— ये उन देशों के भेद हैं।

एवमेकैकदेशे च पृथग्जनपदानि च।
असावसंख्यान्यसृजद्विश्वकर्मा जगत्पतिः॥ 14॥

ऐसे ही एक-एक देश में अलग-अलग कई जनपद हैं। इस प्रकार असंख्य देशों और जनपदों को जगत्पति विश्वकर्मा ने रचा है।

सप्तद्वीपेषु भेदेन कृत्वा देशाननेकधा।
पर्वतान्कल्पयेन्मेरोः परितो निधि संयुताम्॥ 15॥

इस प्रकार विश्वकर्मा ने सात द्वीपों में अनेक देशों को स्थापित करके मेरु के चारों ही ओर अनेक निधियों सहित पर्वतों की रचना की है।

प्राग्भागेस्य महामेरोरसृजद्गन्धमादनम्।
विंशल्लक्ष प्रमाणेन योजनेन महोन्नतम्॥ 16॥
सिद्धगन्धर्वसंसेव्यमप्सरोगण सङ्कुलम्।
विचित्रधातुमच्छृङ्गं सिंहशार्दूल सेवितम्॥ 17॥
चन्द्रकान्तैस्सुधवलं नानागुल्मलताश्रयम्।
सुगन्धचन्दनैर्युक्तं विश्वकर्मा सृजन्नगम्॥ 18॥

महामेरुपर्वत की पूर्व दिशा में गन्धमादन पर्वत की रचना की गई है। वह बीस योजन प्रमाण की श्रेष्ठ ऊँचाई लिए हुए है। उस पर्वत पर अप्सरागणों के समूहों से सेवित सिद्धों और गन्धर्व विचरण करते हैं। नाना प्रकार के धातुओं और शिखरों वाले उस पर्वत की रक्षा सिंह और उनके शावक करते हैं। वह चन्द्रमा की कान्ति की तरह धवल दीप्ति लिए है और अनेक प्रकार के गुल्मों व लताओं से आच्छादित है। भगवान् विश्वकर्मा ने उसको चन्दन की सुगन्ध से सुरभित किया है।

मेरोश्च दक्षिणभागे विश्वकर्मा जगत्प्रभुः।
हिमाद्रिमकरोद्धीमान् पार्वतीश निराश्रयम्॥ 19॥
मेरुतुल्यप्रमाणेन विस्तारेणोन्नतेन च।
प्रमथैर्देववर्यैश्च सेव्यमानं शिवप्रियम्॥ 20॥

मेरु के दक्षिण भाग में जगत्प्रभु विश्वकर्मा ने हिमालय पर्वत की रचना की है। वह ज्ञानमूर्ति, पार्वती के स्वामी भगवान् शिव का आश्रय है। वह हिमालय चौड़ाई, ऊँचाई में मेरु के समान ही है। वहाँ भगवान् शिव प्रमथगणों और श्रेष्ठ देवताओं से सेव्यमान हैं।

गङ्गानिर्झरनिर्धूतस्वीयसानु प्रभोज्ज्वलम्।
त्रिभिर्वायामदिवं शृङ्गैस्ताम्रकर्बूरराजतैः॥ 21॥

इभप्रभिन्नकुम्भेभ्यो निपतन्मौक्तिकान्तितम्।
गङ्गाधरशिखाचन्द्रचन्द्रिकाभिरलङ्कृतम्॥ 22॥

वह पर्वतराज गंगा नदी की धाराओं प्रवाह से पवित्र होने वाली चोटियों से प्रभामय है। उसकी चोटियाँ ताँबे, सोने और चाँदी जैसी और आकाश को चूमती सी लगती हैं। गजराजों के कुम्भस्थलों से टपकने वाले मोतियों की चमक के समान उसकी दीप्ति है। वहाँ गंगाधर शिव की शिखा चन्द्रमा की कान्ति से अलंकृत है।

तन्मेरोहपश्चिमे भागे महोच्चं मन्दराचलम्।
चकार विश्वकर्मासौ पञ्चाशल्लक्ष विस्तरम्॥ 23॥
तावद्भिर्योजनैः शृङ्गैरून्नतं स्फटिकैरमुम्।
विष्णोर्विहारशिखरैरुज्वलं सहिरण्यमयैः॥ 24॥
सदा देवाङ्गनास्निग्धक्रीडाकाषु गृहाश्रयम्।
निर्मलोदक कल्लोलसरो विलसितं गिरिम्॥ 25॥

उन विश्वकर्मा ने मेरु के पश्चिमी भाग में बहुत उन्नत मन्दराचल की रचना की है। वह पर्वत पचास लाख योजन का विस्तार लिए है। उसकी चोटियाँ उन्नत और स्फटिक की तरह उज्ज्वल हैं। उस पर्वतराज के सुवर्ण सहित उज्ज्वल शिखर पर भगवान् विष्णु का विहार है। वहाँ पर नित्यप्रति देवांगनाओं की क्रीड़ाओं के लिए गृह, वन और आश्रय बने हुए हैं। उस पर्वतीय क्षेत्र में निर्मल जल से भरे हुए सरोवर हैं जिनमें जलचारी कल्लोल करते हुए विलास करते हैं।

शैलाननेकान् चक्रेऽथ विश्वकर्मा महीतले।
विचित्रधातुरत्नाढ्यान् महौषधिलताश्रयान्॥ 26॥

इसके अतिरिक्त भगवान् विश्वकर्मा ने इस भूमितल पर अनेकानेक पर्वतों की रचना की जो कि नाना प्रकार के धातुओं और रत्नों सहित महोषधियों एवं लताओं के आश्रयस्थल हैं।

उदयाद्रिं सुवेलाद्रिं विन्ध्यपर्वतसत्तमम्।
लोकालोकं त्रिकूटाद्रिं विदूरं क्रौञ्चपर्वतम्॥ 27॥
ऋक्षावर्तगिरिं चैव महेन्द्रं सह्यपर्वतम्।
पारियात्रगिरिं चैव द्रोणाद्रिं मलयाचलम्॥ 28॥
हेमकूटं ऋष्यशृङ्गं यादवाद्रिं तथैव च।
मतङ्गं माल्यवन्तञ्च श्रीशैलमरुणाचलम्॥ 29॥

सह्याचलश्च मैनाकं सुषेणाद्रिं भगन्धरम्।
इन्द्रईलं मुतुलुङ्गं गोवर्धनगिरिं तथा ॥ 30 ॥
सपादलक्षशैलाश्च चक्रवाल महीधरम्।

इन पर्वतों में श्रेष्ठ कहे जाने वाले उदयागिरि, सुवेलागिरि, विन्ध्याचल, लोकालोक, त्रिकूटगिरि, विदूरगिरि, क्रौंचपर्वत, ऋक्षावर्त, महेन्द्रगिरि, सह्यपर्वत, पारियात्र, द्रोणगिरि, मलयाचल, हेमकूट, ऋष्यशृङ्ग, यादवगिरि, मतंगगिरि, माल्यवान, श्रीशैल, अरुणाचल, सह्याचल, मैनाक, सुषेणगिरि, भगन्धर, इन्द्राचल, इलाचल, मुतुलुङ्ग, गोवर्धनगिरिं, सपादलक्षशैल, चक्रवाल जैसे महीधर पर्वतराज मुख्य हैं।

मन्दाकिनिदेवलोके भूलोके जाह्नवी तथा ॥ 31 ॥
अधोलोके भोगवती चकार शिवमूर्धनी।
अनेकास्सरितश्चक्रे विश्वकर्मा महीतले ॥ 32 ॥

इतना ही नहीं, उन विश्वकर्मा ने भूमिलोक में प्रवहवान सरिताएँ भी दी हैं। इनमें गंगा देवलोक में मन्दाकिनी, भूलोक में जाह्नवी और पाताललोक में भोगवती सरिता कही जाती है— उसी को भगवान् शिव ने अपनी जटाओं में धारण किया है।

भागीरथी भोगवती यमुना च सरस्वती।
असिक्री वरुणा चैव कौशिकी गण्डकी तथा ॥ 33 ॥
करतोया सदानीरा बहुदा फल्गुनी तथा।
शरावती वेगवती शोणभद्रा च नर्मदा ॥ 34 ॥
वसिष्ठासरयू चैव विशोका सैकवाहिनी।
तुङ्गाकृष्णागोमती चित्रिका काश्यपी तथा ॥ 35 ॥
कुशावती वेत्रवती कावेरी शारदा तथा।
गोदावरी कृष्णवेणी महानद्य च पिनाकिनी ॥ 36 ॥
तुङ्गभद्रा विशाला च वञ्जुला सिन्धुसङ्गमा।
पूर्णिमा च प्रणीता च सर्वदा भवनाशिनी ॥ 37 ॥
ताम्रपर्णी चन्द्रभागा पयोष्णी च मलापहा।
एता नदीश्चक्रे सौ सरांसि च दयानिधिः ॥ 38 ॥

इन पुण्यमयी नदियों में दयानिधि विश्वकर्मा ने स्मरणीय भागीरथी, भोगवती, यमुना, सरस्वती, असिक्री, वरुणा, कौशिकी, गण्डकी, करतोया, सदानीरा, बहुदा, फल्गुनी, शरावती, वेगवती, शोणभद्रा, नर्मदा, वसिष्ठा, सरयू, विशोका, एकवाहिनी,

तुङ्गा, कृष्णा, गोमती, चित्रिका, काश्यपी, कुशावती, वेत्रवती, कावेरी, शारदा, गोदावरी, कृष्णवेणी, महानद, पिनाकिनी, तुङ्गभद्रा, विशाला, वञ्जुला, सिन्धुसंगम, पूर्णिमा और सर्वदा भवनाशिनी प्रणीता है। इसी प्रकार ताम्रपर्णी, चन्द्रभागा, पयोष्णी और मलापहा आदि नदियों और सरोवरों की रचना की है।

निधीन् सृष्ट्वा महादेवो विश्वकर्मा जगत्पतिः।
जनयामास भूमेश्च सागरान्मेखलायुतम्॥ 39॥

इस प्रकार जगन्नाथ, महादेव विश्वकर्मा ने निधियों की सृष्टि की। उन्होंने ही भूमि की मेखला के रूप में महासागर की रचना की है। (इनके नाम अग्रानुसार है)

प्रथमो लवणाब्दिश्च द्वितीयश्चेक्षुसागरः।
सुवर्णावस्तृतीयश्च चतुर्थश्चाज्यसागरः॥ 40॥
पञ्चमोदध्यकूपारः षष्ठश्च क्षीरसागरः।
सप्तं स्यात् स्वादुजलः इत्येते सप्तसागरः॥ 41॥

इनमें से पहला लवणसागर और दूसरा इक्षुसागर है। तीसरा सुवर्ण आसव सागर और चौथा आज्य (घृत) सागर है। पाँचवाँ दधिसमुद्र और छठवाँ क्षीरसागर है। सातवाँ पीने योग्य जल का सागर है— ये सात सागर हैं।[१]

एवं समुद्रान् भूलोकं सर्वेषामुत्तमोत्तम्।
समस्ता जगतां वन्द्यो विश्वकर्मा चकार सः॥ 42॥

ये समुद्र भूमिलोक में सर्वप्रकारेण उत्तमोत्तम हैं। इसी कारण वे विश्वकर्मा इस समस्त पृथ्वीलोक में वन्दनीय हैं।

इति श्रीकालहंस्तिमुनि प्रणीत श्रीविश्वकर्मपुराणे जम्बूद्वीपखण्डादीनां वर्णनं नाम दशमोऽध्यायः॥ 10॥

इस प्रकार कालहस्ति मुनि द्वारा प्रणीत श्रीविश्वकर्मपुराण में जम्बूद्वीप के खण्ड आदि का वर्णन नामक दसवाँ अध्याय पूरा हुआ।

---

१. लिंगादि पुराणों में लवणसागर, क्षीरसागर, दधिसागर, घृतसागर, मधुसिन्धु, इक्षुसमुद्र, और सुस्वादुजलसिन्धु— इन सात सागरों के नाम आते हैं। साम्बपुराण में किंचित भेद है— लवणक्षीरदध्यम्बुघृतोदेक्षुरसोदकाः। स्वादूदकश्च सप्तैते समुद्राः परिकीर्तिता॥ (साम्बपुराण 19, 4) इनके साथ ही हिमवान्, हेमकूट, निषध, नील, श्वेत, शृंगवान और महाराजत इन सात पर्वतों के नाम आते हैं। इनके ऊपर माहेन्द्री, आग्नेयी, याम्या, नैर्ऋती, वारुणी, वायवी, सौम्या तथा ईशानी- इन सात देवनगरियाँ समाश्रित हैं। इनके नामानुसार ही लोकपालों के नाम आते हैं। (लिंगपुराण पूर्व. अध्या. 48 एवं भविष्यपुराण, ब्राह्मपर्व अध्या. 126)

अथैकादशोऽध्यायः ॥ 11 ॥

कालहस्ति मुनि उवाच —

चक्रे नाभितले मेरोर्भुवर्लोकं महौजसम्।
यक्षकिन्नरसिद्धानामावासं परमेश्वरः ॥ 1 ॥
मेरोर्जठरमाधारं सुवर्लोकं महौजसम्।
चकार विश्वकर्मासौ दिव्य भोगसमन्वितम् ॥ 2 ॥

मुनि कालहस्ति ने आगे कहा— उन परमेश्वर ने मेरुपर्वत के नाभितल में महान् ऊर्जा से युक्त भुवर्लोक की रचना की है। यह यक्षों, किन्नरों और सिद्धों का आवास कहा गया है। मेरु के उदर को आधार बनाकर विश्वकर्मा ने अति ऊर्जावान् सुवर्लोक (स्वर्लोक) की रचना की है जो दिव्य भोगों से युक्त है।

इन्द्रादयस्त्रयत्रिंशत्कोटि देवाः सुरस्त्रियः।
सदानन्दाद्वसन्त्यत्र सुधापान प्रहर्षिणः ॥ 3 ॥

उस लोक में देवराज इन्द्र आदि तेंतीस कोटि देवता और देवांगनाएँ सदा ही अमृत का पान करते हुए सदानन्द से निवासरत हैं।

तस्मिल्लोके वनं चक्रे देवेन्द्र प्रियकारकम्।
मन्दार पारिजातौ च सन्तानहरिचन्दने ॥ 4 ॥
कल्पवृक्षादि तरवश्चिन्तामणि सुधा हयाः।
कामधेनुर्वसन्त्यत्र सप्त चैव महर्षयः ॥ 5 ॥

यही नहीं, उस लोक में देवराज इन्द्र के लिए प्रियकारक वन की रचना की गई। उसमें मन्दार, पारिजात, सन्तान (अन्य मन्दार), हरिचन्दन, कल्पवृक्ष इत्यादि पेड़ों को लगाया गया था। उसमें चिन्तामणि जैसा रत्न, उच्चैश्रवा जैसा अश्व, अमृत, कामधेनु सहित सात ऋषि निवास करते थे।

मेरोर्वक्षःस्थलाधारं महर्लोकं चकार सः।
सन्त्यत्र ग्रहनक्षत्रतारकाश्चाप्सरस्त्रियः ॥ 6 ॥

उस मेरुपर्वत के वक्षस्थल को आधार बनाकर उन प्रभु ने महर्लोक की रचना की। उसमें सूर्य-चन्द्रादि ग्रह, अश्विन्यादि नक्षत्र और तारागणों सहित अप्सराओं जैसी स्त्रियों की क्रीड़ाएँ थीं।

मेरोर्भुजयुगाधारं तपोलोकं चकार सः।
सार्धत्रिकोटि मुनयो वसन्त्यत्र सुहर्षिणः॥ 7॥

मेरु की भुजाओं को आधार बनाकर विश्वकर्मा ने तपोलोक की सृजना की। उस तपोलोक में साढ़े तीन कोटि मुनिजन आनन्दहृदय होकर निवासरत थे।

मेरोर्मुखे विश्वकर्मा सत्यलोकं चकार सः।
तत्र ब्रह्मा जगत्स्त्रष्टा सरस्वत्या च वर्तते॥ 8॥

मेरु के मुख से विश्वकर्मा ने सत्यलोक की रचना की। वहाँ पर जगत्कर्ता पितामह ब्रह्मा सरस्वती के साथ विराजित हुए।

मेरोः शिरसि वैकुण्ठमसृजच्चाश्वतं विभुः।
नारायणस्तत्र विष्णू रमया सह वर्तते॥ 9॥

मेरुपर्वत के सिर को आधार बनाकर विभु विश्वकर्मा ने वैकुण्ठ लोक की रचना की जिसमें सर्वव्यापक नारायण रमा के साथ विराजमान हुए।

मेरोः शिखायां कैलासमसृजत्परमं पदम्।
तत्रास्ते पार्वतीयुक्तो प्रमथानगणैः शिवः॥ 10॥

मेरु की शिखा को आधार बनाकर कैलास की सृष्टि की जो परमपद कहा गया है। वहाँ पर पार्वती सहित प्रमथगणों से सेवित भगवान् शिव निवासरत हुए।

अष्ट दिक्षु महामेरोः सुवर्लोक प्रमाणतः।
इन्द्रादि लोकपालानां पट्टणानि चकार सः॥ 11॥

इसके अतिरिक्त प्रभु विश्वकर्मा ने मेरुपर्वत की आठों ही दिशाओं में सुवर्लोक के प्रमाण से ही इन्द्रादि लोकपालों के लिए पट्टन[१] (पत्तनों, नगरियों या पुरियों) की रचना की।

---

१. पत्तन का सामान्य अभिप्राय जहाँ जहाजों का आना-जाना होता है, यथा– विशाखापत्तनम्। पूर्वमध्यकाल में बस्ती को पद्रक भी कहा जाता रहा है। पत्तन शब्द का प्रयोग कई गाँवों के साथ होता रहा है। यथा— अणहिलपत्तन, देवकुलपद्रक, पालोदपत्तन, श्रीमालपत्तन, करहाटपद्रक इत्यादि। पूर्व में पत्तन शब्द से आशय समुद्र किनारे की बस्ती से ही लिया जाता रहा है, जैसा कि मयमतम्, मानसार आदि ग्रन्थों में आया भी है। पाञ्चरात्र संहिता की मान्यता के अनुसार जिसमें क्षत्रियों के निवास हो, उसको 'पुर' और जहाँ वैश्यों की घनी बस्ती हो, उसको 'पत्तन' कहा जाता है। (परमसंहिता, पाञ्चरात्रप्रसाद, पीटर पीटर्सन संस्करण, द्वितीय खण्ड पृष्ठ 2-3; समराङ्गणसूत्रधार में राजाओं के उपस्थान को पत्तन व वैश्यों की बहुलता वाले नगर को पुटभेदन कहा गया है। अध्याय 18, 5)

चक्रेऽमरावतीमैन्द्रीं वह्नेस्तेजोवती मसौ।
भानुसूनोः संयमनीं दीर्घावत्यसुरेशितुः॥ 12॥

देवराज इन्द्र के लिए अमरावती पुरी की रचना की। अग्नि के लिए तेजोवती नगरी की सृष्टि की। सूर्यपुत्र यम के लिए संयमनी पुरी को रचा और नैर्ऋत्य के लिए दीर्घावती नगरी की रचना की।

वरुणस्य च गान्धर्ववतीं चक्रेस मञ्जुलाम्।
कान्तावतीं पुरीं वायोः कुबेरस्यालकावतीम्॥ 13॥

वरुण के लिए मनोहर गन्धर्ववती नगरी को बनाया। वायु के लिए कान्तावती नगरी और कुबेर के लिए अलकावती नामक नगरी की रचना की।

एकादशानां रुद्राणामीशानस्य च दिक्पतेः।
यशोवतीं तथा चक्रे विश्वकर्मा महीपते॥ 14॥

अधिराज विश्वकर्मा ने ग्यारह रुद्रों के लिए, ईशान आदि दिक्पाल के लिए यशोवती नगरी की रचना की।[१]

एवं सृष्ट्वा विश्वकर्मा मेरौ लोकाञ्चतुर्दश।
बभार तन्मयो भूत्वा सर्वकर्ता निरञ्जनः॥ 15॥

इस प्रकार सृष्टिकर्ता विश्वकर्मा ने मेरुपर्वत को केन्द्र बनाकर चौदह लोकों की रचना की है। वह सर्वकर्ता निरंजन होकर समस्त लोकों का स्वरूप बनकर उनका भार उठाए हुए हैं।

रात्रिं दिवं करात्यर्कस्तस्मान्मेरुप्रदक्षिणम्।
विश्वकर्ममयं पद्मबन्धुस्ताराग्रहै रियम्॥ 16॥

सूर्यदेव रात और दिन उस मेरुपर्वत की प्रदक्षिणा करते हैं। विश्वकर्मामय सूर्य के सखा होकर ग्रह-तारागण भी इसी नियम में बन्धे हुए हैं।

इति श्रीकालहस्तिमुनि प्रणीत श्रीविश्वकर्मपुराणे भुवर्लोकादि वर्णनं नाम एकादशोऽध्यायः॥ 11॥

इस प्रकार कालहस्ति मुनि द्वारा प्रणीत श्रीविश्वकर्मपुराण में भुवर्लोकादि वर्णन नामक ग्यारहवाँ अध्याय पूरा हुआ।

---

१. तुलनीय— माहेन्द्री चाप्यथाग्नेयी याम्या च नैर्ऋती तथा॥ वारुणी वायवी चैव सौम्येशानी तथैव च। (साम्बपुराण 19, 6-7)

अथ द्वादशोऽध्यायः ॥ 12 ॥

सुव्रतोवाच —

मेरोः प्रदक्षिणार्थं च कथं सञ्चरते रविः ।
उदयं चास्तमानं च कथं लोकेषु जायते ॥ 1 ॥

राजा सुव्रत ने पूछा— हे मुनिश्रेष्ठ! कालहस्तीन्द्र! सूर्यदेव मेरु के प्रदक्षिणार्थी होकर किस प्रकार अपना संचरण कर रहे हैं? वे उदय और अस्त की अवधि में लोक में कैसे सम्भव होते हैं?

कस्मिन् मार्गे रथो याति को हेतु भ्रमणाय च।
तम् वे वद मुनिश्रेष्ठ! कालहस्तीन्द्र! तत्त्वतः ॥ 2 ॥

हे मुनिश्रेष्ठ! कालहस्तीन्द्र! किस मार्ग पर उन सूर्यदेव का रथ गमन कर रहा है? वह किस हेतु से संचरण कर रहा है? यह सब आप मुझे तत्त्व से समझाइयेगा।[1]

मुनि उवाच —

उदयं जायते जम्बद्वीपे च यदि भास्वतः ।
पुष्करस्यापराह्लश्च सायं द्वीपस्य शाल्मलेः ॥ 3 ॥

यह सुनकर मुनि कालहस्ति बोले— जम्बूद्वीप के प्रसंग में यह सुनना चाहिए कि यदि इस द्वीप में सूर्य का उदय होता है तो मध्याह्न पुष्कर द्वीप में होता है और शाल्मली द्वीप में सायंकाल होता है।

सिन्धुद्वीपेर्धरात्रिश्च ज्ञातव्यं सुव्रताऽधुना।
इतरेषु च द्वीपेषु भवत्येवं क्रमादिह ॥ 4 ॥

हे सुव्रत! अब यह भी जानिये कि सिन्धुद्वीप में आधी रात होती है। इस प्रकार क्रम से समस्त द्वीपों के बारे में जानना चाहिए।

मेरोर्दक्षिणभागस्थे खगे विष्णुपदे सति।
जम्बूद्वीपस्य मध्याह्नः प्लक्षद्वीपस्य चोदयम् ॥ 5 ॥

---

१. सूर्य के रथमार्ग के सम्बन्ध में अनेक मान्यताएँ हैं। मत्स्यपुराण (अध्याय 126), भागवतपुराण (स्कन्ध 12, अध्याय 11), वायुपुराण (अध्याय 52), साम्बपुराण (अध्याय 20) सहित विष्णु आदि पुराणों में भी न्यूनाधिक भेद के साथ इस आशय का विवरण उपलब्ध होता है।

मेरु के दक्षिण भाग में सूर्य के विष्णुपदस्थ[१] (वृष, सिंह, वृश्चिक व कुम्भ राशिगत) रहने पर जम्बूद्वीप का मध्याह्न होता है और प्लक्षद्वीप का उदय कहा जाएगा।

पुष्करस्याऽस्तमानं स्यादर्धरात्रिस्तु शाल्मलेः।
मेरोर्नैर्ऋतिभागस्थे व्योम्नि भास्करमण्डले॥ 6॥
प्लक्षद्वीपस्य मध्याह्नं कुशद्वीपस्य चोदयः।
जम्बूद्वीपस्याऽस्तमानं पुष्करस्य महानिशा॥ 7॥

उस काल में पुष्कर द्वीप में अस्तमान और शाल्मली द्वीप में आधी रात होगी। यदि मेरु की नैर्ऋत्य दिशा के आकाश में सूर्य मण्डल की स्थिति हो तो प्लक्ष द्वीप के लिए मध्याह्न और कुश द्वीप के लिए उदय होगा। जम्बूद्वीप के लिए अस्तमान और पुष्कर द्वीप के लिए महानिशा (आधी रात) होगी।

मेरोः पश्चिम दिग्भागे वेगादादित्यमण्डले।
क्रौञ्चद्वीपे प्रभातं च मध्याह्नश्च कुशस्य तु॥ 8॥
प्लक्षद्वीपेऽस्तमानं च जम्बूद्वीपस्य सा निशा।

सूर्य मण्डल के मेरु की पश्चिम दिशा में होने पर क्रौंच द्वीप के लिए प्रभात और कुश द्वीप के लिए मध्याह्न होगा। प्लक्ष द्वीप के लिए अस्तमान होगा और जम्बू द्वीप के लिए वह रात्रि का समय होगा।

मेरोर्वायव्यभागस्थे आकाशे सूर्यमण्डले॥ 9॥
सिन्धुद्वीपे प्रभातं च क्रौञ्चद्वीपे तु सा निशा।
कुशद्वीपेऽस्तमानञ्च प्लक्षद्वीपे महन्निशा॥ 10॥

सूर्य मण्डल यदि मेरु के वायव्य भाग के आकाश में हो तो सिन्धुद्वीप में उदय काल होगा और क्रौंच द्वीप में रात होगी। कुश द्वीप में अस्तकाल होगा और प्लक्ष द्वीप के लिए आधी रात होगी।

---

१. मुहूर्तग्रन्थानुसार इसका अर्थ होगा— षडशीत्याननं चापनृयुक्कन्याझषे भवेत्। तुलाजौ विषुवं विष्णुपदं सिंहालि गोघटे॥ (मुहूर्तचिन्तामणि 3, 4) इसके अतिरिक्त मत्स्यपुराण में कहा गया है कि सप्तर्षि मण्डल के ऊपर उत्तर दिशा में जहाँ ध्रुव का निवास है, वहीं भगवान् विष्णु का तीसरा दिव्यपद स्थित हुआ था, वह आज भी उद्भासित होता है : ऊर्ध्वोत्तरमृषिभ्यस्तु ध्रुवो यत्रानुसंस्थितः। एतद् विष्णुपदं दिव्यं तृतीयं व्योम्नि भास्वरम्॥ (मत्स्यपुराण 124, 112)

एकचक्रोरथस्यास्य कीलितो बहुदारुणा।
अरुण[1]स्सारथिस्तस्य नागास्तु रथरज्जवः॥ 11॥
रथस्यकाष्ठमेकत्र मेरुणा सह कीलितम्।
वहन्नेकत्र सप्ताश्वः प्रयाति खगमार्गतः॥ 12॥
आदित्यस्य रथो मेरुमाक्रम्या ध्रुवमण्डलात्।
प्रयाति चक्राकारेण तैलयन्त्र ध्वजं यथा॥ 13॥

यह जानना चाहिए कि उस सूर्य का एक चक्रीय रथ है जिसको कई लकड़ियों से बनाया गया है। उसका सारथी अरुण है और रथ की रस्सियों के रूप में कई नाग होते हैं।[2] सूर्य के उस रथ में काष्ठा को एक रूप में मेरु के साथ कीलित किया गया है। उसमें जोते गए सातों घोड़े (गायत्री, त्रिष्टुप जगती, अनुष्टुप, पंक्ति, बृहती और उष्णीक् के रूप में; अर्थान्तर से यहाँ एक ही सप्ताश्व का सन्दर्भ भी है) एक ही साथ आकाश मार्ग में प्रयाण करते हैं। सूर्य का वह रथ ध्रुव मण्डल से आक्रम्य करके (अधिकार में लेकर) चक्राकार वैसे ही निरन्तर चलता है जैसे तैलयन्त्र[3] के साथ ध्वजा फिरती है।[4]

मेरोर्वायव्यभागस्थे सप्ताश्व रथमण्डले।
कुशे सायं च मध्याह्न क्रौञ्चे प्लक्षे महानिशा॥ 14॥

---

१. 'अनूरु' इति पाठः।

२. तुलनीय— अहर्नाभिस्तु सूर्यस्य एकचक्रस्य वै स्मृतः। अराः संवत्सरास्तस्य नेम्यः षड्तवः स्मृताः॥ रात्रिर्वरुथो घर्मश्च ध्वज ऊर्ध्वं व्यवस्थितः। अक्षकोट्योर्युगान्यस्य आर्तवाहाः कलाः स्मृताः॥ तस्य काष्ठा स्मृता घोणा दन्त पंक्तिःक्षणास्तु वै। निमेषश्चानुकर्षोऽस्य ईषा चास्य कला स्मृता॥ युगाक्षकोटी ते तस्य अर्थकामावुभौ स्मृता। सप्ताश्वरूपाश्छन्दांसि वहन्ते वायुरंहसा॥ गायत्री चैव त्रिष्टुप् च जगत्यनुष्टुप्तथैव च। पंक्तिश्च बृहती चैव उष्णिगेव तु सप्तमः॥ चक्रमक्षे निबद्धं तु ध्रुवे चाक्षः समर्पितः। सहचक्रो भ्रमत्यक्षः सहाक्षो भ्रमति ध्रुवः॥ (मत्स्यपुराण 125, 43-48)

३. तुलनीय— अक्षः सहैव चक्रेण भ्रमतेऽसौ ध्रुवेरितः। एवमर्थवशात् तस्य सन्निवेशो रथस्य तु॥ तथा संयोगभागेन सिद्धो वै भास्करो रथः। तेनाऽसौ तरणिर्देवो नभसः सर्पते दिवम्॥ युगाक्षकोटी ते तस्य दक्षिणे स्यन्दनस्य तु। भ्रमतो भ्रमतो रश्मी तौ चक्रयुगयोस्तु वै॥ मण्डलानि भ्रमेतेऽस्य खेचरस्य रथस्य तु। कुलालचक्रभ्रमवन्मण्डलं सर्वतोदिशम्॥ (उपर्युक्त 125, 49-52; साम्बपुराण 21, 14-18)

४. अहोरात्राद्रथेनासावेकचक्रेण वै भ्रमन्। सप्तद्वीपसमुद्रां गां सप्तभिः सप्तभिर्द्रुतम्॥ (साम्बपुराण 21, 59)

(अब विपरीत सायंकाल से वर्णन) सूर्य के सप्ताश्व रथ मण्डल के मेरु से वायव्य कोण के आकाशीय भाग में रहने पर कुश द्वीप में सायंकाल होता है, क्रौंच द्वीप में मध्याह्न और प्लक्ष द्वीप में आधी रात होती है।

मेरोरूत्तरदिग्भागे तस्मिन् सवितृमण्डले।
सिन्धौ[1] तु मध्याह्नः प्रभातं शाल्मलौ भवेत्॥ 15॥

सूर्य मण्डल के मेरु के उत्तर दिशा के आकाशीय भाग में आने पर सिन्धु द्वीप में मध्याह्न और शाल्मली द्वीप में उदय काल होता है।

मेरोरीशान्यभागस्थे रथे तस्य विभावसौः।
उदयं पुष्करद्वीपे मध्याह्नः शाल्मलौ तथा॥ 16॥

सूर्य के रथ के ईशान भाग के आकाश में होने पर पुष्कर द्वीप में उदय काल होता है और शाल्मली द्वीप में मध्याह्न होता है।

अस्तमानं भवेत्सिन्धोः क्रौञ्चद्वीपस्य सा निशा।
उदयं भास्करस्यास्तमेवं जानीहि पार्थिवः॥ 17॥

हे पार्थिव! इस काल में सिन्धु द्वीप में अस्तमान होता है और क्रौंच द्वीप में रात्रि काल होता है। इस प्रकार सूर्य का उदय और अस्त काल जानना चाहिए।[2]

प्राच्यां स्थितो मेरुतटः पद्मरागमयो भवत्।
दक्षिणस्यामिन्द्रनील प्रतीच्यां स्फटिकात्मकः॥ 18॥
उत्तरस्यां महामेरोस्तटः शङ्खनिभप्रभः।
एवं रत्नमयैर्वप्रे राजते सौ सुरालयः॥ 19॥

---

१. 'द्वीपे' इति पाठः।

२. पौराणिक मान्यताओं के अनुसार मेरु के चारों ओर परिक्रमा करते हुए अस्त होने से पश्चात बार-बार सूर्य उदित होता है। रवि उदित होने पर मेरु का अतिक्रम करने के लिए क्रमशः वर्धमान किरण प्रकाशित करता है तदुपरान्त क्षीण किरणों के साथ अस्ताचल को जाता है। सूर्य जहाँ दिखाई देता है, उसको उदय कहा जाता है, जहाँ अदृश्य होता है, उसको अस्त कहा जाता है। भूमिरेखा से सूर्य के अतिदूर होने पर और रश्मि समूह के विलीन होने पर रात होती है और सूर्य दिखाई नहीं देता है—एवं चतुर्षु पार्श्वेषु मेरोः कुर्वन् प्रदक्षिणाम्। उदयास्तमने चासावुत्तिष्ठति पुनः पुनः॥ उदितो वर्धमानाभिरामध्याक्रान्तये रविः। ततः परं ह्रसन्तीभिर्गौभिरस्तु नियच्छति॥ यत्रोद्यन् दृश्यते चैव स तेषामुदयः स्मृतः। अदृश्यं गच्छते यत्र तेषामस्तं तदुच्यते॥ विदूरभावादर्कस्य भूमिलेखागतस्य च। लीयते रश्मयो यस्मात्तेन रात्रो न दृश्यते॥ (साम्बपुराण 20, 11, 13-15)

सूर्य के इस क्रम के फलस्वरूप पूर्व दिशा में मेरु पर्वत का शिखर पद्मराग की तरह दिखाई देता है। दक्षिण में इन्द्रनील की तरह और पश्चिम दिशा में स्फटिक की तरह एकदम सफेद दिखाई देता है। उत्तर दिशा में मेरु पर्वत का शिखर शंख की आभा लिए होता है— ऐसे में देवताओं का गृह वह मेरु पर्वत रत्नमय तटबन्ध दिखाई देता है।

तेषां प्रभाभिर्मिलितस्तत्तद्दिक्षुरविर्दिवि।
लक्षतेऽनेकधा लोकैः सन्ध्यायामुदयेपि च॥ 20॥

इस प्रकार सूर्य उन दिशाओं में रत्नों के प्रकाश से युक्त होकर समस्त लोक को दोनों संध्याओं अर्थात् उदय-अस्त के समय नाना रंगों में दिखाई देता है।[१]

जम्बूद्वीपस्य निकटे मध्याह्ने संस्थिते रवौ।
संलक्ष्यते नैल्यमिश्रः प्लक्षद्वीपस्य चोदये॥ 21॥

जम्बू द्वीप के समीप सूर्य जब मध्याह्न काल में विद्यमान होता है, तब प्लक्ष द्वीप में उदय होते हुए मिश्रित नील वर्ण (काले) का दिखाई देता है।

तमसंख्यात् किरणं विश्वकर्मोष्णदीधितिम्।
सहस्रकिरणं चक्रे शाणचक्रे निकृष्य सः॥ 22॥

असंख्य किरणों वाले, अति तेजोमयसिन्धु सूर्य को विश्वकर्मा भगवान् ने शाण चक्र पर चढ़ाकर हजार किरणों वाला करके निवर्तित किया है।

चतुश्शतं मयूखास्ते अधोव्याप्ता विभावसौः।
ऊर्ध्वं चतुश्शतं चोस्त्रास्तिर्यक्तेद्विशतं नृप॥ 23॥

हे नृप! सूर्य की उन हजार किरणों में से चार सौ किरणें नीचे, चार सौ ऊपर और दो सौ किरणें तिर्यक् रूप से व्याप्ति लिए रहती हैं।

विज्ञानाय स लोकानां प्रदक्षिण महर्निशम्।
त्रयीमयः करोत्यस्य मेरोः कालस्य भास्करः॥ 24॥

यह जानना चाहिए कि त्रयीमय (तीनों वेद सहित) सूर्य समस्त लोकों की अहर्निश परिक्रमा करता है। इसमें मेरु भी सम्मिलित है। सूर्य का अपना

---

१. तुलनीय— उभे सन्ध्ये प्रकाशेते आताम्रे पूर्वपश्चिमे। शृङ्गे सोमनसे सूर्ये ह्यत्तिष्ठत्युत्तरायणे॥ ज्योतिष्के दक्षिणे चापि विषुवे मध्यगस्तयोः। तस्येशानेऽभवत्सर्वः शृङ्गेऽग्रिः पूर्वदक्षिणे॥ (साम्बपुराण 19, 25-26)

कालचक्र कहा गया है। यथा—

आदित्य रथवेगेन यः काल उपपद्यते।
कलाकाष्ठामुहूर्तादिर्दिनरात्ययने तथा॥ 25॥
पक्षमासर्तुवर्षादि युगकल्पव्यवस्था।
विश्वकर्मा जगत्कर्ता कालरूपेण वर्तते॥ 26॥

सूर्य के रथ के गमन करने से ही काल की उत्पत्ति होती है। इस काल में कला, काष्ठा, मुहूर्त, दिन, रात्रि और अयन होते हैं। इसी तरह पखवाड़ा, महीना, ऋतु, वर्ष, युग और कल्प की व्यवस्था है। वस्तुतः जगत्कर्ता प्रभु विश्वकर्मा काल के रूप में ही चलायमान हैं।

इति श्रीकालहस्तिमुनि प्रणीत श्रीविश्वकर्मपुराणे कालमानादि वर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः॥ 12॥

इस प्रकार कालहस्ति मुनि द्वारा प्रणीत श्रीविश्वकर्मपुराण में कालमानादि वर्णन नामक बारहवाँ अध्याय पूरा हुआ।

अथ त्रयोदशोऽध्यायः ॥ 13 ॥

कालहस्ति मुनि उवाच —

महामेरुगिरिं दुर्गं ब्रह्मादीन् दिवौकसाम्।
दैत्योपद्रव नाशाय अष्टप्राकारसंवृत्तम् ॥ 1 ॥

कालहस्ति मुनि ने आगे कहा— भगवान् विश्वकर्मा ने महामेरु पर्वत को ब्रह्मादि देवताओं के लिए दुर्ग के रूप में निर्मित किया। दैत्यों-राक्षसों के उपद्रवों-आतंकों के विनाश के लिए उसका आठ दीवारों से घेरकर निरापद बनाया।

प्रथमं परिखाभिश्च सालं चक्रे सुसङ्कुलम्।
द्वितीयं मृण्मयं चासौ बहुकण्टक संवृत्तम् ॥ 2 ॥

पहला दुर्ग परिखा (दुर्ग के परकोटे के बाहर की ओर खोदी जाने वाली खाई) सहित बनवाया। वह दीवारों के समूह से घिरा हुआ था। द्वितीय दुर्ग मिट्टी से बनाया गया जिसको अनेक प्रकार से कंटकाकीर्ण किया गया।

शिलामयं तृतीयं च गिरिगह्वर दुर्गमम्।
अयः कवाट मरुभिर्दुरापं च चतुर्थकम् ॥ 3 ॥

तीसरा दुर्ग पाषाणों से रचा गया। वह पहाड़ी-गुफा वाला था जिसमें प्रवेश करना बहुत ही कठिन था। चौथा मरुदुर्ग था जो लोहे के किंवाड़ वाला और शत्रुओं के लिए दुर्गम था।

पञ्चमं गिरिदुर्गञ्च अगम्यं निर्झरादिभिः।
षष्ठं तु विषमस्थाने संस्थितं परभीतिदम् ॥ 4 ॥

पाँचवाँ गिरिदुर्ग था जहाँ झरनों आदि के प्रवाह के कारण शत्रु नहीं पहुँच सकते थे। छठवाँ दुर्ग विषम स्थान पर बनाया गया जो शत्रुओं के लिए भयावह था।

सप्तमं भटसन्दोहैः प्रावृत्तं घोषदीपितैः।
अष्टमं शिखरैर्दीप्तं पद्मरागादिभिः सदा ॥ 5 ॥

सातवाँ दुर्ग ऐसे रणयोद्धाओं को लेकर रचा गया था जहाँ पर रणकुशल सिंहनाद करते थे। आठवें दुर्ग का शिखर पद्मराग आदि रत्नों से सदा ही दीप्तिमान रहता था।

एवं मेरुगिरिं दुर्गमदुत्तारकुसुमाकृतिम्।
विश्वकर्मा चकारासौ देवानां विजयायतम्॥ 6॥

इस प्रकार भगवान् विश्वकर्मा ने देवताओं की विजयसिद्धि के प्रयोजन से मेरुगिरि पर कुसुमाकृति में दुर्गमातिदुर्गम दुर्गों का निर्माण किया।[1]

परिखामग्नि संतप्त जलां वैतरणीं नदी।
चकार विश्वकर्मास्य मेरोः कटकवेष्टिताम्॥ 7॥

यही नहीं, विश्वकर्मा ने मेरुपर्वत की दुर्ग-परिखा को वैतरणी नदी के उस जल से भर दिया जो गर्म खौलते हुए जल से भरी होती है। मेरुपर्वत को सैनिक

---

१. शुक्राचार्य ने दुर्ग की विशेषताएँ और स्थानानुसार स्थितियाँ इस प्रकार बताई है— दंष्ट्राविरहितः सर्पो यथा नागो मदच्युतः। दुर्गेण रहितो राजा तथा गम्यो भवद्रिपोः॥ इसी प्रकार मनुस्मृति में दुर्ग की प्रशंसा, निर्माणादि के लिए कहा गया है- धन्वदुर्ग, महीदुर्गमब्दुर्गं वार्क्षमेव वा। नृदुर्ग गिरिदुर्ग वा समाश्रित्य वसेत्पुरम्॥ सर्वेण तु प्रयत्नेन गिरिदुर्गं समाश्रयेत्। एषां हि बाहुगुण्येन गिरिदुर्गं विशिष्यते॥ त्रीण्याद्यान्याश्रितास्त्वेषां मृगगर्ताश्रयाऽप्सराः। त्रीण्युत्तराणि क्रमशः प्लवङ्गमनरामराः॥ यथा दुर्गाश्रितानेतान्नोपहिंसन्ति शत्रवः। तथारयो न हिंसन्ति नृपं दुर्गसमाश्रितम्॥ (शुक्रनीति 7, 70-73)
मनु का विचार है— एकः शतं योधयति प्राकारस्थो धनुर्द्धरः। शतं दशसहस्राणि तस्माद्दुर्गं विधीयते॥ (मनुस्मृति 7, 74); महाभारत में कहा गया है— कच्चिद्दुर्गाणि सर्वाणि धनधान्यायुधोदकैः। यन्त्रैश्च परिपूर्णानि तथा शिल्पि धनुर्धरैः॥ (महा. सभापर्व 5, 25)
देवीपुराण में दुर्गों को शत्रु आतंक के निवारण और शासन संचालन दोनों ही दृष्टियों से उपयुक्त कहा गया है। यह मान्यता दी गई है कि जलदुर्ग, गिरिदुर्ग, मरुदुर्ग और वनदुर्ग ये चारों ही प्रकार के मूल दुर्ग होते हैं और इनके दो-दो प्रकार हैं— दुर्गं चतुर्विधं ज्ञेयमापत्स्वाश्रयकारणम्। औदकं पार्वतञ्च धान्वनं वनजं तथा॥ चत्वारो मूलदुर्गे तु द्विभेदाः परिकीर्तिताः। अन्तर्द्वीपं स्थलञ्चैव गुहाप्रान्तरमेव च॥ प्रोक्तं निरुदकं स्तम्बमिरिणाख्य तथैव च। खाञ्जनं चैव विज्ञेयं स्तम्बगहनमष्टमम्॥ आपो द्विधा गता यत्र तदन्तर्द्वीपमुच्यते। विज्ञेयं तु नदीदुर्गमित्युवाचोशना स्वयम्॥ स्थूलमुन्नतदेशः स्यादगाधसलिलावृतम्। जलदुर्गं द्वितीयं स्यात् तडागं सरसश्च यत्॥ गिरीणामन्तरालं यद्देवद्वारं सुदुर्गमम्। गुहाख्यं पर्वतं दुर्गं प्रवदन्ति मनीषिण॥ प्रोत्तुङ्गटङ्कविच्छिन्नं सोपसारं सुसंस्कृतम्। प्रास्तरं गिरिदुर्गं स्यात् सर्व दुर्ग सुलक्षणम्॥ बहिः निःसलिलं दुर्गं तृणवक्षविवर्जितम्। ज्ञेयं निरुदकं स्तम्ब सदा दुर्ग विधायकैः॥ एतदेकञ्च विज्ञेयमीरिणं सोषरं बुधैः। स्वल्पक्षार जलोपेतं द्वितीयं सोषरं स्मृतम्॥ एतावांस्तु विशेषः स्याद्धावनं द्विविधं पुनः। खञ्जनाख्यं पुनर्ज्ञेयं सजलाधारकर्दमम्॥ स्तोकवृक्ष समायुक्तं स्तम्बाख्य गहनं विदुः॥ वनदुर्गं द्वितीयन्तु प्रवदन्ति मनीषिणः। नदीपर्वतदुर्गेषु चतुरः पार्थिव आवसेत्॥ वणोत्तमहिते ते द्वे सर्वकाम प्रसाधके। धान्वनं वनदुर्गञ्च आटव्यं तत् प्रकीर्तितम्॥ वसन्ति स्वेन विधिना यथोद्दिष्टेन ते मुने॥ (देवीपुराण 72, 52-65)

छावनियों से भी घेर दिया था।

कुष्माण्डभूतवेताल राक्षसानां च पापिनाम्।
तामशक्यां सन्तपनां तरितुमतप्तलोहवत्॥ 8॥

उस छावनी की रचना कुछ इस तरह की गई है कि उसको महापापी राक्षसों सहित कुष्माण्ड, भूत, वेताल आदि के लिए तप्त लोहे के समान पार करना असाध्य समझना चाहिए।

पुण्यदेहभृतस्तत्र नौकारुपीणगोवृषाः।
तारयं त्याशु वेगेन वृषोत्सृष्टांश्च गोप्रदान॥ 9॥

किन्तु, जो पुण्यकाय होते हैं, वे उस परिखा को नौकारूपेण गाय या वृषभ के माध्यम से पार करते हैं। वृषोत्सर्ग और गोदान जैसे कार्यों का सम्पादन करके व्यक्ति वेग से उस परिखा को पार कर सकते हैं।

तदग्रे कण्टकारण्यं मेरुदुर्ग समाश्रितम्।
सूच्यग्रतीक्ष्ण वक्त्रैश्च कण्टकैरपि विस्तृतम्॥ 10॥

मेरुदुर्ग के आश्रय में उस परिखा के आगे काँटों से भरा वन है। उसमें सुई की नोक जैसे मुँह वाले बड़े-बड़े काँटे हैं।

तदगम्यं पिशाचानां दैत्यानां पापदेहिनाम्।
सुखाद्गच्छन्ति पुण्याश्च तन्मार्गं पादुकाप्रदाः॥ 11॥

ऐसा कण्टकाराण्य पापियों, पिशाचों और दैत्यों के लिए सर्वथा अगम्य है किन्तु जो लोग पादुकाओं का दान करते हैं, वे अपने पुण्य के प्रभाव से सुखपूर्वक उसको पार कर सकते हैं।

उपत्यकायां मृत्कूटं दुरारोहं निशाचरैः।
भूतप्रेतपिशाचाद्यैर्नोल्लङ्घ्यं च कदाचन॥ 12॥

उस दुर्ग की उपत्यका में मिट्टी का शिखर (मृत्कूट, मृण्दुर्ग) निशाचरों के लिए चढ़ने की दृष्टि से दुरूह है। भूत, प्रेत, पिशाच आदि भी उसका कदाचित उल्लंघन नहीं कर सकते हैं।

दानं जगद्गुरोः प्रीत्यै गजादीनां करोति यः।
त लङ्घ्यति पूतात्मा विमानेन सुसम्मितम्॥ 13॥

जिस पुण्यात्मा ने जगद्गुरु के लिए गज आदि का प्रीतिपूर्वक दान किया

हो, वह पुण्यात्मा विमा

ततो घोरान्धव
भीकृतान्यपव

उसके उपरान्त
प्रवेश करते से पापियों

अर्चयित्वा सु
दिव्यदेहैः प्रय

जो पुण्यात्मा दे
रहने के लिए दीपस्तम्भ
प्रवेश करते हैं और उन

ततो मेरोर्बहिम
कवाटबन्धैर्वा

यही नहीं, उस
है। वहाँ पर जो किंवाड़

माता पितृन् गु
प्रत्युत्थानैः प्रि
भोजनाच्छादने
दूरालोक्य ते द
प्रवेशयन्ति स्व
अप्सरोभिस्समं

जो लोग अपने म
हैं, सुबह उठते ही अच्छ
निवेश करते हैं, उनको भ
पुण्यवान होते हैं। ऐसे
अगवानी करते हैं। वे उन
उनको कैलास गिरि औ
अप्सराओं के गण उनके

१. 'र्गामाः' इति पाठः।

हो, वह पुण्यात्मा विमान से उस मृण्दुर्ग का उल्लंघन करने में समर्थ होता है।

ततो घोरान्धकाराणि बिलद्वाराणि तद्गिरौ।
भीकृतान्यपवश्यानि पापिभिश्च निशाचरैः ॥ 14 ॥

उसके उपरान्त उस पर्वत में घोर अन्धकार सहित गुफा द्वार है। उसमें प्रवेश करते से पापियों सहित निशाचर भी भय खाते हैं।

अर्चयित्वा सुरागारै दीपान् स्थाप्यन्ति सुज्वलान्।
दिव्यदेहैः प्रयान्त्यस्मिन् मार्गे माणिक्यदीप्तिभिः ॥ 15 ॥

जो पुण्यात्मा देवालयों में अर्चना करते हैं, वहाँ पर अच्छी तरह प्रज्वलित रहने के लिए दीपस्तम्भ की स्थापना करते हैं, वे दिव्य देह प्राप्त करके उस दुर्ग में प्रवेश करते हैं और उनके लिए वह मार्ग मणि-माणिक्यों की तरह जगमगाता है।

ततो मेरोर्बहिर्मार्गाः[1] स्वर्गसीम सुसंस्थिताः।
कवाटबन्धैर्वार्तन्ते तेषु ते पापि दानवाः ॥ 16 ॥

यही नहीं, उस मेरु पर्वत के बाहर के मार्ग पर स्वर्ग की सीमा विद्यमान है। वहाँ पर जो किंवाड़ हैं, वह पापियों और दानवों के लिए बन्द ही रहता है।

माता पितृन् गुरुन् विप्रान् देवरूपेण भावयन्।
प्रत्युत्थानैः प्रियालापैर्वन्दनै रूपवेशनैः ॥ 17 ॥
भोजनाच्छादनेर्भूमौ सन्तर्पयन्ति पुण्यवान्।
दूरालोक्य ते देवा नृत्यवाद्यादि विभ्रमैः ॥ 18 ॥
प्रवेशयन्ति स्वग्रामानां कैलासं महागिरौ।
अप्सरोभिस्समं तत्र उपचारैः शनैश्शनैः ॥ 19 ॥

जो लोग अपने माता-पिता, गुरु और विप्र के प्रति देवरूप का भाव रखते हैं, सुबह उठते ही अच्छी वाणी बोलते हैं, उनकी वन्दना करते हैं और रूप का निवेश करते हैं, उनको भोजन, वस्त्र, भूमि आदि प्रदान करके सन्तुष्ट करते हैं, वे पुण्यवान होते हैं। ऐसे पुण्यात्माओं को स्वर्गस्थ देवगण दूर से ही देखकर अगवानी करते हैं। वे उनके लिए नृत्य, वाद्य वादन का प्रबन्ध कर लुभाते हैं। वे उनको कैलास गिरि और अपने ग्रामों में प्रवेश दिलाते हैं। इस अवसर पर अप्सराओं के गण उनके शनै-शनै अनुरंजनोपचार में संलग्न रहते हैं।

---

१. 'र्गामाः' इति पाठः।

ततो गिरिं महोत्तुङ्गं सानुभिर्निर्झरादिभिः।
अनारोहगजध्वानमप्राप्यं पापिमानवैः॥ 20॥
ये स्थापयन्ति देवानां गोपुराणि ध्वजानि च।
उत्पतन्ति विमानस्थान् सुरमन्दिरकारकाः॥ 21॥

इसके बाद, उस मेरुगिरि की अत्यधिक ऊँचाई पर निर्झरादि से बाधित जो दुर्ग है, उस पर पापी लोग न तो चढ़ पाते हैं न ही प्राप्त कर पाते हैं। जो देवताओं के लिए गोपुर का निर्माण करते हैं अथवा ध्वजा की प्रतिष्ठा करते हैं, वे देव मन्दिर निर्माता विमान में चढ़कर उस तक पहुँच सकते हैं।

तदग्र विषमस्थाने स्थितं स्वर्गपुरं महत्।
मृत्युप्रदं च दैत्यानां पापिष्ठानां प्रवेशनम्॥ 22॥
कुर्वन्ति यज्ञकर्मणि महादानानि षोडश।
ये हतास्समरे वीरास्ते क्रीडन्ति सुरैस्समम्॥ 23॥

उस पर्वत के आगे विषम स्थान में महान् स्वर्गपुर स्थित है। वह दैत्य और पापीजनों के लिए प्रवेश करते ही मृत्युप्रदायक है। किन्तु, जो यज्ञ कार्यों का सम्पादन करते हैं, जो जीवन में सोलह प्रकार के महादान[१] करते है अथवा धर्मयुद्ध में प्राणों को त्यागते है, वे ही वहाँ पर पहुँचते हैं और देवताओं के समान क्रीड़ा करते हैं।

उदये चास्तकाले च नित्यमादित्य मण्डलम्।
ग्रसनाय समायान्ति दैत्य दानव राक्षसाः॥ 24॥
विश्वकर्म तनुजानां त्रिसंध्याकाल सत्क्रियाः।
भूत्वा वज्रायुधाकाराः शीघ्रं निघ्नन्ति राक्षसान्॥ 25॥

यह जानना चाहिए कि नित्य ही उदयकाल और अस्तकाल में सूर्यमण्डल में दैत्य, दानव और राक्षस सूर्यमण्डल को हस्तगत करने के लिए उस पर आक्रमण करते हैं। उस समय विश्वकर्मा से उत्पन्न सन्तान जो त्रिकाल संध्या उपासना जैसी सत्क्रियाएँ करते हैं, अपने वज्रायुधों से शीघ्र ही उन राक्षादिकों का वध करते हैं।[२]

---

१. लिङ्गपुराण, मत्स्यपुराणादि में सोलह महादानों का वर्णन है।

२. तुलनीय— दशाष्टौ च समाख्याताः संक्षेपात् संख्यया पुनः। इति ते नामभिस्तुत्यैर्दानवार्थे विनायकाः। परिवार्य स्थिता सूर्यं नानाप्रहरणायुधाः॥ स्वरूपाश्चान्यरूपाश्च विरूपाः

सन्ध्याकाले त्वनुष्ठानुं ये कुर्वन्ति दिने दिने।
ते सूर्यमण्डलं छित्वा गच्छन्ति परमां गतिम्॥ 26॥

इसलिए जो नियमित रूप से तीनों ही संध्याकाल में सूर्य की वन्दन-अर्चनादि करते हैं, वे अन्तकाल में सूर्यमण्डल का भेदन करके परमगति को प्राप्त होते हैं।

इति श्रीकालहस्तिमुनि प्रणीत श्रीविश्वकर्मपुराणे मेरुदुर्गनिर्माण वर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः॥ 13॥

इस प्रकार कालहस्ति मुनि द्वारा प्रणीत श्रीविश्वकर्मपुराण में मेरु दुर्ग वर्णन नामक तेरहवाँ अध्याय पूरा हुआ।

कामरूपिणः। परिवार्य स्थिताः सूर्यं भानुरूपाश्च देवताः॥ ऋचो यजूंषि सामानि वाङ्मयोक्तनि यानि तु। नानारूपैः स्थितान्येव रवेस्तानि समन्ततः॥ (साम्बपुराण 16, 22-24; तपन्तश्च जपन्तश्च ह्लादयन्तश्च वै प्रजाः। गोपायन्ति स्म भूतानि ईहन्ते ह्यनुकम्पया॥ इत्यादि। मत्स्यपुराण 126, 25-32)

ब्रह्माण्डपुराण में आया है कि मन्देह नामक राक्षस तापित करते हुए सूर्य को निगल जाना चाहते हैं। सूर्य का उनके साथ दारुण युद्ध होता है, तब ब्रह्मा, देवगण और श्रेष्ठ ब्राह्मण लोग संध्या में सम्यक् उपासना में स्थित होकर ओंकारयुक्त गायत्री मन्त्र के द्वारा अभिमन्त्रित जल को सदा फेंकते हैं, उन मन्त्रों के प्रभाव से स्फूर्ति व ज्योति प्राप्त कर सूर्य अपनी प्रचण्ड किरणों के साथ चमकने लगते हैं— तिस्रः कोट्यस्तु विख्याता मन्देहा नाम राक्षसाः॥ प्रार्थयन्ति सहस्रांशमुदयन्त दिने दिने। तापयन्तं दुरात्मानः सूर्यमिच्छन्ति खादितुम्॥ अथ सूर्यस्य तेषां च युद्धमासीत्सुदारुणम्। ततो ब्रह्मा च देवाश्च ब्राह्मणाश्चैव सत्तमाः॥ संध्यां तु समुपासीनाः प्रक्षिपन्ति जलं सदा। ओङ्कार ब्रह्मसंयुक्तं गायत्र्या चाभिमन्त्रितम्॥ स्फूर्जज्ज्योतिश्च चण्डांशुस्तथा दीप्यति भास्करः। ततः पुनर्महातेजा महाबलपराक्रमः॥ (ब्रह्माण्डपुराण पूर्वभाग 21, 110-114)

अथ चतुर्दशोऽध्यायः ॥ 14 ॥

कालहस्ति मुनि उवाच —

भूमेर्लक्षान्तरे व्योम्नि प्रयाति रविमण्डलम्।
योजनैश्च चतुष्षष्ठिसहस्त्रैस्तत्प्रविस्तरम् ॥ 1 ॥

कालहस्ति मुनि आगे बोले— भूमि से लाखों योजन ऊँचाई पर आकाश में सूर्य मण्डल प्रयाण कर रहा है। सूर्य का वह मण्डल 64 हजार योजन प्रमाण विस्तार लिए हुए है।

कोट्यर्द्धे योजनान्यस्य सुमेरोः सम्प्रदक्षिणम्।
प्रयाति निमिषार्द्धेन रथः सप्ताश्वयोजितः ॥ 2 ॥

जिसमें सात अश्व जुते हुए हैं, सूर्य का ऐसा रथ आधी कोटि (पचास लाख) योजन की दूरी से मेरु की प्रदक्षिणा आधे निमिष में पूरी कर लेता है।

ततो मेरोर्महूत्तुङ्गे द्विलक्षे योजनान्तरे।
सम्प्रयाति सुधापूर्णं विलसच्चन्द्रमण्डलम् ॥ 3 ॥

इसके अतिरिक्त मेरुपर्वत से दो लाख योजन प्रमाण ऊँचाई के अन्तराल पर अमृत से परिपूर्ण चन्द्रमण्डल विद्यमान है।

कलाषोडशसंयुक्तं शशिरेखासमन्वितम्।
अष्टाशीति सहस्त्राणां योजनां सुविस्तरम् ॥ 4 ॥
सुधांशोः स्यन्दनस्तत्र क्षणार्द्धे पञ्चकोटयः।
योजनानि च ताराणां मार्गं गच्छत्यरं नृपः ॥ 5 ॥

हे राजन्! वह चन्द्रमण्डल सोलह कलाओं[१] से युक्त और शशिरेखा से समन्वित है। उसका विस्तार 88 हजार योजन प्रमाण कहा गया है। वहाँ पर चन्द्रमा का रथ (जिसमें दस अश्व जुते हुए हैं[२]) आधे क्षण में पाँच करोड़ योजन के प्रमाण से नक्षत्रों (ताराओं) के मार्ग पर गमन करता है।

---

१. कलाः सोमस्य षोडष— अमृता मानदा पूजा तुष्टिः पुष्टी रतिर्धृतिः। शशिनी चन्द्रिका कान्तिर्ज्योत्सना श्रीः प्रीतिरङ्गदा। पूर्णा पूर्णामृता कादायिन्यः शशिनः कला। (महानिर्वाणतन्त्र षष्ठोल्लास, 33; बृहन्नारदीयपुराण 65, 28-29)

२. चन्द्रमा के अश्व दस हैं— अजश्च त्रिपथश्चैव वृषो वाजी नरो हयः। अंशुमान सप्तधातुश्च हंसो

सुव्रतोवाच —

नमः श्रीकालहस्तीन्द्रा! सर्वज्ञ मुनिसत्तम्!।
चन्द्रः स्वयं क्षयं वृद्धिं कथं प्राप्नोति तद्वद॥ 6॥

यह सुनकर राजा सुव्रत ने पूछा — हे सर्वज्ञ मुनिसत्तम कालहस्तीन्द्र! आपको नमस्कार है। चन्द्रमा क्षय-वृद्धि को किस तरह प्राप्त करते हैं, यह समझाइयेगा।

मुनि उवाच —

दक्षप्रजापतिसुताः सप्तविंशति तारकाः।
बभूवस्तस्य जायास्ताः सुरूपस्य निशापतेः॥ 7॥

इस पर मुनि कालहस्ति बोले— पूर्वकाल में दक्ष प्रजापति की सत्ताईस पुत्रियाँ नक्षत्र कहलाई।[१] वे सुन्दर रूप वाले निशापति चन्द्रमा की पत्नियाँ हुईं।[२]

तासु तारासु रोहिण्यामेकस्या मेव तत्परः।
तस्माच्चशाप तं दक्षः कलाहीनो भवाधुना॥ 8॥

उन सभी पुत्रियों में से रोहिणी नाम की कन्या बहुत सुन्दर थी। ऐसे में चन्द्रमा उस एक के प्रति ही अनुरक्त रहते थे, अन्य की ओर नहीं देखते थे। इसी कारण दक्ष प्रजापति ने चन्द्रमा को कलाहीन हो जाने का श्राप दे दिया।[३]

व्योममृगस्तथा॥ इत्येते नामभिश्चैव दश चन्द्रमसो हयाः। एवं चन्द्रमसं देवं वहन्ति स्मायुगक्षयम्॥ (मत्स्यपुराण 126, 51-52)

१. विष्णुपुराण में दक्ष की साठ कन्याओं का ही उल्लेख है जिनमें से सत्ताईस कन्याएँ उन्होंने सोम को प्रदान कर दी थी— सर्गकामस्ततो विद्वान्स मैत्रेय प्रजापतिः। षष्टिं दक्षोऽसृजतकन्या वैरुण्यामिति न श्रुतम्॥ ददौ स दश धर्माय कश्यपाय त्रयोदश। सप्तविंशति सोमाय चतस्रोऽरिष्टनेमिने॥ (विष्णुपुराण 1, 15, 102-103)

२. चन्द्रमा की ये पत्नियाँ सब नक्षत्रयोगिनी कही गई हैं। नक्षत्रों पर ही उनका नामकरण किया गया हैं। यथा—1. अश्विनी, 2. भरणी, 3. कृत्तिका, 4. रोहिणी, 5. मृगशिरा, 6. आर्द्रा, 7. पुनर्वसु, 8. पुष्य, 9. आश्लेषा, 10. मघा, 11. पूर्वाफाल्गुनी, 12. उत्तराफाल्गुनी, 13. हस्त, 14. चित्रा, 15. स्वाति, 16. विशाखा, 17. अनुराधा, 18. ज्येष्ठा, 19. मूल, 20. पूर्वाषाढ़ा, 21. उत्तराषाढ़ा, 22. श्रवण, 23. धनिष्ठा, 24. शतभिषा, 25. पूर्वाभाद्रपदा, 26. उत्तराभाद्रपदा और 27. रेवती।

३. यह समग्र कथा प्रसंग शिवपुराणोक्त कोटिरुद्रसंहिता में अध्याय 8 से 14 तक विस्तार से मिलता है। स्कन्दपुराण के प्रभासखण्ड में प्रकारान्तर से कथा सहित चन्द्रमा द्वारा प्रभास

चन्द्रोऽपि विश्वकर्माणं प्रार्थायत्कान्तिवृद्धये।
स पुपोष पुनः सर्वकलाः प्राप्य दिने दिने॥ 9॥

इस शाप के बाद चन्द्रमा ने भगवान् विश्वकर्मा की प्रार्थना की और अपनी कलाओं की अभिवृद्धि के लिए निवेदन किया। विश्वकर्मा के अनुग्रह से वह पुनः दिन-ब-दिन सभी सोलह कलाओं से परिपूर्ण हुए।

सुव्रतोवाच —

कलास्ता यत्र गच्छन्ति दक्षशापात्सुधानिधेः।
संस्थाप्यन्ते कथं तस्मिन् पुनस्ता विश्वकर्मणा॥ 10॥
तद्रहस्यं ममाचक्ष्व कालहस्ति महामुने।
त्वत्कथामृतपानेन यतस्तृप्तोस्म्यऽहं गुरो॥ 11॥

यह सुनकर राजा सुव्रत ने कहा— हे कालहस्ति महामुने! आप जो कह रहे हैं, उनसे मैं बहुत ही सन्तुष्ट हो रहा हूँ किन्तु दक्ष प्रजापति के श्राप से क्षरित होते चन्द्रमा की कलाएँ कहाँ जाती हैं और पुनः विश्वकर्मा के अनुग्रह से वे कलाएँ चन्द्रमा में कैसे आती हैं? इस रहस्य को समझाइयेगा।

मुनि उवाच —

क्रमात्पिबन्ति ते सर्वकलाः पञ्चदशामराः।
कलामेकां शशीलोभादुदकेषु लतासु च॥ 12॥
तस्माद्देवा बभूवस्ते पक्षे पक्षे मृताशनाः।
चन्द्र एवामृतं लोके जीवितुं सर्वजीविनः॥ 13॥

सुव्रत राजा की जिज्ञासा पर मुनिवर बोले— चन्द्रमा की कलाओं को मास के प्रत्येक कृष्णपक्ष में पन्द्रह देवगण पीकर अमृताशन (अमृत पीने वाले) हो गए हैं।[१] सोलहवीं कला को चन्द्रमा ने लोभ के वशीभूत होकर जल और लताओं में

क्षेत्र में जाकर शिवाराधना, वरदान प्राप्ति, सोमनाथ मन्दिर का निर्माण और विप्रों की उनकी सेवा में लगाने जैसे प्रसंग भी मिलते हैं। मत्स्यपुराण में अन्य प्रसंग आया है। (मत्स्यपुराण 126, 153–72)

१. मत्स्यपुराण में भी यही मत प्रतिपादित किया गया है — प्रक्षीयते परो ह्यात्मा पीयमानकलाक्रमात्। त्रयश्च त्रिंशता सार्धं त्रीणि चैव शतानि च॥ त्रयस्त्रिंशत् सहस्राणि देवाः सोमं पिबन्ति वै। इत्येवं पीयमानस्य कृष्णा वर्धन्ति ताः कलाः॥ क्षीयन्ते च ततः शुक्लाः

छिपा रखा है। इसलिए समस्त संसार की जीवराशि के जीवन के लिए चन्द्रमा ही अमृत कहा गया है।

गोमुखेस्तस्य विश्वज्ञः कलाम्बुगतां पिबेत्।
शिल्पी गोपालरूपेण दुहेत् क्षीरं सुधामयम्॥ 14॥

यह जानना चाहिए कि विश्वकर्मा से उत्पन्न विश्वज्ञ अपने गोमुख से चन्द्रमा की उस सोलहवीं कला का पान करते हैं जो जल में छिपाई गई है। गोपाल के रूप में शिल्पी अमृतमय दूध को दूहते हैं। (इसलिए जल के अन्दर अमृत का निवास माना गया है। गायों का दूध अमृत समान होकर प्राणियों की सुरक्षा करता है)।

त्वष्टा विप्रस्वरूपेण मनुरूप हुताशने।
गोक्षीरमन्नं दध्याज्यं हुवेत्सोमाभिवृद्धये॥ 15॥

इसी प्रकार त्वष्टा विप्र के रूप में और मनु अग्नि के रूप में है। वे दोनों ही गाय के दूध, अन्न, दही और घृत को चन्द्रमा की कलाभिवृद्धि के लिए होम करते हैं। (इससे शुक्लपक्ष में चन्द्रमा की कलाएँ वृद्धि को प्राप्त होती हैं।)

मयस्तद्वायुरूपेण हविश्चन्द्रे विनिक्षिपेत्।
दिने दिने कलापूर्णे तस्माच्चन्द्रो बभूव सः॥ 16॥

मय वायुरूप होकर अग्नि में स्थित इच्छाओं को चन्द्रमा को प्रदान करता रहता है। इसी कारण (शुक्लपक्ष में प्रतिपदा के क्रम से) प्रत्येक दिवस कलाओं के पूर्ण होने से चन्द्रमा पूर्ण रूप धारण करता है। (ये ही कारण है कि चन्द्रमा की कलाएँ घटती और बढ़ती रहती हैं)।

नित्यं करोति यो होमं ब्राह्मणः श्रद्धयान्वितः।
स सोमलोकं प्राप्नोति नित्यानन्दो मृताशनः॥ 17॥

इस कारण जो ब्राह्मण श्रद्धा से युक्त होकर नित्यप्रति होम करता है, वह अमृत का पान करता है और नित्य आनन्दित होकर अन्त में चन्द्रमा के लोक को जाता है।

ततः स सर्वतारासु क्रमेण परिवर्तते।

कृष्णा ह्याप्याययन्ति च। एवं दिनक्रमात् पीते देवैश्चापि निशाकरे॥ (मत्स्यपुराण 126, 62–64; कूर्मपुराण पूर्व. 41, 31–35)

त्रिलक्ष योजने ऋक्षमण्डले रोहिणीपतिः ॥ 18 ॥

चन्द्रलोक के उपरान्त क्रम से परिवर्तित होकर वह तीन लाख योजन प्रमाण दूर नक्षत्र मण्डल में जाता है और वहाँ कृत्तिकादि नक्षत्रों के साथ संचरण करता है।

यो लोके ऋतुधर्मेण स्वदारान् प्रीणयन्ति ते।
नक्षत्रलोकं विपुलं प्राप्नुवन्ति महोज्वलाः ॥ 19 ॥

भूलोक में जो ऋतुधर्म के अनुसार अपनी-अपनी पत्नियों को सुख प्रदान करते हैं, वे नक्षत्रलोक में प्रकाशमान होकर वहाँ के विपुल भोगों का लाभ उठाते हैं।

पञ्चलक्षान्तरे मेरौ बुधलोको महोज्ज्वलः।
वेदशास्त्रपुराणानि शृण्वन्तः प्राप्नुवन्ति तम् ॥ 20 ॥

मेरुपर्वत से पाँच लाख योजन प्रमाण दूरस्थ अति उज्ज्वलमान बुध का लोक कहा गया है। जो लोग अपने जीवनकाल में वेद, धर्मशास्त्र, पुराणादि का श्रवण करते हैं, वे बुधलोक को प्राप्त करते हैं।

सप्तलक्षान्तरे मेरौ शुक्रं लोकं प्रवर्तते।
सदाचाररतास्वञ्च प्राप्नुवन्ति न संशयः ॥ 21 ॥

मेरुपर्वत के ऊपर सात लाख योजन प्रमाण दूर शुक्रलोक कहा गया है। जो लोग जीवनकाल में सदाचार का पालन करते हैं, वे उस लोक को प्राप्त करते हैं, इसमें कोई संशय नहीं है।

योजनैकादशे लक्षे भौमलोकं प्रवर्तते।
अनृणा तत्र गच्छन्ति वरप्रेष्या विवर्जिता ॥ 23 ॥

मेरुपर्वत के ऊपर ग्यारह लाख योजन के प्रमाण दूर भौमलोक (मंगललोक) है। जो लोग अन्य किसी के द्रव्य को नहीं चुराते हैं और ऋणग्रस्त नहीं होते, वे भौमलोक को प्राप्त होते हैं।

गुरोस्तु द्वादशेलक्षा योजनान्ते प्रवर्तते।
गुरुपूजारता लोकं प्राप्नुवन्ति न संशयः ॥ 22 ॥

मेरुपर्वत से ऊपर बारह लाख योजन दूर बृहस्पतिलोक अवस्थित बताया गया है। जो लोग अपने जीवनकाल में गुरुदेव के पूजन में लगे रहते हैं, वे उस लोक को प्राप्त करते हैं, इसमें संशय नहीं जानना चाहिए।

मेरौ त्रयोदशे लक्षयोजने शनिमण्डलम्।
पापाचरणभीता ये गच्छन्त्यश्वध्व सेविनः ॥ 24 ॥

मेरुपर्वत के ऊपर तेरह लाख योजन प्रमाण दूरी पर शनि मण्डल कहा गया है। जो सज्जन पापाचरण करने से भयभीत रहते हैं, वे अश्ववत् प्रदक्षिणा करने वाले लोग उस लोक को प्राप्त करते हैं।

विंशल्लक्षान्तरे लोकस्सप्तर्षिणां प्रवर्तते।
सप्तसन्तानपुण्यास्तं प्राप्नुवन्ति न संशयः ॥ 25 ॥

इसी प्रकार सप्तर्षिमण्डल मेरुपर्वत के ऊपर बीस लाख योजन की दूरी पर विद्यमान है। जिन लोगों ने सात सन्तानों का पुण्य[१] प्राप्त किया हो, वे निश्चित ही उस लोक को प्राप्त करते हैं।

तदग्रे शिंशुपाचक्रं द्वात्रिंशल्लक्षयोजने।
तन्मध्ये ध्रुवलोकश्च वर्तते शाश्वतं पदम् ॥ 26 ॥
ये ब्रह्मचर्यं तपसा चरन्ति गतकामिनः।
ते प्राप्नुवन्ति तल्लोकं पुण्यतीर्थपरायणाः ॥ 27 ॥

सप्तर्षिमण्डल के आगे शिंशुपाचक्र (शिशुमार चक्र) है जो तेईस लाख योजन की दूरी पर विद्यमान है। उस चक्र के बीच में शाश्वत् पद के रूप में ज्ञेय ध्रुवलोक विद्यमान है। जो लोग अपने जीवन में कामनाओं का परित्याग करके ब्रह्मचर्य रूपी तप को करते हैं और पुण्यास्पद तीर्थों के परायण होते हैं, वे उस लोक को प्राप्त करते हैं।

आधाराच्छिशुमारस्य सर्वे सूर्यादयो ग्रहाः।
वायुपाशनिबद्धास्ते प्रकुर्वन्ति प्रदक्षिणम् ॥ 28 ॥

सूर्य इत्यादि समस्त ग्रह शिशुमार चक्र को आधार बनाए हुए है। वे वायुरूपी पाश से बन्धे होकर निरन्तर प्रदक्षिणा करते रहते हैं।

तदग्रे मानससरः सहस्त्रैः षष्ठियोजनैः।
विस्तीर्णं हेमकमल राजहंसैः सुशोभितम् ॥ 29 ॥

उस शिशुमार चक्र के आगे साठ हजार योजन प्रमाण विस्तार में मानससरोवर है। वह सुवर्णकमल और राजहंसों से सुशोभित है।

---

१. जलाशय, निधि, अग्रहार, मन्दिर, वन, काव्य और सत्पुत्र— ये सात सन्तान माने गए हैं।

अग्रे शृङ्गत्रयं मेरोस्ताम्रहेम च राजतम्।
ब्रह्मलोकञ्च वैकुण्ठं कैलासमिति कीर्तितम्॥ 30॥

उस मेरुपर्वत के अग्रभाग में ताँबा, सुवर्ण और रजतमय तीन शिखर हैं। वे ब्रह्मलोक, वैकुण्ठ (विष्णुलोक) और कैलासलोक (रुद्रलोक) कहे गए हैं।

सुज्ञानिनः सुयोगीन्द्र यत यश्च तपोधनाः।
तान्लोकान् प्राप्नुवन्त्येते भक्ता विष्णोः शिवस्य च॥ 31॥

जो विष्णुभक्त अथवा शैव होकर सुज्ञानी होते हैं, अच्छे योगी होते हैं और तपस्या के धनी होते हैं, वे लोग इन तीनों लोकों को प्राप्त होते हैं।

विश्वकर्मणि ये भक्ताः शान्ता विषयनिस्पृहाः।
ब्रह्मादि लोकांस्त्यक्त्वाते सायुज्यं प्राप्नुवन्ति हि॥ 32॥

ब्रह्माण्ड के रचने वाले विश्वकर्मा के वे भक्तजन जो शान्तचित्त और विषयों के प्रति सर्वथा निस्पृह होते हैं, वे उपर्युक्त ब्रह्मादि के लोकों में न जाकर सायुज्य (मोक्ष) प्राप्त करते हैं।

एवं मेरुगिरौस्वर्गं देवानाञ्च चकार सः।
सहस्त्रशीर्हो विश्वात्मा विश्वकर्मा महोज्ज्वलः॥ 33॥

इस प्रकार विश्व के लिए आत्मा के समान, चित्त स्वरूप, महान् उज्ज्वल और हजार सिरों वाले भगवान् विश्वकर्मा ने मेरुपर्वत के अन्तर्गत देवताओं के लिए स्वर्गलोक की सृष्टि की है।

अन्यां सृष्टिं द्विबाहुभ्यामेकशीर्षान्वितः प्रभुः।
विश्वकर्मस्वरूपोयमसृजत्काश्यपोमुनिः॥ 34॥

इसके अतिरिक्त एक और सृष्टि का नियोजन दो भुजाओं और एक सिर वाले प्रभु विश्वकर्मा के स्वरूप के समान काश्यपमुनि ने किया है।

इति श्रीकालहस्तिमुनि प्रणीत श्रीविश्वकर्मपुराणे सूर्यादिलोक वर्णनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः॥ 14॥

इस प्रकार कालहस्ति मुनि द्वारा प्रणीत श्रीविश्वकर्मपुराण में सूर्यलोक वर्णन नामक चौदहवाँ अध्याय पूरा हुआ।

अथ पञ्चदशोऽध्यायः ॥ 15 ॥

मुनि उवाच —

एवं मेरुगिरिस्थाने भुवनानि चतुर्दश।
ब्रह्माण्डमिति विज्ञेयं ब्रह्मगर्भ समुद्भवम् ॥ 1 ॥

मुनि कालहस्ति ने आगे कहा— इस प्रकार मेरुपर्वत के स्थान पर चौदह भुवनों को ब्रह्मा के गर्भ से उत्पन्न ब्रह्माण्ड जानना चाहिए।

कुक्कुटाण्ड निभाकार ब्रह्माण्डानि सहस्त्रशः।
यस्मिन् गर्भे प्रजायन्ते स ब्रह्मा त्वष्ट्रनामकः ॥ 2 ॥

कुक्कुट के अण्डों की तरह के आकार वाले हजारों ब्रह्माण्ड जिसके गर्भ से उत्पन्न होते हैं, वह त्वष्टा नामक ब्रह्मा हैं।

ब्रह्मा ब्रह्माण्ड मध्यस्थो विष्णुगर्भ समुद्भवः।
ब्रह्माण्डानां सहस्त्राणि तेषां विष्णुः स बिभ्रति ॥ 3 ॥

ब्रह्माण्ड के मध्य रहने वाले उक्त ब्रह्मा विष्णु के गर्भ से उत्पन्न हुए हैं। ऐसे हजारों ब्रह्माण्डों को मय स्वरूप विष्णु स्वयं धारण करते हैं।

विष्णुर्महाण्ड मध्यस्थः शिवगर्भे सुसंस्थितः।
महाण्डानां सहस्त्राणि शिवरूपो बिभर्ति सः ॥ 4 ॥

उस ब्रह्माण्ड के मध्य में रहने वाले विष्णु की उत्पत्ति शिवगर्भ से हुई है। हजारों की संख्या में उन महाण्डों को मनु स्वरूपधारी शिव ने धारण कर रखा है।

शिवः परशिवात्मस्थ पराण्डे संस्थितः सदा।
परः शिवो विश्वकर्मा पराण्डानि बिभर्ति सः ॥ 5 ॥

पराण्डों के मध्य में शिव परशिव में ही विद्यमान रहने वाले हैं। विश्वकर्मा के नाम से विख्यात् प्रसिद्ध परशिव उन पराण्डों को धारण किए हुए हैं।

परब्रह्माण्ड मध्यस्थः स्वयं परशिवस्तथा।
परब्रह्माण्डशतकं सहस्त्र शिरसाधृतम् ॥ 6 ॥

जो शिव परब्रह्माण्डों के मध्य में स्थित है, वह पूर्वोक्त सैकड़ों परब्रह्माण्डों

को अपने सहस्र सिरों से धारण किए हुए हैं।

परिपक्क वटाकारं परब्रह्माण्डमुच्यते।
उदुम्बर फलाकारं पराण्डं परिकीर्तितम्॥ 7॥

यह भी जानना चाहिए कि परब्रह्माण्ड को पके हुए वट के फल आकार का (न्यूनतम) कहा गया है। पराण्ड को गूलर के फल के (थोड़ा बड़ा) समान बताया गया है।

कपित्थफल सङ्काशं महाब्रह्माण्डमुच्यते।
कपोताण्ड निभाकारं महाण्डं परिकीर्तितम्॥
कुक्कुटाण्डं समाकारं ब्रह्माण्डमिति कीर्तितम्॥ 8॥

उसकी अपेक्षा थोड़ा बड़ा कपित्थ (कैंथ के फल, कोटुम्बड़ या कबिती) के बराबर महाब्रह्माण्ड को बताया गया है। कपोत के अण्डे के आकार का महाण्ड कहा गया है और कुक्कुट के अण्डे के बराबर ब्रह्माण्ड को बताया गया है।

परब्रह्माण्ड मध्यस्थ लोकान् सर्वान् पृथग्विधान्।
सहस्त्रशीर्ष नामा स विश्वकर्मा सृजद्विहून्॥ 9॥

परब्रह्माण्ड के मध्य में विद्यमान सभी लोकों को पृथक्-पृथक् विधान के साथ रचा गया है। उनकी रचना सहस्त्रशीर्ष नाम से विख्यात भगवान् विश्वकर्मा ने की है।

पराण्ड संस्थितान् लोकान्सर्वान्परशिवात्मकः।
विश्वकर्मा सृजद्देवो लीलया सुमहोज्वलः॥ 10॥

इसी प्रकार पराण्ड में विद्यमान सभी लोकों की सृष्टि परम शिवात्मक महोज्वल विश्वकर्मा द्वारा लीला के रूप में की गई है।

लोकान्महाण्डमध्यस्थान् विष्णुनाम मयः स्वयम्।
विश्वकर्मा सृजत्सर्वान् चतुर्बाहु समन्वितः॥ 11॥

महाण्ड के मध्य में विद्यमान समस्त लोकों की रचना विष्णु नामक मय ने स्वयं की है। वह मय विश्वकर्मा स्वरूप में चार भुजाओं वाले हैं।

लोकान्ब्रह्माण्ड मध्यस्थान् त्वष्ट्रब्रह्मा सृजत्स्वयम्।
चतुर्मुखस्वरूपेण भुवनानि चतुर्दश॥ 12॥

इसी प्रकार ब्रह्माण्डलोक के बीच विद्यमान समस्त चौदह भुवनों की रचना ब्रह्मा स्वरूप त्वष्टा ने स्वयं की है। वह त्वष्टा ब्रह्मा के चार मुखों वाले हैं।

इति श्रीकालहस्तिमुनि प्रणीत श्रीविश्वकर्मपुराणे ब्रह्माण्डादि वर्णनं नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ 15 ॥

इस प्रकार कालहस्ति मुनि द्वारा प्रणीत श्रीविश्वकर्मपुराण में ब्रह्माण्डादि वर्णन नामक पन्द्रहवाँ अध्याय पूरा हुआ।

अथ षोडशोऽध्यायः ॥ 16 ॥

मुनि उवाच —

अनन्तमद्भुतं चैव तमन्दस्तारकस्तथा।
अण्डजो भिन्नजश्चैव भिन्नायत्तस्तः परम् ॥ 1 ॥
अभ्यान्तश्च अनभ्यान्त अनीरण मनीरणौ।
मन्वारणयुगश्चैव विश्वारण मतः परम् ॥ 2 ॥
विश्वसृष्टिः कृतस्त्रेता द्वापरश्च कलिस्तथा।
अष्टादशयुगा ह्येते निर्मिता विश्वकर्मणा ॥ 3 ॥

मुनि कालहस्ति बोले— भगवान् विश्वकर्मा ने कालक्रमानुसार अठारह युगों को परिकल्पित कर उनकी रचना की है। ये युग हैं— 1. अनन्तयुग 2. अद्भुतयुग 3. तमन्दयुग 4. तारकयुग, 5. अण्डजयुग, 6. भिन्नजयुग, 7. भिन्नायत्तयुग, 8. अभ्यान्तयुग, 9. अनभ्यान्तयुग, 10. अनीरणयुग, 11. मनीरणयुग, 12. मन्वारणयुग, 13. विश्वारणयुग 14. विश्वसृष्टियुग, 15. कृतयुग, 16. त्रेतायुग, 17. द्वापरयुग और 18. कलियुग।

महायुगानां पूर्वस्मिन् विश्वकर्मा निराकृतिः।
सृष्टिर्विसृज्यते तेन निराकारेण कुत्रचित् ॥ 4 ॥

उपर्युक्त महायुगों के पूर्व अर्थात् आरम्भिक काल में विश्वकर्मा नामक शक्ति सर्वथा निराकार रही। उस निराकार शक्ति से ही यह विचित्र (साकार) सृष्टि हुई है।

साकारो विश्वकर्मासौ एकैकस्मिन् महायुगे।
बभूव पृथगाकारो सर्वानेवा सृजद्विभुः ॥ 5 ॥

एक-एक महायुग में भगवान् विश्वकर्मा अलग-अलग स्वरूप धारण करते हैं।[१] इस तरह वह प्रभु सभी की रचना करने वाले हैं।

गताः कृतयुगात्पूर्वं चतुर्दश महायुगाः।
कल्पिता भिन्नरूपेण प्रत्येकं विश्वकर्मणा ॥ 6 ॥

---

१. यहाँ भगवान् विश्वकर्मा के अवतार लेने का मत प्रवर्तित हुआ है। पुराणों में ब्रह्मा, विष्णु, शिव और देवियों के बहुविध अवतारों का सन्दर्भ मिलता है।

विगत कृतयुग से पूर्व विश्वकर्मा द्वारा चौदह महायुगों को रचा गया और प्रत्येक में भिन्न-भिन्न रूपों को धारण किया गया।

अनन्ताख्ये युगे येन प्रथमे विश्वकर्मणा।
ओङ्कारयुक्तरूपेण गायत्री जनिता पुरा॥ 7॥
तस्मिन् देवयुगे तस्याः सर्वे देवाः सुरर्षयः।
जातास्सन्तः प्रवर्तन्ते चोदिता विश्वकर्मणा॥ 8॥

अनन्त नामक पहले युग में उन विश्वकर्मा ने प्रणवाक्षर ओंकार सहित गायत्री[१] मन्त्र की रचना की थी। उस देवयुग में विश्वकर्मा ने गायत्री से समस्त देवताओं, देवर्षियों को प्रकट किया था।

चिदानन्दस्वरूपेण अद्भुताख्य महायुगे।
प्रथमं जनिता वेद पर्वता विश्वकर्मणा॥ 9॥
वेदसूक्तेषु सर्वेषु देवास्तस्मिन् महायुगे।
जातास्ते च प्रवर्तन्ते निर्मिता विश्वकर्मणा॥ 10॥

अद्भुत नामक द्वितीय महायुग में विश्वकर्मा चिदानन्द स्वरूप हुए, उन्होंने पहले वेद और पर्वतों की रचना की थी। उसी युग में वेदों के सूक्तों में समस्त देवताओं को विश्वकर्मा ने उत्पन्न किया था।

परमज्योतिः स्वरूपेण तमन्दाख्य महायुगे।
प्रथमं जनिता शक्तिः कपाली विश्वकर्मणा॥ 11॥
शक्ते कपालरक्तस्य बिन्दुभिः सर्वदेवताः।
जायमानाः प्रवर्तन्ते रक्षिता विश्वकर्मणा॥ 12॥

तृतीय तमन्द नामक महायुग में विश्वकर्मा परमज्योति स्वरूप हुए। इस युग में उन्होंने कपाली नामक महाशक्ति को उत्पन्न किया। उस शक्ति के कपाल रक्त बिन्दुओं से समस्त देवताओं की सृष्टि की और उनकी सुरक्षा भी विश्वकर्मा ने ही की।

परब्रह्मस्वरूपेण तारकाख्य महायुगे।
पञ्चब्रह्म चयं जातं प्रथमं विश्वकर्मणा॥ 13॥

---

१. ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्॥ (शुक्ल यजुर्वेद 36, 3)

शिवोमूर्तिर्मूर्तिमामश्च कर्ता कर्मेति संस्थिता:।
ब्रह्माण: पञ्च शाखासु विश्वकर्मतरोरिमे॥ 14॥
पञ्चब्रह्मसु सर्वेऽपि युगे तस्मिन् सुरादय:।
जायमाना: प्रवर्तन्ते रक्षिता विश्वकर्मणा॥ 15॥

तारक नामक चौथे महायुग में वह परब्रह्मस्वरूप हुए। उस युग में विश्वकर्मा ने प्रथम पंचब्रह्म की सृष्टि की थी। इनमें शिव, अमूर्ति, मूर्ति, कर्ता और कर्म— ये पाँच ब्रह्म हैं जो पूर्ववर्णित विश्वकर्मा-वृक्ष की पाँच शाखाओं के रूप में हुए। उस युग में पंच ब्रह्म से ही सभी देवतादि गण सम्भव हुए और वे सब भगवान् विश्वकर्मा द्वारा रक्षित है।

विराड्रूपो विश्वकर्मा भिन्नजाख्य महायुगे।
स्वयं परंशिवो भूत्स पञ्चवक्त्रस्त्रिलोचन:॥ 16॥
तस्माद् बभूवुस्ते रुद्रास्तेषु सर्वे सुरादय:।
जायमाना: प्रवर्तन्ते पुरा तस्मिन् महायुगे॥ 17॥

इसी प्रकार भिन्नज नामक महायुग में विश्वकर्मा विराट रूप के धारक हुए और स्वयं पाँच मुख और तीन नेत्र वाले होकर परमशिव कहलाए। उस महायुग में उन परमशिव से एकादश रुद्रों[१] की सृष्टि हुई और उनसे समस्त देवताओं की उत्पत्ति हुई।

विश्वरूपो विश्वकर्मा भिन्नायत्त महायुगे।
स्वयं विष्णुर्बभूवासौ श्रीवत्साङ्कश्चतुर्भुज:॥ 18॥
तस्मिन् युगे भवत्सृष्टि: समस्ता विष्णुमायया।
विश्वकर्मा सृजत्सर्वान् विष्णुरूपेण भूपते॥ 19॥

---

१. एकादश रुद्रों के नाम हैं—अजैकपादहिर्बुध्न्यो विरूपाक्षोऽथ रैवत:। हरश्च बहुरूपश्च त्र्यम्बकश्च सुरेश्वर:॥ सावित्रश्च जयन्तश्च पिनाकी चापराजित:। ऐते रुद्रा: समाख्याता: एकादश गणेश्वरा:॥ (मत्स्यपुराण 5, 29-30; 171, 38-39; शारदातिलक की पदार्थादर्शटीका में नामों का भेद और क्रम इस प्रकार आया है— हरश्च बहुरूपश्च त्र्यम्बकश्चापराजित:। वृषाकपिश्च शम्भुश्च कपर्दी रैवतस्तथा। मृगधाधश्च शर्वश्च कापालीति शिवा मता:॥ (शारदातिलक 1, 92) ब्रह्माण्डपुराण में भी नामों में भेद मिलता है— अङ्गारकं तथा सर्पं निर्ऋतिं सदसत्पतिम्॥ अजैकपादहिर्बुध्न्यौ द्वावेकं च ज्वरं तथा। भुवनं चेश्वरं मृत्युं कपालीति च विश्रुतम्॥ देवानेकादशैतांस्तु रुद्रांस्त्रिभुवनेश्वरान्। (ब्रह्माण्ड. मध्यभाग 3, 70-72)

इसी क्रम से भिन्नायत नामक महायुग में विश्वकर्मा विश्वरूप के रूप में थे। वह स्वयं श्रीवत्सांक (जिनके वक्ष में श्रीवत्स नामक चिह्न धारण किया गया हो) और चार भुजा वाले विष्णु हुए। हे राजन्! उस युग में समस्त सृष्टि विष्णुमाया से सम्भव हुई और विश्वकर्मा ने विष्णु बनकर समस्त लोकों की सृष्टि की थी।[१]

एकरूपो विश्वकर्मा अभ्यान्ताख्य महायुगे।
ब्रह्माणमसृजत्पूर्वं तेन सृष्टिरजायत॥ 20॥

इसके बाद, अभ्यान्त नामक महायुग में एकरूप-अद्वितीय विश्वकर्मा हुए। उन्होंने पहले ब्रह्मा की रचना की और फिर उनसे समस्त सृष्टि सम्भव हुई।

महाभ्यान्ते परशिवो विश्वकर्मा महायुगे।
इन्द्रमेवासृजत्पूर्वं स सर्वान् समकल्पयत्॥ 21॥

महाभ्यान्त नामक महायुग में विश्वकर्मा परशिव के नाम से हुए। उस युग के प्रारम्भ में इन्द्र की सृष्टि हुई जिनसे समस्त लोकों को परिकल्पित किया है।

विश्वकर्मा महादेवो अनीकरण महायुगे।
सूर्यमेवासृजत्पूर्णं सूर्यः सर्वानजीजनत्॥ 22॥

अनीकरण महायुग में विश्वकर्मा महादेव के रूप में थे। उस युगावधि के आरम्भ में सूर्य की सृष्टि हुई। बाद में सूर्य ने समस्त सृष्टि की।

मनीरणयुगे देवो मनुरूपेण चेश्वरः।
समस्त सृष्टिमकरोद्भत्वासौ विश्वकर्मणि॥ 23॥

मनीकरण नामक युग में देवेश्वर विश्वकर्मा मनु के रूप में हुए। विश्वकर्मारूप उन मनु से समस्त सृष्टि का विकास हुआ।

मन्वारण युगे विष्णुः सम्भूतो विश्वकर्मणि।
असृजन्मये रूपेण सर्वान् लोकांश्चतुर्भुजः॥ 24॥

मन्वारण नामक महायुग में विश्वकर्मा विष्णु के रूप में उत्पन्न हुए। उस काल में मय के रूप में चतुर्भुज विष्णु ने सभी लोकों की सृष्टि की।

विश्वारण युगे देवो ब्रह्मातत्वष्टुरूपकः।
स सृष्टिमकरोत्पूर्वं भूत्वासौ विश्वकर्मणि॥ 25॥

---

१. या देवि सर्वभूतेषु विष्णुमायेति संस्थिताः। (मार्कण्डेयपुराणोक्त सप्तशती)

इसी प्रकार विश्वारण नामक युग में देव विश्वकर्मा ब्रह्मा के रूप में हुए। उनसे पहले त्वष्ट्र के स्वरूप में विश्वकर्मा ने सृष्टि का विकास किया।

सर्वदेवमयः सूर्यो भूत्वा विश्वज्ञरूपकः।
चतुर्युगेष्वसौ भाति विश्वकर्मणि च प्रभुः ॥ 26 ॥

सर्वदेवमय सूर्य विश्वकर्मा विश्वज्ञ के रूप में उत्पन्न होकर कृत, त्रेता, द्वापर और कलयुग— इन चारों युगों में सृष्टि के प्रभु बनकर प्रकाशमान हुए।

इति श्रीकालहस्तिमुनि प्रणीत श्रीविश्वकर्मपुराणे अष्टादशयुगानुसारे विश्वकर्मावतार वर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः ॥ 16 ॥

इस प्रकार कालहस्ति मुनि द्वारा प्रणीत श्रीविश्वकर्मपुराण में अठारह युगानुसार विश्वकर्मा अवतार वर्णन नामक सोलहवाँ अध्याय पूरा हुआ।

अथ सप्तदशोऽध्यायः ॥ 17 ॥

मुनि उवाच —

भूत्वासौ कश्यपब्रह्मा विश्वकर्मा कृते युगे।
जनयामास पत्नीषु स्वस्य स्थावर जङ्गमान्॥ 1 ॥

मुनि कालहस्ति ने आगे कहा — भगवान् विश्वकर्मा ने कृतयुग में कश्यप ब्रह्मा का रूप धारण कर अपनी पत्नियों से स्थावर-जंगम लोक की सृष्टि की।

सुव्रतोवाच —

यासुयान् जनयामास पुत्रान् कश्यप तापसः।
तान् मे कालहस्तीश! ब्रूवतां पुरुषर्षभ!॥ 2 ॥

यह सुनकर राजा सुव्रत बोले— हे कालहस्तीश! हे महातपस्वी! उन कश्यप ने अपनी कौन-कौन सी पत्नी से किस-किस को जन्म दिया है? यह मुझे समझाइयेगा।

मुनि उवाच —

बृहती च दितिश्चैव अदितिः कद्रू नामिका।
विनताश्च प्रभादेवी ततः कुमुदिनी तथा॥ 3 ॥
स्वर्णप्रभा कालदण्डी मेघदण्डी तथैव च।
धातुप्रभा महादेवी ततस्तु कुसुमावली॥
पार्वन्दी कश्यपस्तैताः पत्नयस्तु त्रयोदश॥ 4 ॥

मुनि कालहस्ति बोले— उन कश्यप की तेरह पत्नियाँ थीं। क्रमशः उनके नाम हैं— 1. बृहती, 2. दिति, 3. अदिति, 4. कद्रू, 5. विनता, 6. प्रभादेवी, 7. कुमुदिनी, 8. स्वर्णप्रभा, 9. कालदण्डी, 10. मेघदण्डी, 11. धातुप्रभा 12. कुसुमावली तथा 13. पार्वन्दी।[१]

---

१. मत्स्यपुराण में नाम इस प्रकार आए हैं— आदितिर्दितिर्दनुश्चैव अरिष्टा सुरसा तथा॥ सुरभिर्विनता तद्वत्ताम्रा क्रोधवशा इरा। कद्रूर्विश्वा मुनिस्तद्वत्तासां पुत्रान् निबोधत॥ (मत्स्यपुराण 6, 1-2) ब्रह्माण्डपुराण में चौदह दक्षकन्याओं के नाम आए हैं। नामों का क्रम हैं— अदिति, दिति, दनु, काष्ठा, अरिष्टा, आयु, खश, सुरभि, विनता, ताम्रा, मुनि, क्रोधवशा, इरा और नागमाता कद्रू— अदितिर्दितिर्दनुः काष्ठारिष्टानायुः खशा तथा।

स सर्वजनकस्तासु विचित्रवीर्य समन्वितः।
कश्यपो जनयामास जगत् स्थावर-जङ्गमम्॥ 5॥

समस्त लोक के पिता वह कश्यप एक विचित्रवीर्य शक्ति से समन्वित हुए। उन्होंने ही अपनी इन सभी पत्नियों से समस्त स्थावर-जंगम जगत की सृष्टि की है।[१]

विश्वानर तनूजातः अग्निर्वैश्वानरः स्वयम्।
अग्निगर्भे समुद्भूतः कश्यपः शङ्करः स्वयम्॥ 6॥

यह जानना चाहिए कि विश्वानर के पुत्र वैश्वानर अग्नि कहलाए। उस अग्निगर्भ से शिव स्वयं कश्यप के नाम से अवतरित हुए।

स्वयं मयः शङ्करांशो विश्वकर्मैव स स्वयम्।
मनुः कश्यपरूपेण अग्निगर्भोदभूत्प्रभो॥ 7॥

हे राजन्! उन शंकर के अंश ही मनु हुए जो साक्षात् विश्वकर्मा थे। उन मनु ने कश्यप के रूप में अग्नि के गर्भ से जन्म लिया।

यस्मात् कृशानुरेतास्तु भूत्वा शम्भुर्मनुः स्वयम्।
कश्यपस्य च जायासु बृहती प्रथमा वधूः॥ 8॥

अग्नि के रेतस् के रूप में शम्भु स्वयं ही मनु हुए। ऐसे वे कश्यप हुए। उनकी पत्नियों में पहली बृहती नामक भार्या हुई।

तद्गर्भे पृथिवीजाता तारास्ते कुलपर्वताः।
द्वितीयाया द्वितेर्गर्भे कश्यपस्य महौजसः॥ 9॥
पञ्चाशत्कोटि दैत्यास्ते जाता क्रूरपराक्रमाः।
त्रयत्रिंशत्कोटि देवाः कश्यपस्य महामुने॥ 10॥
अदितेर्गर्भ सम्भूता इन्द्रोपेन्द्रार्यमादयः।
तानुपेन्द्रो महाभीतेः क्रव्यादानां स रक्षति॥ 11॥

सुरभिर्विनता ताम्रा मुनिः क्रोधवशा तथा॥ कद्रूर्माता च नागानां प्रजास्तासां निबोधत। (ब्रह्माण्ड. मध्यभाग, 3, 56-57)

१. यह समस्त विवरण ब्रह्माण्ड, मत्स्यादि पुराणों में विस्तार से आया है। ब्रह्माण्ड पुराण के मध्यभाग में अध्याय तृतीय से आगे तक यह समस्त वर्णन बहुत विस्तार के साथ देखा जा सकता है।

उस प्रथम पत्नी बृहती के गर्भ से इस लोक में पृथ्वी, तारे और कुलपर्वतों की उत्पत्ति हुई। महौजस कश्यप की दूसरी पत्नी दिति के गर्भ से पचास करोड़ दैत्यों की उत्पत्ति हुई जो क्रूर पराक्रम के धनी थे। इसी प्रकार कश्यप की तीसरी पत्नी अदिति के गर्भ से तैंतीस कोटि देवताओं की उत्पत्ति हुई जिनमें इन्द्र, उपेन्द्र, सूर्यादि मुख्य हैं। उन देवताओं में उपेन्द्र (विष्णु स्वरूप) राक्षसों के आतंक से देवगणों की रक्षा करते हैं।

अनन्तः शङ्खपालाश्च शेष वासुकि तक्षकाः।
नागा नवकुलोत्पन्ना कद्रूगर्भ समुद्भवाः ॥ 12 ॥

इसी प्रकार अनन्त, शंखपाल, शेष, वासुकि, तक्षक आदि नवकुली नाग कश्यप की चौथी पत्नी कद्रू से उत्पन्न हुए।

सौदामिनी वज्रघोषा अरुणोर्गरुडः खगाः।
विनतागर्भ सम्भूताः कश्यपाश्च महात्मनः ॥ 13 ॥

विद्युत, वज्रघोषा (बिजली की कड़कड़ाहट) और अरुण एवं गरुड़ जैसे पक्षीगण महात्मा कश्यप की पाँचवीं पत्नी विनता के गर्भ से उत्पन्न हुए।

अनर्घ नवरत्नानि ग्रहनक्षत्रतारकाः।
केचित्प्रभागर्भजाता कश्यपाश्च महात्मानः ॥ 14 ॥

अमूल्य नवरत्न और कुछ ग्रह, नक्षत्र तथा तारागण महात्मा कश्यप से प्रभादेवी के गर्भ से उत्पन्न हुए।

तस्य सप्तमजायायां कुमुदिन्यां च जज्ञिरे।
दिग्दन्तिनो हयाश्चैव मृगसिंहादि जन्तवः ॥ 15 ॥

उन कश्यप की सातवीं पत्नी कुमुदिनी के गर्भ से दिग्गज (महादाँत वाले हाथी), घोड़े, मृग और सिंहादि जन्तुओं की उत्पत्ति हुई।

स्वर्णप्रभायामष्टम्यां स्वर्णादिर्लोहसञ्चयः।
चिन्तामणिः स्पर्शवेदी जातास्तस्य यथाक्रमम् ॥ 16 ॥

इसी प्रकार आठवीं पत्नी स्वर्णप्रभा के गर्भ से सुवर्ण आदि धातुओं का संग्रह हुआ और इच्छाओं को पूर्ण करने वाली चिन्तामणि और स्पर्शवेदी की उत्पत्ति हुई।

नवम्यां कालदण्डयान्तु ऋषयश्च तपोधनाः।
सार्धत्रिकोट्यो जातास्ते सर्वे कश्पात्प्रभो ॥ 17 ॥

महात्मा कश्यप की नौंवी पत्नी कालदण्डी से तपोधन ऋषियों का जन्म हुआ। उनकी संख्या साढ़े तीन कोटि थी।

दशम्यां मेघदण्डयान्तु पुष्करावर्तकादयः।
मेघाश्चैत्ररथो जाता कश्यपस्य वनानि च॥ 18॥

कश्यप मुनि की दसवीं पत्नी मेघदण्डी के गर्भ से पुष्करावर्तक आदि बादल, चैत्ररथ जैसे वनारण्य की उत्पत्ति हुई।

जाता धातुप्रभागर्भे मत्स्यकूर्मतिमिङ्गिलाः।
सञ्जाताः कुसुमावल्यां कल्पवृक्षाश्च कामधुक्॥ 19॥

धातुप्रभा नामक ग्यारहवीं पत्नी के गर्भ से मछलियाँ, घड़ियाल, तिमिंगल (बृहद्मच्छ) आदि का जन्म हुआ। कुसुमावली नामक बारहवीं पत्नी के गर्भ से कल्पवृक्ष और कामधेनु की उत्पत्ति हुई।

त्रयोदश्यां तु पार्वन्द्यां सञ्जाताः कश्यपस्य वै।
पर्वताश्चोषधीयुक्ता अशेष कुलपर्वताः॥ 20॥

कश्यप की तेरहवीं पत्नी पार्वन्दी के गर्भ से औषधियों से लदे रहने वाले पर्वतों और अन्य कुलपर्वतों की उत्पत्ति हुई।

तासां कश्यप पत्नीनां प्रसूति मलसम्भवाः।
क्षुद्राश्च कृमिकीटाद्याः सकल प्राणिकोटयः॥ 21॥

इसके अतिरिक्त महात्मा कश्यप की उप पत्नियों के प्रसवकाल में जो मल प्रवाहित हुआ, उससे छोटे-छोटे कृमि, कीट इत्यादि समस्त प्राणिवर्ग की उत्पत्ति हुई।

स तस्माल्लोकजनकः कश्यपोभून्मनुः स्वयम्।
यस्माल्लोके कश्यपस्य सन्ततिर्वर्त्तते प्रभो॥ 22॥

हे राजन्! यह सारी सृष्टि चूंकि महात्मा कश्यप की सन्तति है, अतएव समस्त लोक के जनक कश्यप ही कहे गए हैं।

इति श्रीकालहस्तिमुनि प्रणीत श्रीविश्वकर्मपुराणे काश्यपीयसृष्टि वर्णनं नाम सप्तदशोऽध्यायः॥ 17॥

इस प्रकार कालहस्ति मुनि द्वारा प्रणीत श्रीविश्वकर्मपुराण में काश्यपीय सृष्टि वर्णन नामक सत्रहवाँ अध्याय पूरा हुआ।

अथाष्

मुनि उवाच —

कालमानं प्रवक्ष्यामि
सूर्यस्य रथवेगेन ज्ञा

मुनि कालहस्ति ने अ
में यथातथ्य कहता हूँ। हे रा
निश्चयकर जानना चाहिए।

सूच्या सूक्ष्माग्रया प
यदा शतं लवस्ताश्च

सूई की नोक से कमल
को 'त्रुटि' कहा जाता है। वैसे
तीस लवों का समय 'निमेष'

अष्टादश निमेषास्तु
त्रिंशत्काष्ठाः कला

ऐसे अठारह[२] निमेष के
की तरह तीस काष्ठों का समय

१. ज्योतिषीय ग्रन्थों में यह मत आ
भवेद्रेणुः रेणुषष्ट्या लवं स्मृतम्
विनाडी स्यात्तत्षष्ट्या नाडिक
(बृहद्दैवज्ञरञ्जनम् 3, 4-6; स्
कमलदलनतुल्यः काल उत्कस्
(4 1/2) भिस्तैर्गुर्विहैवाक्षरं तत्
षडसवो घटिका पलानां षष्
(30)भिरथाब्दमिना (12)हतः
मध्यगत्यधिकार 7-8)
२. वायु आदि पुराणों में पन्द्रह निमे
है- काष्ठानिमेषा दशपञ्च चैव
मुहूर्तास्त्रिंशता रात्र्यहनी समेते॥
कला, 30 कला = 1 मुहूर्त, 30

अथाष्टादशोऽध्यायः ॥ 18 ॥

मुनि उवाच —

कालमानं प्रवक्ष्यामि यत्तथ्यं शृणु सुव्रत।
सूर्यस्य रथवेगेन ज्ञातव्यं निश्चयं नृप॥ 1 ॥

मुनि कालहस्ति ने आगे कहा— हे सुव्रत! अब मैं कालमान के सम्बन्ध में यथातथ्य कहता हूँ। हे राजन्! इस मान को सूर्य के रथ के वेग के अनुसार निश्चयकर जानना चाहिए।

सूच्या सूक्ष्माग्रया पद्मदल भेदस्त्रुटिर्भवेत्।
यदा शतं लवस्ताश्च लवास्त्रिंशन्निमेषकः॥ 2 ॥

सूई की नोक से कमलपत्र को छेदने में जितना समय लगता है, उस काल को 'त्रुटि' कहा जाता है। वैसे ही सौ त्रुटियों के काल को 'लव' कहा जाता है। तीस लवों का समय 'निमेष' के नाम से जाना जाता है।[१]

अष्टादश निमेषास्तु काष्ठाख्यः काल उच्यते।
त्रिंशत्काष्ठाः कला ज्ञेया निःश्वासोच्छवास्सम्मिताः॥ 3 ॥

ऐसे अठारह[२] निमेष के काल को काष्ठा कहा जाता है। निःश्वास-उच्छ्वास की तरह तीस काष्ठों का समय एक 'कला' के बराबर कहा जाता है।

---

१. ज्योतिषीय ग्रन्थों में यह मत आया है— सूच्या भिन्ने पद्मपत्रे त्रुटिरित्यभिधीयते॥ तत्षष्ट्या च भवेद्रेणुः रेणुषष्ट्या लवं स्मृतम्। तत्षष्ट्या लेशकं प्रोक्तं तत्षष्ट्या प्राणमुच्यते॥ षष्टिप्राणैः विनाडी स्यात्तत्षष्ट्या नाडिका स्मृता। नाडीषष्ट्या तु नाक्षत्रमहोरात्रं प्रकीर्तितम्॥ (बृहद्दैवज्ञरञ्जनम् 3, 4-6; सूर्यसिद्धान्त 1, 11-12) वटेश्वरसिद्धान्त का मत है— कमलदलनतुल्यः काल उक्तस्त्रुटिस्तच्छमिह लव संज्ञस्तच्छतं स्यान्निमेषः। सदलजलधि ($4^{1/2}$) भिस्तैर्गुर्विहैवाक्षरं तत्कृत परिमितकाष्ठाः तच्छरार्धेन ($^{5/2}$)वासुः॥ आर्क्षं पलं षडसवो घटिका पलानां षष्ट्या दिनं च घटिकाः खलु षष्टिरह्नाम्। मासः खवह्नि (30)भिरथाब्दमिना (12)हतः सः क्षेत्रं च कालसदृशावयं विनासुम्॥ (वटेश्वरसिद्धान्त मध्यगत्यधिकार 7-8)

२. वायु आदि पुराणों में पन्द्रह निमेष के काल को काष्ठा कहा गया है। वायुपुराण में आया है— काष्ठानिमेषा दशपञ्च चैव त्रिंशच्च काष्ठा गणयेत्कलान्तरम्। त्रिंशत्कलाश्चैव भवेत् मुहूर्तस्तैस्त्रिंशता रात्र्यहनी समेते॥ इसका अर्थ है कि 15 निमेष = 1 काष्ठा, 30 काष्ठा = 1 कला, 30 कला = 1 मुहूर्त, 30 मुहूर्त = एक अहोरात्र माना गया है। (वायुपुराण 50,

षड्भिः प्राणैर्विनाडीस्यात्ताश्च षष्ठिस्तु नाडिका।
नाडीद्वयं मुहूर्तस्तु यामस्तेषां चतुष्टयम्॥ 4॥

वैसे ही छह उच्छ्वासों-निःश्वासों के बराबर एक 'विनाड़ी' होती है। साठ विनाड़ी के बराबर एक 'नाड़िका' होती है। वैसे ही दो घटी के काल को 'मुहूर्त' नाम दिया गया है। चार मुहूर्तों के बराबर एक 'याम' (प्रहर) होता है।

यामाष्टकमहोरात्रं दिनमेकं समांशकम्।
दशपञ्च दिनानां समूहः पक्ष सञ्ज्ञितः॥ 5॥

आठ याम के बराबर समान भाग से एक 'अहोरात्र' (दिन-रात) कहा जाता है। पन्द्रह दिनों के समूह को 'पक्ष' (पखवाड़ा) नाम दिया गया है।

पक्षद्वयं मासमेकः ऋतुर्मासद्वयं भवेत्।
ऋतुत्रयं तदयनं तद्वयं वत्सरो भवेत्॥ 6॥

दो पखवाड़ों के समय को एक मास कहा जाता है जबकि दो मास के बराबर एक ऋतु होती है। तीन ऋतुओं से एक अयन होता है और दो अयनों से एक वर्ष होता है।

---

169) मुहूर्त का प्रकारान्तर से एक और विभाजन वायुपुराणकार ने इस प्रकार किया है– 15 निमेष = 1 काष्ठा, 30 काष्ठा = 1 कला, 30 कला = 1 मुहूर्त, 82 कला = 1 मात्रा, 99, 36, 62, 23 मात्रा = चला, 40 हजार 870 या 890 मात्रा = विद्युति, 400 विद्युत = सरांश या नलिका। (वायुपुराण 50, 179-182)

भागवतपुराण में प्रकारान्तर से गणना की गई है। सूर्य की रश्मियाँ गृह के गवाक्ष में जब प्रवेश करती है तो उस प्रकाश में दिखाई देने वाले सूक्ष्मकण का छठवाँ अंश परमाणु कहा जाता है। तीन त्रसरेणुओं को पार करने में सूर्य को जितना समय लगता है, वह त्रुटि हैं, इससे सौ गुना काल वेध कहा जाता है तथा तीन वेध का एक लव होता है। तीन लव को एक निमेष एवं तीन निमेष को एक क्षण कहा जाता है। पाँच क्षण 1 काष्ठा के बराबर, 15 काष्ठा 1 लघु, 15 लघु की एक नाडिका अथवा दण्ड और दो नाडी का 1 मुहूर्त माना जाता है। इसी क्रम से 6 नाडी का 1 प्रहर, 8 प्रहर की दिन-रात, 15 अहोरात्र का 1 पक्ष व दो पक्षों का 1 मास कहा गया है– अणुर्द्वौ परमाणु स्यात्त्रसरेणुस्त्रयः स्मृतः। जालार्करश्म्यवगतः खमेवानुपतन्नगात्॥ त्रसरेणुत्रिकं भुङ्क्ते यः कालः स त्रुटि स्मृतः। शतभागस्तु वेधः स्यात्तैस्त्रिभिस्तु लवः स्मृतः॥ निमेषस्त्रिलवो ज्ञेय आम्नातस्ते त्रयः क्षणः। क्षणान् पञ्च विदुः काष्ठां लघु ता दश पञ्च च॥ (भागवत. 3, 11, 5-7)

भास्कराचार्य प्रणीत लीलावती में समय की यह गणना कुछ विस्तार के साथ दी गई है– 18 निमेष = एक काष्ठा, 30 काष्ठा = एक कला, 30 कला = एक क्षण, 12 क्षण = एक मुहूर्त, 30 मुहूर्त = साठ घड़ी (24 घण्टे) (लीलावती, बनारस संस्करण, पृष्ठ 4)

द्वात्रिंशद्वर्षसाहास्त्रैश्चातुर्लक्ष
कलैर्युगस्य द्विगुणो द्वापर
त्रेतायुगस्तत्त्रिगुणः कृतश्च
तेषां चतुर्णां पर्यास्तं महायु

चार लाख बत्तीस हजार (4, है। उक्त कलयुग के वर्षों के प्रमाण कलयुग का तीन गुना (12, 96000 कृत या सतयुग (17, 28000) होत 'महायुग' नाम दिया गया है। (यह है)।

मन्वन्तरं तु विज्ञेयं युगान
स इन्द्रप्रलयो ज्ञेयः सप्तर्ष
मन्वन्तराणामेतेषां स क
लयो भवति कल्पान्ते स्

ऐसे 71 महायुगों को मिल इन्द्र का प्रलय काल जानना चा अर्थात् इन्द्र या सप्तर्षि बदल जाते का प्रमाण होता है। कल्पान्त में सू

महाकल्पं तु कल्पानां
महाकल्पशतस्यान्ते ब्रह

---

१. सिद्धान्तशिरोमणि में आया है– (2) भू (1) गुणैः क्रमेण सूर्य त्रेतामानं (12, 96000) द्वा ससन्ध्यकास्तदंशकैर्निजार्कभाग (मध्यमाधिकार 21-22)

२. सूर्यसिद्धान्तकार का मत है कि 71 ब्रह्मा का एक दिन 14 मन्वन्तरों (17, 28000) के बराबर सन्धि युगानां सप्ततिः सैका मन्वन्तरमि (सूर्यसिद्धान्त मध्यमाधिकार, 18

द्वात्रिंशद्वर्षसाहास्त्रैश्चातुर्लक्षं कलेर्युगम्।
कलैर्युगस्य द्विगुणो द्वापरश्चाब्द मानतः॥ 7॥
त्रेतायुगस्तत्रिगुणः कृतश्चस्याच्चतुर्गुणः।
तेषां चतुर्णां पर्यासं महायुगमितिरितम्॥ 8॥

चार लाख बत्तीस हजार (4, 32000) वर्षों के बराबर कलयुग माना गया है। उक्त कलयुग के वर्षों के प्रमाण से दुगुना (8, 64000) द्वापर युग होता है। कलयुग का तीन गुना (12, 96000) त्रेतायुग होता है और कलयुग का चौगुना कृत या सतयुग (17, 28000) होता है।[१] उन चारों ही युगों के सम्पूर्ण काल को 'महायुग' नाम दिया गया है। (यह प्रमाण सन्धि और सन्ध्यांश सहित कहा गया है)।

मन्वन्तरं तु विज्ञेयं युगानामेकसप्ततिः।
स इन्द्रप्रलयो ज्ञेयः सप्तर्षीणां तथैव च॥ 9॥
मन्वन्तराणामेतेषां स कल्पः स्याच्चतुर्दश।
लयो भवति कल्पान्ते सूर्याचन्द्रमसौर्भुवः॥ 10॥

ऐसे 71 महायुगों को मिलाकर एक 'मन्वन्तर' कहा जाता है।[२] उसको इन्द्र का प्रलय काल जानना चाहिए। वैसे ही सप्तर्षि प्रलय भी कहा जाता है अर्थात् इन्द्र या सप्तर्षि बदल जाते हैं। ऐसे 14 मन्वन्तर के पूर्ण होने पर एक कल्प का प्रमाण होता है। कल्पान्त में सूर्य-चन्द्रमा और पृथ्वी का प्रलय होता है।

महाकल्पं तु कल्पानां षष्ट्युत्तर शतत्रयम्।
महाकल्पशतस्यान्ते ब्रह्मप्रलयं उच्यते॥ 11॥

---

१. सिद्धान्तशिरोमणि में आया है— खखाभ्रदन्तसागरै (432000) र्युगा (4) ग्नि (3) युग्म (2) भू (1) गुणैः क्रमेण सूर्यवत्सराः कृतादयो युगाङ्घ्रयः॥ कृतमानं (17, 28000) त्रेतामानं (12, 96000) द्वापरमानं (८, 64000) कलिः (4, 32000)। ससन्ध्यकास्तदंशकैर्निजार्कभाग सम्मितेः युताश्च तद्युतौ युगं रदाब्धयोऽयुताहताः॥ (मध्यमाधिकार 21-22)

२. सूर्यसिद्धान्तकार का मत है कि 71 महायुगों का एक मन्वतर होता है और एक कल्प यानी ब्रह्मा का एक दिन 14 मन्वन्तरों के बराबर होता है। एक मनु के उपरान्त कृतयुग के समय (17, 28000) के बराबर सन्धि काल होता है। इसमें संसार में जलप्लव होता है— युगानां सप्ततिः सैका मन्वन्तरमिहोच्यते। कृताब्दसंख्यास्तस्यान्ते सन्धिः प्रोक्तो जलप्लवः॥ (सूर्यसिद्धान्त मध्यमाधिकार, 18)

ऐसे 360 कल्पों के पूरा होने पर एक महाकल्प होता है। एक सौ महाकल्पों के पूर्ण होने पर 'ब्रह्मप्रलय' कहा जाता है।

इति श्रीकालहस्तिमुनि प्रणीत श्रीविश्वकर्मपुराणे कालप्रमाणं वर्णनं नामाष्टादशोऽध्यायः॥ 18॥

इस प्रकार कालहस्ति मुनि द्वारा प्रणीत श्रीविश्वकर्मपुराण में कालप्रमाण वर्णन नामक अठारहवाँ अध्याय पूरा हुआ।

अ

मुनि उवाच —

परमायुः स्व
चकार विश्

कालहस्ति मु
विश्वकर्मा ने ब्रह्मा की
है। उसको एक महा

ब्रह्मणः श
दिने कल्प

ब्रह्मा के आ
कहा जाता है। दो व
दिन होता है।

दिवा श्वेतव
रात्रौ यज्ञव

ज्ञानियों ने ब्र
है। रात्रि का समय '

चतुर्युग स
मन्वन्तरापि

---

१. ब्रह्मा की आयु के
100 वर्ष है। एक
रात्रि होती है। दो
कल्पो ब्राह्ममहः
आयुषोऽर्धमितं तस
वटेश्वर सिद्धान्त
(43, 20000)
मनुर्द्युनिशं च
ययुस्तथाऽर्धमासो
गुणाः (3179) श

अथैकोनविंशोऽध्यायः ॥ 19 ॥

मुनि उवाच —

परमायुः स्वमानेन ब्रह्मणः शतवत्सरान्।
चकार विश्वकर्मास्य तन्महायुगमुच्यते॥ 1॥

कालहस्ति मुनि ने आगे कहा— यह भी जानना चाहिए कि उन भगवान् विश्वकर्मा ने ब्रह्मा की परम-आयु उनके दिन के मान से सौ वर्षों की निर्धारित की है। उसको एक महायुग का नाम दिया गया है।[१]

ब्रह्मणः शतवर्षान्तं ब्रह्मा प्रलयं उच्यते।
दिने कल्पद्वयं प्रोक्तमहोरात्र समन्वितम्॥ 2॥

ब्रह्मा के आयु प्रमाण के जब सौ वर्ष पूरे हो जाते हैं तब ब्रह्मा का प्रलय कहा जाता है। दो कल्प जब पूरे होते हैं तब अहोरात्र से मिलकर एक ब्रह्मा का दिन होता है।

दिवा श्वेतवराहाख्यं कल्पं यद्ब्रह्मणो विदुः।
रात्रौ यज्ञवराहाख्यं तस्य कल्पमिति श्रुतम्॥ 3॥

ज्ञानियों ने ब्रह्मा के दिवस के काल को 'श्वेतवराह कल्प' के नाम से कहा है। रात्रि का समय 'यज्ञवराह कल्प' के नाम से सुना गया है।

चतुर्युग सहस्राणि ब्रह्मणे दिवमुच्यते।
मन्वन्तराणि तस्मिंश्च चतुर्दश दिवा भवेत्॥ 4॥

---

१. ब्रह्मा की आयु के लिए सूर्यसिद्धान्त का मत है कि ब्रह्मा के दिन के मान से उनकी परम आयु 100 वर्ष है। एक हजार महायुग का ब्रह्मा का कल्प संज्ञक दिन और एक कल्प के समान रात्रि होती है। दो कल्प का ब्रह्मा का अहोरात्र होता है— इत्थं युगसहस्रेण भूतसंहारकारकः। कल्पो ब्राह्ममहः प्रोक्तं शर्वरी तस्य तावती॥ परमायुः शतं तस्य तयाऽहोरात्रसङ्ख्यया:। आयुषोऽर्धमितं तस्य शेषकल्पोऽयमादिमः॥ (सूर्यसिद्धान्त मध्यमाधिकार 20-21)
वटेश्वर सिद्धान्त में ब्रह्मणः आयुपरिमाण के लिए कहा गया है— दन्ताब्धयोऽयुत हता (43, 20000) युगमर्क वर्षा दस्राद्रयो (72) युगगणा मनुरेक उक्तः। कल्पश्चतुर्दश मनुर्द्युनिशं च द्वौ कस्य स्ववर्षशतमत्र तदायुरुक्तम्॥ कजन्मनोऽष्टौ सदलाः समा ययुस्तथाऽर्धमासो मनवो दिनस्य षट्। युगत्रिवृन्दं (27) सद्दशाङ्घ्रयस्त्रयः कलेर्नवागैक गुणाः (3179) शकावधेः॥ (वटेश्वरसिद्धान्त मध्यगत्यधिकार 9-10)

यह जानना चाहिए कि हजार चतुर्युग के पूरे होने पर ब्रह्मा का एक दिन होता है। उसी दिन के समय में चौदह मन्वन्तर होते हैं।

स्वायम्भुवमनुः पूर्वं ततः स्वारोचिषो मनुः।
उत्तमस्तु तृतीयः स्याच्चतुर्थस्तामसो मनुः॥ 5॥
रैवतः पञ्चमश्चाक्षुषोथ वैवस्वतस्तथा।
अष्टमत्विन्द्रसावर्णिर्ब्रह्मसावर्णिकस्तथा॥ 6॥
दशमो विष्णुसावर्णि रुद्रसावर्णिकः स्मृतः।
दक्षसावर्णिकश्चैव क्रौञ्चिको भौ(रौ)चिकस्तथा॥ 7॥

ये चौदह मन्वन्तर क्रमशः निम्न होते हैं— 1. स्वायम्भुव मन्वन्तर, 2. स्वारोचिष मन्वन्तर, 3. उत्तम मन्वन्तर, 4. तामस मन्वन्तर, 5. रैवत मन्वन्तर, 6. चाक्षुष मन्वन्तर, 7. वैवस्वत मन्वन्तर, 8. इन्द्र सावर्णिक मन्वन्तर, 9. ब्रह्म सावर्णिक मन्वन्तर, 10. विष्णु सावर्णिक मन्वन्तर, 11. रुद्र सावर्णिक मन्वन्तर, 12. दक्ष सावर्णिक मन्वन्तर, 13. क्रौंच मन्वन्तर और 14. भौ (रौ?) चिक मन्वन्तर।[१]

सृष्टिकर्ताभवत्वष्टा विश्वकर्माज्ञया यतः।
आज्ञया मनवस्त्वष्टुः क्रमात्सृष्टिं सृजन्तिते॥ 8॥

भगवान् विश्वकर्मा की आज्ञा से सृष्टिकर्ता ब्रह्मा त्वष्टा होते हैं। उन त्वष्टा की आज्ञा से चौदहों मनु इस सृष्टि का क्रमानुसार सृजन करते हैं।

जलजा नवलक्षं तु स्थावरा लक्षविंशतिः।
कृमिश्चैकादशं लक्षं पक्षिणो दशलक्षकम्॥ 9॥
त्रिंशल्लक्षं पशुमृगाश्चतुर्लक्षं तु मानुषाः।
चत्वार्यशीतिर्लक्षं तु जीवास्ते मनुभिः कृताः॥ 10॥

उक्त चौदह मनुओं द्वारा सृष्टिकाल में 84 लाख जीव योनियाँ उत्पन्न हुईं।

---

१. अन्य पुराणों में यह क्रम है— स्वायम्भुव, इन्द्रसावर्णि, सावर्णि, ब्रह्मसावर्णि, दक्षसावर्णि, रुद्रसावर्णि, देवसावर्णि, धर्मसावर्णि, श्राद्धदेव, चाक्षुष, उत्तम तामस, स्वारोचिष, रैवत। भविष्यपुराण में नाम इस प्रकार हैं— स्वायम्भुव, स्वरोचिष, उत्तम, तामस, रैवत तथा चाक्षुष (ये छह मनु व्यतीत हो गए), वैवस्वत मनु (सम्प्रति), अर्क सावर्णि, ब्राह्म सावर्णि, रुद्र सावर्णि, धर्म सावर्णि, दक्ष सावर्णि, रौच्य और भौत्य मनु। ये भविष्यत् काल के मनु कहे गए हैं। (विष्णुपुराण, ब्रह्माण्डपुराण एवं भविष्यपुराण, ब्राह्मपर्व अध्या. 125)

इनमें से जल से जन्मे जीव 9 लाख प्रकार के हैं। स्थावर वर्ग (तृण, लता, औषधियाँ व द्रुमों को मिलाकर) के 20 लाख भेद हैं। कृमि आदि के 11 लाख भेद हैं। पक्षियों के भेद 10 लाख, मृगादि पशुओं के वर्ग 30 लाख हैं और मनुष्य आदि वर्ग के चार लाख भेद कहे गए हैं— इस प्रकार चौरासी लाख प्राणी योनियाँ हुईं।

सर्वेषामेव जन्तूनां शतमायुः प्रचक्षते।
तत्तदुच्छ्वास निःश्वास वशादायुः क्षयं भवेत्॥ 11॥

इन योनियों में समस्त प्राणियों की औसत आयु सौ वर्ष की हैं। वह आयु श्वास-प्रश्वास के छोड़ने से कारण स्वरूप क्षय होती है। इसलिए आयु न्यूनाधिक होती है।

शतमायुर्मनुष्याणां स्थावराणां सहस्त्रकम्।
षट्त्रिंशन्मृगजातीनां पशूनां त्रिंशदुच्यते॥ 12॥

मनुष्यों की आयु सौ वर्ष की होती है। पर्वतादि स्थावर जातियों की आयु हजार वर्ष, मृगादि वनविहारी पशुओं की आयु छत्तीस वर्ष और गाय-भैंस आदि पशुओं की आयु तीस वर्ष की निर्धारित की गई।

विंशत्यायु विहंगानां सर्पाणां तु सहस्त्रकम्।
सहस्त्रमायुः काकानां शतायुर्गजसिंहयोः॥ 13॥

पक्षियों के लिए बीस और सर्पों की आयु हजार वर्ष निश्चित की गई। कौओं की आयु हजार वर्ष और हाथी, सिंहादि की आयु सौ वर्ष निर्धारित की गई है।

भल्लूकवानराणाञ्च मण्डूकानां शतत्रयम्।
तथैव जलजन्तूनां सहस्त्रं च तटौकसाम्॥ 14॥

भालु, वानर और मेंढ़क की आयु तीन सौ वर्षों की तय की गई। इसी प्रकार अन्य जलाशयों में रहने वाले जलीय जन्तुओं की हजार वर्ष की आयु निर्धारित की गई।

गवामायुश्चतुर्विंशमुष्ट्रगार्धभयोरपि।
व्याघ्राणां तु चतुष्षष्टि तथा क्रोष्ट्रुबिडालयोः॥ 15॥

गायों, गधों, ऊँटों की आयु चौबीस वर्ष और बाघ, सियार और बिल्लियों की आयु चौसठ वर्ष निर्धारित की गई।

पञ्चाशत् श्वेतगरुतां दश पारावतस्य च।
अष्टौ कुक्कुटिकानाञ्च मूषिकाणां त्रिवर्षकम्॥ 16॥

हंसों के लिए पचास वर्ष, कबूतरों के लिए दस, मुर्गियों के लिए आठ और चूहों के लिए तीन वर्ष की आयु निर्धारित की गई।

तथा सरटिगौलीनां वर्षं जीवेत्पिपीलिका।
बुद्बुदाः पञ्चमासेषु स्वेदजा मासमेव हि॥ 17॥
मक्षिकास्तु त्रिमासन्तु एतदायुष्य लक्षणम्।

इसी प्रकार गिरगिट और छिपकलियों की आयु तीन वर्ष है। चींटियाँ एक वर्ष तक जीवित रहती हैं। बुलबुले पाँच माह तक और पसीने से उत्पन्न लीखें, जूएँ, खटमल आदि एक मास तक जीवित रहते हैं। मक्खियों का जीवन तीन महीने का होता है। इस प्रकार विभिन्न जीवों की आयु का लक्षण है।

एवमायुः कलियुगे द्वापरे द्विगुणं भवेत्॥ 18॥
त्रेतायां त्रिगुणं प्रोक्तं कृते चैवं चतुर्गुणम्।
एवमेव हि सर्वेषामायुः परिमितिर्विभो॥ 19॥

यह भी जानना चाहिए कि आयु के उक्त परिमाण कलयुग के हैं। द्वापर में इन आयु प्रमाण को कलयुग की अपेक्षा दो गुना, त्रेता में तीन गुना और कृतयुग में चौगुना कहा गया है। सभी जीवों के लिए आयु का यह निर्धारण प्रभु विश्वकर्मा ने किया है।

इति श्रीकालहस्तिमुनि प्रणीत श्रीविश्वकर्मपुराणे सकल्पमन्वन्तरादि जीवयोन्यायुप्रमाणं नामैकोनविंशोऽध्यायः॥ 19॥

इस प्रकार कालहस्ति मुनि द्वारा प्रणीत श्रीविश्वकर्मपुराण में कल्प, मन्वन्तरादि सहित जीव योनि की आयु का प्रमाण नामक उन्नीसवाँ अध्याय पूरा हुआ।

अथ विंशोऽध्यायः ॥ 20 ॥

सुव्रतोवाच —

नमस्ते कालहस्तीन्द्र! लक्षणं विश्वकर्मणः ।
ज्ञातं मया सृष्टिरूपं सर्वं च त्वदुदीरणात् ॥ 1 ॥
कथं भजन्ते मनुजा विश्वकर्माणमीश्वरम् ।
कस्मादाराधनात्प्रीतः स मे वद मुनीश्वर ॥ 2 ॥

राजा सुव्रत विनम्र होकर बोले— हे कालहस्तीन्द्र! आपको नमस्कार। आपके कथनानुसार मैं भगवान् विश्वकर्मा के सृष्टिस्वरूप और लक्षणों को जान पाया हूँ। परमेश्वर स्वरूप भगवान् विश्वकर्मा मानव समुदाय द्वारा किस तरह की पूजा-आराधना से सन्तुष्ट होते हैं? हे मुनीश्वर! कृपया मेरे प्रति कहियेगा।

मुनि उवाच —

ब्राह्मणाः कर्ममार्गेण ध्यानमार्गेण योगिनः ।
सत्यमार्गेण राजानो भजन्ति परमेश्वरम् ॥ 3 ॥

इस प्रश्न पर मुनि कालहस्ति बोले— ब्राह्मण अपने स्वाभाविक कर्म के मार्ग से[१], योगीजन ध्यानमार्ग[२] और राजागण सत्य के मार्ग से[३] उन परमेश्वर की आराधना करते हैं।

स्त्रियो वैश्याश्च शूद्राश्च ये च सङ्करयोनयः ।
भजन्ति भक्तिमार्गेण विश्वकर्माणमव्ययम् ॥ 4 ॥

स्त्रियाँ, वैश्य-व्यापारीगण, शूद्र और अन्य संकर लोग उन अव्यय विश्वकर्मा की आराधना भक्तिमार्ग से करते हैं।

---

१. विप्रों के स्वाभाविक कर्म गीता में इस प्रकार आए हैं— शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च। ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम् ॥ (श्रीमद्भगवद्गीता 18, 42)

२. तुलनीय— नास्ति ध्यानसमं तीर्थं नास्ति ध्यानसमं तपः। नास्ति ध्यानसमो यज्ञस्तस्माद्ध्यानं समाचरेत् ॥ (शिवपुराण वायवीयसंहिता, उत्तर. 39, 28)

३. राजा या क्षत्रियों का सत्य व न्यायपूर्वक शासन संचालन से यहाँ आशय है। क्षत्रियों के कर्म हैं— शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम्। दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम् ॥ (उपर्युक्त 18, 43)

स्ववर्णधर्मनिरतैर्निश्चलैः साधुवर्तनैः।
आराधितो महादेवः सुप्रीतः परमेश्वरः॥ 5॥

अपने वर्णधर्म के अनुसार निश्चल भाव वाले सज्जन लोगों द्वारा अपने स्वाभाविक कर्मों के अनुसार आराधना करने से वह परमेश्वर प्रसन्न होते हैं।[१]

सुव्रतोवाच —

वर्णाश्च वर्णधर्माश्च वर्णाचाराश्च ये मताः।
अन्तर्भेदाश्च मे योगिन् कालहस्तीन्द्र कथ्यताम्॥ 6॥

यह सुनकर राजा सुव्रत बोले— हे योगीन्द्र कालहस्ति! आप मुझे वर्ण, वर्णधर्म, वर्णाचार और उनके अन्तर्भेदों के विषय में समझाइयेगा।

मुनि उवाच —

ब्रह्मक्षत्रियविट्शूद्राश्चत्वारः श्रेष्ठवर्णकाः।
तेष्वष्टादश वर्णाश्च सम्पर्कादन्यतो भवन्॥ 7॥

इस पर मुनि कालहस्ति ने कहा— ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र— ये चारों ही श्रेष्ठ वर्ण है। उसमें भिन्न-भिन्न वर्णों के सम्पर्क से अठारह अन्य वर्ण उत्पन्न हुए हैं।

ब्रह्मणानां कुलं द्वेधा पूर्वं विभजितं सुरैः।
आर्षेयं पौरुषेयं च कर्म जन्म विशेषतः॥ 8॥

ब्राह्मण कुल को देवेश्वर ने पूर्वकाल में कर्म और जन्म के आधार पर विशेष रूप से दो भागों में विभाजित किया है। ये वर्ग आर्षेय और पौरुषेय हैं जो क्रमशः ऋषि और पुरुष सम्बन्धी हैं।

आर्षेया ऋषिगोत्रेषु वसिष्ठादेश्च ये भवाः।
जननाज्जायते शूद्रः कर्मणा जायते द्विजः॥ 9॥

यह जानें कि इनमें वसिष्ठ, भरद्वाजादि ऋषि गोत्र वाले आर्षेय (ऋषि)

---

१. यहाँ गीता का मत तुलनीय है— स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः। स्वकर्मनिरतः सिद्धिं यथा विन्दति तच्छृणु॥ यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्। स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः॥ श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्। स्वभावनियतं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम्॥ (श्रीमद्भगवद्गीता 18, 45-47)

वर्ग[1] से सम्बन्धित हैं किन्तु यह भी विचारणीय है कि कोई व्यक्ति जन्म से शूद्र होता है किन्तु अपने कर्मों के फलस्वरूप ब्राह्मण[2] बनता है।

यद्विश्वकर्मणश्चास्य पुरुषस्य मुखोद्भवम्।
पौरुषेयमितिख्यातं पञ्चगोत्रं मनोः कुलम्॥ 10॥

इसी प्रकार जो विश्वकर्मा के मुख से उत्पन्न हुए हैं, वे पौरुषेय के रूप में ख्यात हैं। इनमें मनु के कुल में होने वालों की पाँच गोत्रें हैं।[3]

मनोस्तत्र कुलं मुख्यं विश्वकर्ममुखोद्भवम्।
आर्षेयञ्च कुलं कर्माचरणाच्च विशेषतः॥ 11॥

विश्वकर्मा के मुख से उत्पन्न वह मनु कुल स्वभाव से ही महान् है। यह आर्षेय कुल अपने कर्माचरण के फलस्वरूप विशेष हुआ है।

षट्कर्मनिरता नित्यं सर्वैपि द्विजपुङ्गवाः।
पञ्चकर्मविशेषाणि द्वयोर्भेदस्त्वीयानिति॥ 12॥

सभी ब्राह्मणराज नित्य प्रति षट्कर्म— यजन, याजन, अध्ययन, अध्यापन, दान और प्रतिग्रह में लगे रहते हैं। उनमें भी पाँच कर्म विशेष है और उनके दो भेद हैं।

---

१. वामनपुराण में स्मरणीय ऋषियों का उल्लेख इस तरह है— भृगुर्वसिष्ठः क्रतुरङ्गिराश्च मनुः पुलस्त्यः पुलहश्च गौतमः। रैभ्यो मरीचिश्च्यवनश्च दक्षः कुर्वन्तु सर्वे मम सुप्रभातम्॥ (वामनपुराण 14, 33) ज्योतिर्निबन्ध में सप्तर्षियों के नाम क्रमशः विश्वामित्र, जमदग्नि, भरद्वाज, गौतम, अत्रि, वसिष्ठ एवं कश्यप आए हैं— विश्वामित्रो जगदग्निर्भरद्वाजोथ गौतमः। अत्रिवसिष्ठः कश्यपश्च सप्तैते ऋषयः स्मृताः॥ (ज्योतिर्निबन्ध पृष्ठ 133)

२. यह मत पद्मपुराण आदि में प्रकारान्तर से आया है। वहाँ कहा गया है— जन्मना ब्राह्मणो ज्ञेयः संस्कारैर्द्विज उच्यते। विद्यया याति विप्रत्वं त्रिभिः श्रोत्रियलक्षणम्॥ विद्यापूतो मन्त्रपूतो वेदपूतस्तथैव च। तीर्थस्नानादिभिर्मेध्यो विप्रः पूज्यतमः स्मृतः॥ (पद्मपुराण सृष्टिखण्ड 43, 134-135)
कहीं-कहीं 'जन्मना जायते शूद्रः संस्काराद् द्विज उच्यते' के रूप में भी पाठ मिलता है। महाभारत की उक्ति है कि ब्राह्मण समुदाय सदाचार जैसे कर्माचरण के कारण ही अपना सम्मान अर्जित किए हुए है, सदाचार में स्थित रहने वाला अन्त्यज भी इस जन्म में ब्राह्मणत्व प्राप्त कर लेता है— सर्वोऽयं ब्राह्मणो लोके वृत्तेन तु विधीयते। वृत्ते स्थितस्तु शूद्रोऽपि ब्राह्मणत्वं नियच्छति॥ (महाभारत अनुशासनपर्व 143, 51)

३. यहाँ यह विचार भी लक्षित है कि पुरुषसूक्त में कहे गए परमपुरुष उस विश्वकर्मा के मुख से जो ऋषि उत्पन्न हुए हैं, वे ही पाँच प्रधान गोत्रों में हुए। मनु कुल में उत्पन्न होने से उनको पौरुषेय नाम दिया गया है। 'मनोः कुलम' ही 'महत्कुलम्' है, जिसका अर्थ महान् वर्ण है।

मनोः कुले पञ्चभेदाः कारवो रथकारकाः।
शुल्बिनः शिल्पिनश्चैव चरमाः स्वर्णकारकाः ॥ 13 ॥

मनु के कुल में उत्पन्न होने वालों के कर्मों के आधार पर पाँच भेद हैं– 1. कारव (कारीगर, लोहे आदि का काम करने वाले), 2. रथकार (रथादि सुथारी-बढ़ाई का काम करने वाले) 3. शुल्बिन (शुल्बसूत्र, रस्सी बुनने या याज्ञिक कार्य करने वाले), 4. शिल्पी (प्रतिमादि के निर्माणकर्ता) और अन्तिम 5. स्वर्णकार (सुवर्ण से गहने आदि बनाने वाले)।[१]

सर्वेषां कारवो ज्येष्ठास्तक्षाणस्तदन्तरम्।
ततः शुल्बिश्च शिल्पी च कनिष्ठाः स्वर्णकारकाः ॥ 14 ॥

इन पाँचों में पहले कारव ज्येष्ठ हैं। तदनन्तर तक्षणकर्ता हैं। तदोपरान्त शुल्बिन् और फिर शिल्पी आते हैं। इनमें कनिष्ठ स्वर्णकार माने गए हैं।

कारुणां कर्म यजनं याजनाध्ययने तथा।
अध्यापनं दानञ्च हेतीनां करणं तथा ॥ 15 ॥

इनमें जो कारु वर्ग है, उनके लिए यजन, याजन, अध्ययन, अध्यापन, दान और अस्त्र-शस्त्र का निर्माण— ये षट्कर्म निर्धारित हैं।

युद्धतन्त्राणिकर्माणि मन्त्राणां रक्षणं तथा।
बन्धमोक्षादि यन्त्राणि सर्वेषामपि जीविनाम् ॥ 16 ॥

इसी प्रकार उनके लिए युद्ध के रणांगन की तकनीकी युक्तियों के व्यूह विषयक कार्य, तदर्थ परामर्श, रक्षा विषयक कार्य, बंदीजनों की मुक्ति और सभी प्राणियों के हित में आयुधादि यन्त्रों का निर्माण जैसे कर्म भी विहित है।

पापपुण्यविचारश्च तपः शौचं दमः शमः।
सत्यकर्माणि सर्वाणि मनुवंश स्वभावजम् ॥ 17 ॥

पाप और पुण्य के सम्बन्ध में विचार, तप, शौच, दम, शम, सत्य के

---

१. यह क्रम क्रमशः लौह की कारीगरी, काष्ठकारी, मूंज आदि की रस्सी के प्रयोग, शिलाओं की शिल्पकारी और मूल्यवान धातुओं की कला के प्रसंग में है और सामाजिक अर्हताओं के महत्व का सूचक है। ब्रह्मवैवर्तपुराण में कलाधर्मियों का यह क्रम आया है— ततो बभूवः पुत्राश्च नवैते शिल्पकारिणः। मालाकारः कर्मकारः शङ्खकार कुविन्दकः॥ कुम्भकारः कंसकारः षडेते शिल्पनां वराः। सूत्रकारश्चित्रकारः स्वर्णकारस्तथैव च॥ (ब्रह्मवैवर्तपुराण ब्रह्मखण्ड अध्याय 10)

आचरण जैसे समस्त कर्म मनु वंशजों के लिए स्वाभाविक कर्म कहे गए हैं।

तक्षाणां कर्म यजनं याजनाध्ययने तथा।
अध्यापनञ्च दानञ्च वास्तुशास्त्र प्रवर्तनम्॥ 18॥

तक्षकों के कर्मों में यजन, याजन, अध्ययन, अध्यापन, दान सहित स्थापत्य शास्त्र का प्रवर्तन— ये छह कर्म विहित हैं।

प्रासादध्वजहर्म्याणां रथानां करणं तथा।
जपहोमादि कर्माणि कृषिगोरक्षणं तथा॥ 19॥
न्यायकर्माणि सर्वाणि मयवंश स्वभावजम्।

इसी प्रकार प्रासाद, ध्वज, हवेलियों-भवनों, रथों का निर्माण करना भी उनके कर्मों में सम्मिलित हैं। इनके अतिरिक्त जप करना, हवन कार्य, कृषि, गोरक्षा और न्याय कार्य— ये सब मय वंशजों के स्वाभाविक कर्म हैं।

शुल्बीनां कर्म यजनं याजनाध्ययने तथा॥ 20॥
दानमध्यापनं होमः स्नानञ्च गुरुपूजनम्।

शुल्बिनों के कर्मों में यजन, याजन, अध्यापन, दान, अध्यापन, हवन, स्नान और गुरुपूजन— ये आठ कर्म बताए गए हैं।

ताम्रकांस्यादि कर्माणि कलशस्थापनानि च॥ 21॥
धर्माधर्मविचारश्च क्रयविक्रय कर्म च।
देवताऽतिथि पूजा च त्वष्टुवंश स्वभावजम्॥ 22॥

इसी प्रकार ताँबा, काँस्य से जुड़े कार्यों को करना, कलश बनाकर उनकी स्थापना, धर्म और अधर्म पर विचार करते हुए क्रय-विक्रय के कार्य, देवता और अतिथि का पूजन-सत्कार— ये त्वष्टा के वंशजों के स्वाभाविक कर्म हैं।

शिल्पीनां कर्म यजनं याजनाध्ययने तथा।
अध्यापनं च दानं च अग्निकार्यं सुरार्चनम्॥ 23॥

शिल्पियों के कर्मों में यजन, याजन, अध्ययन, अध्यापन, दान के अतिरिक्त अग्नि विषयक होमादि कार्य और देवताओं का अर्चन-आराधन सम्मिलित हैं।

पितृकर्माणि सद्गोष्ठी नित्यं सुज्ञानसाधनम्।
सालगोपुरदुर्गाणां निर्माणं राजसंश्रयः॥ 24॥

देवालयादि निर्माण प्रतिष्ठे च स्वभावजम्।

इसी प्रकार वंशानुगत या श्राद्ध से जुड़े पितृ सम्बन्धी कार्य, अच्छे विषयों पर सम्मेलन आहूत करना और नित्य उपयोगी ज्ञान का अर्जन करना, निर्माण कार्य, गोपुर या प्रासादों के लिए शिखर को बनाना, दुर्गों-किलों का निर्माण, राजाश्रय में रहना, देवताओं के लिए आलय का निर्माण व उनकी प्रतिष्ठा— ये शिल्पियों के स्वाभाविक कर्म हैं।

विश्वज्ञ कर्म यजनं याजनाध्ययने तथा॥ 25॥
अध्यापनञ्च दानञ्च सर्वाभरणं कर्म च।

विश्वज्ञों के लिए निर्धारित कर्मों में यजन, याजन, अध्ययन, अध्यापन, दान और सभी प्रकार के आभरणों का निर्माण कार्य मुख्य हैं।

सुवर्णरत्नशास्त्राणां प्रमाणज्ञत्वमेव च॥ 26॥
तुलाकर्म च वाणिज्यं गणितं लेखकर्म च।
गुरुभक्तिश्च शान्तिश्च अर्कवंश स्वभावजम्॥ 27॥

सुवर्णादि द्रव्यों और रत्नशास्त्रों का ज्ञान, उनके तौल-मान आदि प्रमाणों की जानकारी, तौल विषयक कार्य, व्यापार, गणित-कलन और लेखन कर्म, गुरुभक्ति एवं शान्ति— ये उन सूर्यवंशियों के स्वाभाविक कर्म हैं।

एतेषामपि पञ्चानामसाम्य पटुकर्मभिः।
प्रवर्तते जगत्सर्वं सृष्टिस्थितिलयात्मकम्॥ 28॥

विश्वकर्मा की पाँचों सन्तानों के उपर्युक्त कर्म हैं। वे इनके करने में पटु होते हैं। इनसे ही सृष्टि, स्थिति और लयात्मक यह सारा जगत प्रवर्तित हो रहा है।

इति श्रीकालहस्तिमुनि प्रणीत श्रीविश्वकर्मपुराणे आराधनवर्णधर्मादि वर्णनं नाम विंशोऽध्यायः॥ 20॥

इस प्रकार कालहस्ति मुनि द्वारा प्रणीत श्रीविश्वकर्मपुराण में आराधन, वर्णधर्मादि वर्णन नामक बीसवाँ अध्याय पूरा हुआ।

अथैकविंशोऽध्यायः ॥ 21 ॥

मुनि उवाच —

आश्रमास्ते ततः प्रोक्ताश्चत्वारोद्य द्विजन्मनाम्।
ब्रह्मचर्यं गार्हपत्यं वन्यं सन्यसनं तथा ॥ 1 ॥

मुनि कालहस्ति बोले— अब द्विजों के कुलोत्पन्न जनों के लिए चारों प्रकार के आश्रम के बारे में बताता हूँ। ये आश्रम हैं— 1. ब्रह्मचर्याश्रम, 2. गृहस्थाश्रम, 3. वानप्रस्थाश्रम और 4. सन्यासाश्रम।

गृहस्थस्य यदाचारो द्विगुणं ब्रह्मचारिणाम्।
त्रिगुणं वनसंस्थानां यतीनान्तु चतुर्गुणम् ॥ 2 ॥

यह समझना चाहिए कि गृहस्थ के आचार-व्यवहार की अपेक्षा ब्रह्मचारी दुगुना होता है, वानप्रस्थाश्रमी तीन गुना और सन्यासी उससे चौगुना होता है।

सर्वाश्रमाणामाधारं गृहस्थाश्रम मेव हि।
तृप्यन्ति तस्माद्धातानि देवर्षि पितृमानवाः ॥ 3 ॥

गृहस्थाश्रम ही समस्त आश्रमों का आधार कहा गया है।[१] उसी से प्राप्त भातादि से देवर्षि, पितृगण और मानव आदि सभी सन्तुष्ट होते हैं।

नित्य नैमित्तिकं सम्यगाचरन् स गृही सदा।
उद्धरेत्सप्तगोत्राणि कुलमेकोत्तरं शतम् ॥ 4 ॥

जो गृहस्थ होता है, वह अपने नित्य-नैमित्तिक कर्मों का निष्ठापूर्वक आचरण करता है और अपने से सम्बद्ध सात गोत्रों के एक सौ एक जनों का

---

१. पद्मपुराण में कहा गया है कि गृहस्थाश्रम का सहारा लेकर सब प्राणी जीवन धारण करते हैं। गृहस्थाश्रम के समान अन्य कोई आश्रम नहीं दिखाई देता है— गार्हस्थ्यं च समाश्रित्य सर्वे जीवन्ति जन्तवः। तादृशं नैव पश्यामि ह्यन्यमाश्रममुत्तमम् ॥ (पद्मपुराण भूमिखण्ड 59, 19) भविष्यपुराण का मत ज्योतिषग्रन्थों में उद्धृत किया गया है जिसमें कहा गया है कि आश्रमों में सबसे बड़ा गृहस्थाश्रम है और गृहस्थ के सभी कार्यों की सिद्धि उसके गृहाधिकार से ही सम्पन्न होती हैं— गृहस्थस्य क्रियाः सर्वाः न सिद्ध्यन्ति गृहं विना। (भविष्यपुराण, ज्योतिर्निबन्ध पृष्ठ 165,1) कश्यप का मत है— अथातः सम्प्रवक्ष्यामि गृहस्थाश्रममुत्तमम्। य आधारोऽन्याश्रमाणां भूतानां प्राणिनां तथा ॥ ऋणत्रयच्छेदकारि धर्मकामार्थसिद्धिदम्। एतत्सर्वं स्थितं स्त्रीषु शीलवृत्तान्वितासु च ॥ (मुहूर्तचिन्तामणि पीयूषधाराटीका 6, 1)

उद्धार करता है।

नित्य नैमित्तकं कर्म संत्यक्त्वा यो गृही वसेत्।
स पापी नरकं याति यावच्चन्द्रदिवाकरौ॥ 5॥

जो व्यक्ति अपने गृह में रहते हुए नित्य-नैमित्तिक कर्मों का आचरण छोड़ देता है, वह पापी है। उसको चन्द्रमा और सूर्य के विद्यमान रहने तक नरक में निवास करना पड़ेगा।

इतराश्रमिभिः स्वीयं पुण्यं तैरनुभूयते।
गृहस्तेन कृतं पुण्यं पितृभिश्चानुभूयते॥ 6॥

गृहस्थ से इतर आश्रम— ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ और सन्यासाश्रम में तो जो पुण्य अर्जित किया जाता है, उसका अनुभव तो वे स्वयं ही करते हैं किन्तु गृहस्थाश्रम में अर्जित पुण्यों की अनुभूति गृहस्थ के साथ-साथ पितरगणादि भी करते हैं।

राजोवाच —

कथमाचरितव्यानि नित्य नैमित्तिकानि च।
गृहस्थेन कथं देवास्तृप्यन्ति पितृमानुषाः॥ 7॥
कानि कर्माणि नित्यानि कानि नैमित्तिकानि च।
तन्मे श्रीकालहस्तीन्द्र! ब्रूहि सर्वं सुविस्तरम्॥ 8॥

ऐसा सुनकर राज़ा सुव्रत ने पूछा— हे महर्षि! जो गृहस्थ हैं, उनको नित्य-नैमित्तिक कर्मों का आचरण किस तरह करना चाहिए ताकि देवगण, पितृगण और मनुष्यगण सन्तुष्ट हो सके? आचरणीय नित्य कर्म क्या हैं और नैमित्तिक कर्म क्या हैं? हे श्रीकालहस्तीन्द्र मुनि! उन सबको आप मुझे विस्तार से समझाइयेगा।

मुनि उवाच—

शौचमाचमनं कृत्वा संध्यावन्दन मेव च।
भस्म-त्रिपुण्ड्र-रुद्राक्षमालाहृदयधारणम्॥ 9॥

इस प्रश्न पर मुनि कहने लगे— नित्य ब्रह्ममुहूर्त में उठकर शौच, आचमन आदि से निवृत्त होकर संध्यावन्दन करना, भस्म और त्रिपुण्ड लगाकर रुद्राक्ष की माला गले में धारण करना चाहिए।[१]

---

१. स्नान, संध्या, जप, देवपूजा, वैश्वदेव और अतिथि पूजन ये छह नित्यकर्म माने गए हैं—

पञ्चाक्षरी जपश्चैव वेदानां पठनं तथा।
ततो माध्याह्निकं कर्म पितृणां जलतर्पणम्॥ 10॥

इसी प्रकार पंचाक्षरी मन्त्र का जप करें। वेद-वाङ्मय का अध्ययन करना चाहिए। इसके बाद मध्याह्न के कार्यों का सम्पादन करके पितरों को जल तर्पण करना चाहिए।

भूतानाञ्च बलेर्दानं अतिथेरपि भोजनम्।
पुराणश्रवणं चैव राजकार्य विचारणम्॥ 11॥

भूत-प्राणियों को बलि (गोग्रास, श्वान, काक, देवादि, पिपीलिकादि पंचबलि) प्रदानकर आए हुए अतिथियों को भोजन करवाना चाहिए। इसके बाद पुराणकथा को सुनना चाहिए और राजकीय-व्यावहारिक कार्यों (नौकरी-सेवा) का विचार करना चाहिए।

सायं संध्या महादेव कीर्तनं बन्धुपोषणम्।
एतानि नित्य कर्माणि गृहस्थस्य महामते॥ 12॥

सायंकाल संध्या करनी चाहिए। महादेव का कीर्तन करना चाहिए। बन्धुजनों का पोषण करना चाहिए। हे महामते! प्रत्येक गृहस्थ के लिए ये नित्यकर्म कहे गए हैं।[१]

सुव्रतोवाच —

कानि षोडशकर्माणि कानि नैमित्तिकानि च।

नित्यकर्मों के विषय में सुनकर राजा सुव्रत ने पूछा— सोलहकर्म (षोडश संस्कार) क्या हैं और नैमित्तिक कर्म क्या हैं?

मुनि उवाच —

गर्भाधानं पुंसवनं सीमन्तकं जातकर्म च॥ 13॥
नामकर्मं तथैवेतदन्नप्राशनं कर्म च।
चौलं तथोपनयमुपाकर्म तथैव च॥ 14॥

कालहस्ति मुनि बोले— सोलह संस्कारों में 1. गर्भाधान संस्कार, 2.

संध्या स्नानं जपश्चैव देवतानां च पूजनम्। वैश्वदेवं तथातिथ्यं षट्कर्माणि दिने दिने॥ (बृहत्पराशर. 1, 39)

१. तुलनीय— गृहस्थधर्म प्रकरण। (याज्ञवल्क्यस्मृति आचार. 97-114)

पुँसवन संस्कार, 3. सीमन्तक संस्कार, 4. जातकर्म संस्कार, 5. नामकरण संस्कार, 6. अन्नप्राशन संस्कार, 8. चौलकर्म संस्कार 9. उपनयन संस्कार और वैसे ही 10. उपाकर्म संस्कार को माना गया है।[1]

वेदाभ्यासो के(वं!)शकर्माभ्यासमुत्सर्जनं तथा।
गुरुदक्षिणा च गोदानं समावर्तन मेव च॥ 15॥
विवाहं च गृहे स्थालीपाकं नैमित्तिकानि च।
प्रोक्तान्ये तानि राजेन्द्र! कर्माणि शृणु विस्तरात्॥ 16॥

इसी प्रकार 11. वेदाभ्यास कर्म, 12. केशकर्माभ्यास उत्सर्जन, 12. गुरुदक्षिणा, 13. गोदान, 14. समावर्तन, 15. विवाह और 16. गृह में स्थालीपाक[2]— ये नैमित्तिक कर्म हैं। (इन कार्यों के लिए मुहूर्तादि का शोधन

---

१. अङ्गिरा ऋषि ने चित्रकर्म से संस्कारों की तुलना करते हुए कहा है कि जैसे चित्रकर्म में सफलता प्राप्त करने के लिए विविध रंगों का प्रयोग किया जाना अपेक्षित होता है, वैसे ही चरित्र निर्माण भी विविध संस्कारों के सम्यक् रूप से सम्पादन से सम्भव होता है– चित्रकर्म यथाऽनेकैरङ्गैरुन्मील्यते शनैः। ब्राह्मण्यमपि तद्वत् स्यात् संस्कारैर्विधिपूर्वकम्॥ (वीरमित्रोदय संस्कार. प्रथमभाग, पृष्ठ 139)
धर्मशास्त्रों में सोलह संस्कारों के नामों में किंचित भेद भी मिलता है। यथा— 1. गर्भाधान, 2. पुँसवन, 3. सीमन्तोन्नयन 4. जातकर्म, 5. नामकर्म, 6. निष्क्रमण, 7. अन्नप्राशन, 8. वपन, 9. कर्णवेध, 10. व्रतादेश, 11. वेदारम्भ, 12. केशान्त, 13. स्नान (विद्यास्नान, व्रतस्नानादि), 14. पाणिग्रहण, 15. अग्निपरिग्रह तथा 16. त्रेताग्नि सङ्ग्रह। गौतम ने चालीस संस्कारों एवं आत्मा के आठ शील-गुणों का वर्णन किया है— गर्भाधानं पुंसवनं सीमन्तोन्नयनं जातकर्म नामकरणान्नप्राशनचौलोपनयनं चत्वारि वेदव्रतानि स्नानं सहधर्मचारिणीसंयोगः पञ्चानां यज्ञानामनुष्ठानमष्टका पार्वण:श्राद्धं श्रावण्याग्रहायणीचैत्री आश्वियुजीति सप्त पाकसंस्थाः, अग्न्याधानमग्निहोत्रं दर्शपूर्णमासौ चातुर्मास्यान्यग्रयणेष्टिर्निरूढ पशुबन्धः सौत्रामणीति सप्त हविर्गृहयज्ञसंस्थाः, अग्निष्टोमोऽत्यग्निष्टोम उक्तः षोडशी वाजपेयोऽतिरात्रोर्याम इति सप्त सोमयज्ञसंस्था इत्येते चत्वारिंशत्संस्काराः। (गौतमधर्मसूत्र 8, 14-24; पीयूषधाराटीका 5, 1 पर उद्धृत)

२. पारस्करगृहसूत्र में कहा गया है कि यह कर्म वर के घर पर होता था। पति अपनी पत्नी को कुछ परिपक्व भोजन करवाते हुए कहता था : मैं अपने प्राणों से तुम्हारे प्राणों को, अस्थियों से अस्थियों को, मांस से मांस को और त्वचा से तेरी त्वचा को धारण करता हूँ— प्राणैस्ते प्राणान् सन्दधामि अस्थिभिरस्थीनि मांसैर्मांसानि त्वचा त्वचम्। (पारस्कर. 1, 11, 5) इसी प्रकार हेमाद्रि ने गालवऋषि का वचन उद्धृत करते हुए कहा है— अत्र स्त्रिया सह वरोऽपि समाचाराद् भोजनं करोति। स्त्रिया सह भोजनेऽवि न दोष इत्याह हेमाद्रौ प्रायश्चितकाण्डे गालवः— एकयानसमारोहः एकपात्रे च भोजनम्। विवाहे पथि यात्रायां कृत्वा विप्रो न

विचार करना चाहिए)। हे राजेन्द्र! तुम्हें इनके अतिरिक्त कर्मों के विषय में विस्तार से कहता हूँ।

अमावस्यासु सङ्क्रान्तौ मन्वादिषु युगादिषु।
वैधृतिषु च पातेषु उपरागेषु पर्वसु॥ 17॥
नभस्यापरपक्षे च मातापित्रोर्मृते तिथौ।
कारयेत् श्राद्धकर्माणि पित्रूनुद्दिश्य स गृही॥ 18॥

अमावस्या, संक्रान्ति, मन्वादि तिथियों[१], युगादि तिथियों[२], वैधृति, व्यतिपात, सूर्य और चन्द्र ग्रहण, पर्व दिवस (अष्टमी, चतुर्दशी, अमावस्या और सूर्य की सङ्क्रान्ति), भाद्रपद मास, बहुलपक्ष, माता-पिता की दिवंगत तिथि के अवसर पर गृहस्थ को अपने पितृ-देवताओं को लक्ष्य करके श्राद्धकर्म का सम्पादन करना चाहिए (इन तिथियों में संस्कार कर्म नहीं किया जाता है[३])।

दोषभाक्॥ अन्यथा दोषमाप्नोति पश्चाच्चान्द्रायणं चरेत्॥ (चतुर्व्वर्ग्ग चिन्तामणि प्रायश्चितकाण्डे)

१. वसिष्ठसंहिता में मन्वादि तिथियाँ चौदह बताई गई हैं— आश्विन शुक्ला 9, कार्तिक शुक्ला 12, चैत्र शुक्ला 3, भाद्रपद शुक्ला 3, श्रावण कृष्णा अमावस्या (पूर्णिमान्त से भाद्रपद की अमावस्या), पौष शुक्ला एकादशी, आषाढ़ शुक्ला दशमी, माघ शुक्ला सप्तमी, श्रावण कृष्णा अष्टमी, आषाढ़ शुक्ला पूर्णिमा, क़ार्तिकी पूर्णिमा, फाल्गुनी पूर्णिमा, चैत्री पूर्णिमा व ज्येष्ठी पूर्णिमा। इनमें पितृकर्म, जप और दान करने से अक्षय फल मिलता है— ईषे च शुक्ला नवमी कार्तिके द्वादशी तथा। मासद्वये तृतीया स्याच्चैत्रे भाद्रपदेऽपि च॥ अमावस्या श्रावणे च पौषस्यैकादशी सिता। आषाढे शुक्लनवमी माघमासे तु सप्तमी॥ कृष्णाष्टमी नभस्ये च आषाढी कार्तिकी तथा। फाल्गुने चैत्रमासे च ज्येष्ठमासे च पूर्णिमा। मन्वन्तरादि तिथयः पुण्याः स्युः पितृकर्मसु। तासु जप्तं दत्तं फलं भवति चाक्षयम्॥ (वसिष्ठसंहिता 12, 32-35)

२. युगादि संज्ञक तिथियाँ वसिष्ठसंहिता, नारदसंहितादि में मास के क्रमानुसार बताई गई है— वैशाख शुक्ला तृतीया कृतयुगारम्भ तिथि, कार्तिक शुक्ला नवमी त्रेतायुगारम्भ, भाद्रपद कृष्णा त्रयोदशी द्वापरयुगारम्भ और माघ शुक्ला पूर्णिमा कलयुगादि तिथि है— कृष्णा पञ्चदशी माघे नभस्ये च त्रयोदशी। शुक्ले तृतीया वैशाखे नवम्यूर्जे युगादयः॥ (उपर्युक्त 12, 36)

३. वीरमित्रोदय [: मित्र मिश्र, भाग प्रथम, पृष्ठ 234]; मुहूर्ततत्त्वम् में शव की प्रतिकृति के दहन में निषिद्ध ज्ञातव्य और श्राद्ध-पिण्डकर्मादि के विषय में कहा गया है कि यदि शुक्लपक्ष, विष्टि संज्ञक करण, सूर्य का याम्यायन, अशुभ (कर्ता की जन्मराशि से 4, 8, 12वाँ) चन्द्रमा, वैधृतियोग, पूर्वाह्न, व्यतिपात, कुम्भ एवं मीनस्थ चन्द्रमा, शुक्र-गुर्वास्तकाल, परिघ जन्य दोष, शनिवार, त्रयोदशी, द्विपाद नक्षत्र (धनिष्ठा, चित्रा व मृगशिरा) एवं त्रिपाद नक्षत्र (विशाखा, उत्तराफाल्गुनी, पूर्वाभाद्रपद, पुनर्वसु, कृत्तिका व उत्तराषाढ़ा), रोहिणी, रेवती, चतुर्दशी, नन्दातिथि (1 6, 11), जन्म नक्षत्र व उसके निकट

शैशिरे वा वसन्ते ग्रीष्मे हेमन्तके ऋतौ।
अग्निष्टोमादि यज्ञाश्च कर्त्तव्या गृहमेधिभिः॥ 19॥

गृहस्थों का कर्त्तव्य है कि वे शिशिर ऋतु हो या वसन्त, ग्रीष्म हो अथवा हेमन्त ऋतु हो, उनके अग्निष्टोमादि[१] यज्ञों का सम्पादन करें।

इति श्रीकालहस्तिमुनि प्रणीत श्रीविश्वकर्मपुराणे नित्यनैमित्तिककर्म वर्णनं नामैकविंशोऽध्यायः॥ 21॥

इस प्रकार कालहस्ति मुनि द्वारा प्रणीत श्रीविश्वकर्मपुराण में नित्य-नैमित्तिक कर्म वर्णन नामक इक्कीसवाँ अध्याय पूरा हुआ।

तथा उससे 10वें एवं 19वें नक्षत्र और शुक्रवार हो तो शव प्रतिकृति या पुत्तलदाह कर्म नहीं किया जाना चाहिए और त्रयोदशी से उसकी तिथि नक्षत्रों में श्राद्ध कर्म निषिद्ध जानना चाहिए। इसी प्रकार कृत्तिका नक्षत्र, नन्दातिथि, जन्म नक्षत्र व तद्निकट के, 10वें एवं 19वें नक्षत्र तथा शुक्रवार को पिण्ड-क्रिया नहीं करें तथापि यहाँ दर्श आदि एवं महालय (पार्वण श्राद्ध) जैसे विधि सम्मत कृत्यों में ऐसा निषेध नहीं है—शुक्लं विष्टिं च याम्यायनमशुभविधुं वैधृतिं प्राह्णपातौ कुम्भान्त्येन्दु सितेज्यास्तमपि च परिघार्कीस्मरद्वि$_2$त्रि$_3$पद्भम्। कान्तक्षेन्भूतनन्देत्रिजनिभभृगुजं प्रोज्झ्यदाहः स्मराद्यं श्राद्धं पिण्डोग्नि नन्दाद्यमथ च विहितेमादिवाक्षेषु नौ तत्॥ (मुहूर्ततत्त्वम् मिश्रप्रकरण 15, 7; तुलनीय-पद्मपुराण भूमिखण्ड अध्याय 38)

१. गौतमधर्मसूत्र में चालीस संस्कारों का वर्णन है। उसमें सात सोमयज्ञसंस्था के अन्तर्गत इन यज्ञों के नाम आए हैं। कहा गया है— अग्निष्टोम, अत्यग्निष्टोम, उक्थ, षोडशी, वाजपेय, अतिरात्र, आप्तोर्यामि इति सप्तसोमसंस्था। (मुहूर्तचिन्तामणि संस्कारप्रकरण की पीयूषधाराटीका की भूमिका के आरम्भ उद्धृत)

अथ द्वाविंशोऽध्यायः ॥ 22 ॥

सुव्रतोवाच —

यस्मिन् काले नित्यकर्म कर्त्तव्यं गृहमेधिभिः ।
तत्सर्वं सम्यगाचार्य ब्रूहि मे कालहस्तिराट्! ॥ 1 ॥

राजा सुव्रत ने इस क्रम में आगे पूछा— हे आचार्य! कालहस्तिराज! जिस काल में गृहस्थ नित्यकर्म कर सके, अब उसके सम्बन्ध में सम्यक् रूप से बताइयेगा।

मुनि उवाच —

गृहस्थो पररात्रे यो मुहूर्ते ब्राह्मसञ्ज्ञके ।
उदयात्पूर्वतः षण्णाड्यामुत्थाय च वाग्यतः ॥ 2 ॥

इस पर मुनि कालहस्ति बोले— गृहस्थ को रात्रि के परवर्तीभाग में जब सूर्योदय से छह नाड़िका पूर्व ब्राह्म नामक मुहूर्त होता है, तब बिना बतियाये उठ जाना चाहिए।[१]

जलेन पादौ प्रक्षाल्यक्पत्वा निष्ठीवनं ततः ।
आचम्य संस्मरे देवं शङ्करं घटिकाद्वयम् ॥ 3 ॥

उठकर पहले पाँवों को उपलब्ध जल से धोना चाहिए। मुखशुद्धि और आचमन करके दो घड़ी तक भगवान् शंकर का स्मरण करना चाहिए।

प्रत्यूषेथ जलं धृत्वा शौचार्थं मृत्तिकात्तथा ।
गच्छेद्ग्रामस्य दृग्दूरं वायवीं वापि नैर्ऋतिम् ॥ 4 ॥

इसके बाद भोर की वेला में शौच के लिए जल और मृत्तिका लेकर ग्राम से दूर पश्चिमोत्तर अथवा दक्षिण-पश्चिमी दिशा में जाना चाहिए।

---

१. ब्राह्ममुहूर्त में बिस्तर छोड़ देने का नियम है। यदि कोई इस समय शयन करता है तो उसके पुण्य का क्षय होता है। उसको इससे हाने वाले पाप की शुद्धि के लिए पादकृच्छ्र नामक व्रत करना पड़ता है— ब्राह्म मुहूर्ते या निद्रा सा पुण्यक्षयकारिणी। तां करोति द्विजो मोहात् पादकृच्छ्रेण शुद्ध्यति ॥ (स्मृतिरत्नावली का आचारेन्दु में उद्धृत वचन, पृष्ठ 17) याज्ञवल्क्य का मत है— ब्राह्मे मुहूर्ते चोत्थाय चिन्तयेदात्मनो हितम्। धर्मार्थकामान्स्वे काले यथाशक्ति न हापयेत् ॥ (याज्ञवल्क्यस्मृति 1, 115)

तृणसैकत शून्यानां भूमौ संविश्य मौनतः।
उपवीतं दक्षकर्णे कृत्वा विस्त्रावयेद्दिशम्॥ 5॥

उचित स्थान जहाँ पर घास और रेती-कंकड़ नहीं हो, वहाँ पर मौन होकर बैठना चाहिए। दक्षिणी कान पर यज्ञोपवीत को चढ़ा देना चाहिए और मल विसर्जन करना चाहिए।

ततः शौचं जलैः कुर्यान्नदीतीरे मृदा सह।
गुदे द्वादशवारं च षड्वारं करयोर्धण्योः॥ 6॥
त्रिभिर्लिङ्गे मृदालेप्य द्विवारं पादयोस्तथा।
निष्ठिवनं ततः कुर्याज्जले द्वादश संख्यया॥ 7॥

शौचक्रिया होने के बाद नदी के तीर की मृदा और जल से बारह बार गुदा को तथा छह बार हाथों को धोना चाहिए। मृदा से तीन बार लिंग और दो बार पाँवों को मलकर धोना चाहिए। इसके बाद बारह बार कुल्ले करना चाहिए।

एवं शौचविधिं कृत्वा कुर्याद्वै दन्तधावनम्।
प्रादेशमात्र काष्ठेन क्षीरकण्टकिनस्तरोः॥ 8॥

उक्त शौच विधि के सम्पादन के बाद दाँतों को धोना चाहिए। इसके लिए एक बित्ता प्रमाण खिरनी या कांटे वाले पेड़ की ताजी लकड़ी के दातुन का प्रयोग करना चाहिए।

तृणपर्णैः सदा कुर्यादऽमामेकादशीं विना।
तयोरपि च कुर्वीत जम्बूचूतच्चदैरपि॥ 9॥

यदि एकादशी और अमावस्या तिथियाँ हो तो जामुन और आम के तृण-पत्तों से और अन्य तिथियों में ताड़ के वृक्ष के तृण-पत्तों से जीभ की सफाई करना चाहिए।

ततो निष्ठीवनं कृत्वा पादौ प्रक्षालयेत्पुनः।
आचार्यो वारुणान्सूक्तान् जपन्नप्सु निमज्जयेत्॥ 10॥

इसके बाद अच्छी तरह कुल्ले करके मुँह को धोयें और फिर पाँवों का प्रक्षालन करना चाहिए। इसके बाद वरुण सूक्तों को जपते हुए स्नान करना चाहिए।

प्रथमं गोमयं काये लिप्त्वा स्नानं समाचरेत्।
ततस्तु भस्मना कुर्यात् मृत्तिका स्नानमुत्तरम्॥ 11॥

स्नान के लिए पहले शरीर पर गोमय का लेपन करना चाहिए। इसके बाद भस्म का लेपन करके और अन्त में मृत्तिका लगाकर स्नान करना चाहिए।

निर्गत्य वस्त्रं स शुचिर्जलं संप्रोक्ष्य धारयेत्।
अर्धवस्त्रं जले धौतं निष्पिण्ड्य प्रदक्षिणम्॥ 12॥

स्नान से परिशुद्ध होकर वस्त्र को शुद्ध जल में अच्छी तरह निचोड़ लें। प्रदक्षिणा के लिए अर्धवस्त्र को धारण करें।

त्रिवारं विश्वकर्माणां स्मृत्वा पाणिगतं जलम्।
पिबत्याचमनं यत्तद्विश्वकर्मकुले भुवाम्॥ 13॥

इसके बाद जो विश्वकर्मावंश में उत्पन्न हुए हों, वे जल को हाथ में लेकर तीन बार विश्वकर्मा का स्मरण करें, कहें : विश्वकर्मणे स्वाहा, सनातनेय स्वाहा, जगन्मयाय स्वाहा। इस तरह उसे पान करके आचमन करना चाहिए।

ततोरुणोदये काले भस्म पञ्चाक्षरी जपम्।
अभिमन्त्र्यजलैर्युक्तं त्रिपुण्ड्रं धारयेद्ध्रुवः॥ 14॥

इसके बाद जब सूर्योदय होने लगे, तब पंचाक्षरी मंत्र (ॐ नमः शिवाय) का जाप करते हुए अभिमन्त्रित भस्म[१] को जल से युक्त करके त्रिपुण्ड लगाते हुए अंग में धारण करना आरम्भ करें।

फाले भुजद्वये बाह्व्यूर्मणिबन्धेगले तथा।
उदरेपार्श्वयोः पृष्ठे भ्रुवोः पक्ष्मणिकर्णयोः॥ 15॥
अष्टादशाङ्गेष्वेतेषु मध्यमाङ्गुलिभिस्त्रिभिः।
पञ्चाक्षरीमुच्चरंश्च धारयेन्मनुवंशजः॥ 16॥

---

१. भस्म की महिमा और धारण करने की विधि शिवपुराण (विद्येश्वरसंहिता 24, 1-116) में विस्तार से आई है। यह विचार रहा है कि लगाने के लिए पहले भस्म को अभिमन्त्रित कर लेना चाहिए। भस्म को बायीं हथेली पर रखकर जलादि मिलाकर ये मन्त्र पढ़े जाते हैं : ॐ अग्निरिति भस्म। ॐ वायुरिति भस्म। ॐ जलमिति भस्म। ॐ स्थलमिति भस्म। ॐ व्योमेति भस्म। ॐ सर्वं ह वा इदं भस्म। ॐ मन एतानि चक्षूंषि भस्मानीति।
भस्म लगाने के लिए ॐ नमः शिवाय का जाप करते जाएँ और ललाट, ग्रीवा, भुजाओं और हृदय में लगाएँ। कहा गया है— त्र्यम्बकेन च मन्त्रेण सतारेण शिवेन वा। पञ्चाक्षरेण मन्त्रेण प्रणवेन युतेन च॥ (क्रियासार) यह मन्त्र भी जपते हुए भिन्न-भिन्न अंगों में भस्म को धारण किया जा सकता है— ॐ त्र्यायुषं जगदग्नेरिति ललाटे। ॐ कश्यपस्य त्र्यायुषमिति ग्रीवायाम्। ॐ यद्देवेषु भुजायाम्। ॐ तन्नो अस्तु त्र्यायुषमिति हृदये।

भस्म को फाल, दोनों भुजाओं पर, हाथों, मणिबन्ध, गले, उदर और उसके आजू-बाजू, पीठ पर, भ्रुवों, बरौनी और कानों— इस प्रकार अठारहों अंगों पर मध्यवर्ती तीनों अंगुलियों से पंचाक्षरी मंत्र का जाप करते हुए मनु के वंशजों को भस्म धारण करना चाहिए।

प्रातः संध्यां ततः कुर्यादुदये भानुमण्डले।
सूर्यं मनुमयं ध्यात्वा विश्वकर्मा कुलोद्भवम्॥ 17॥
पुनराचम्य गायत्रीं यथाशक्ति जपेत्ततः।
गुरुपदेश मन्त्रञ्च सहस्रं च जपेत्ततः॥ 18॥

इसके बाद उदय होते सूर्य मण्डल को लक्ष्य करते हुए प्रातः संध्यावन्दन करना चाहिए। विश्वकर्मा कुल में उत्पन्न जन मनुमय मन्त्र स्वरूप सूर्य भगवान् का ध्यान करें और पुनः आचमन करके गायत्री मन्त्र का यथाशक्ति जाप करें और गुरु के उपदेश से जो मन्त्र मिला हो[१], उसका हजार बार जाप करना चाहिए।

ध्यान के श्लोक आगे दिए जा रहे हैं—

नमः सवितृे जगदेक चक्षुषे
जगत्प्रसूति स्थिति नाश हेतवे।
त्रयीमयाय त्रिगुणात्मधारिणे
विरिञ्चि नारायण शङ्करात्मने॥ 19॥

उन सविता देवता को नमस्कार जो इस संसार के एक मात्र नेत्र स्वरूप हैं। इस जगत की उत्पत्ति, स्थिति और विनाश के हेतु हैं। इस तरह जो तीनों रूपों को धारण करते हैं और सत्त्व, रज एवं तम तीनों गुणों को आत्मस्थ करते हैं और इसीलिए ब्रह्मा, विष्णु और शंकर हैं।

ध्येयः सदा सवितृमण्डलमध्यवर्ती
नारायणः सरसिजासन सन्निविष्टः।
केयूरवान्मकरकुण्डलवान् किरीटि
हारीहिरण्यमयवपुर्धृत शङ्ख चक्रः॥ 20॥

सर्वदा सूर्यमण्डल के मध्यवर्ती भगवान् नारायण का ध्यान करना चाहिए। वह कमल के आसन पर विराजमान हैं। वह केयूर, मकर कुण्डल सहित किरीट

---

१. जाप में इस विश्वकर्माष्टाक्षरी मन्त्र को भी जपा जा सकता है—ॐ नमो विश्वकर्मणे। पंचाक्षरी मन्त्र है— ॐ नमः शिवाय। नारायणाष्टाक्षरी मन्त्र हैं— ॐ नमो नारायणाय।

मुकुट और हार को धारण क
शंख और चक्र को आयुध रू

यावच्छक्ति विपश्चि
एवं कुर्यादनुष्ठानं नि

जितना सामर्थ्य हो, उ
का अध्यापन करवाना चाहिए
नित्य अनुष्ठान करना चाहिए।

शिवालये शिवं नत
ततो यज्जीवनं काय

हे राजन्! इसके उप
करें और पुनः अपने घर आ
कार्य का निर्वाह करना चाहि

पार्थिवा-ऽऽमात्य-
अनुसृत्य स्वशिष्या

यदि वह ब्राह्मण शि
सामन्तों, पौर (पुरजन) अ
आवश्यक शिल्प सम्बन्धी क
जीवनोपयोगी कर्मों की शिक्षा

स्वकुलाचार निरत
अभिज्ञः कर्मकुशल
मनुवंश समुद्भूतः अ
अज्ञान् सम्बोधयन्दु

अपने कुलाचार में
अभिवृद्धि करने वाला, शास्त्र
कुशल, शिष्यजनों को समान
वाला आचार्य होता है। वह
और श्रेष्ठजनों को प्रसन्न करते

नियम्य याममाचार्य
अवेहि पृथिवीनाथ

मुकुट और हार को धारण करते हैं। उनकी काया हिरण्यमय हैं और वे हाथों में शंख और चक्र को आयुध रूप में धारण करते हैं।

यावच्छक्ति विपश्चिच्च शिष्यानध्यापयेद्ध्विजः।
एवं कुर्यादनुष्ठानं नित्यं षण्णाडिकावधि॥ 21॥

जितना सामर्थ्य हो, उसके अनुसार शिष्यों को स्थापत्य वेद इत्यादि शास्त्रों का अध्यापन करवाना चाहिए। इस प्रकार नित्य छह नाड़िकाओं की अवधि तक नित्य अनुष्ठान करना चाहिए।

शिवालये शिवं नत्वा स्वस्य गेहं प्रविश्य च।
ततो यज्जीवनं कार्यं दृढं तत्कुशलः प्रभोः॥ 22॥

हे राजन्! इसके उपरान्त शिवालय में पहुँचकर भगवान् शिव को नमन करें और पुनः अपने घर आकर आएँ। इसके बाद जीवन निर्वाह के लिए वृत्ति-कार्य का निर्वाह करना चाहिए।

पार्थिवा-ऽऽमात्य-सामन्त-पौर-राजपुरोहितान्।
अनुसृत्य स्वशिष्याणां जीवनं कर्मबोधयेत्॥ 23॥

यदि वह ब्राह्मण शिल्पाचार्य हो तो राजाओं, आमात्यों (मन्त्रियों), सामन्तों, पौर (पुरजन) अथवा राजपुरोहितों के यहाँ जीवन निर्वाह के लिए आवश्यक शिल्प सम्बन्धी कार्यों को करें। यही नहीं, उसको अपने शिष्यों को जीवनोपयोगी कर्मों की शिक्षा भी देनी चाहिए।

स्वकुलाचार निरतः कुलाचारः विवर्धनः।
अभिज्ञः कर्मकुशलः शिष्येषु समदर्शनः॥ 24॥
मनुवंश समुद्भूतः आचार्यः परिकीर्तितः।
अज्ञान् सम्बोधयन्दुष्टान् शिक्षयन् हर्षयन्सतः॥ 25॥

अपने कुलाचार में निरत रहने वाला, कुल के आचार-व्यवहार की अभिवृद्धि करने वाला, शास्त्र-व्यवहारविज्ञ, कुलगत शिल्पीय कर्मों को करने में कुशल, शिष्यजनों को समान दृष्टि से देखने वाला और मनुवंश में उत्पन्न होने वाला आचार्य होता है। वह अज्ञानियों को ज्ञान देता है, दुष्टों को सीख देता है और श्रेष्ठजनों को प्रसन्न करते हुए रहता है।

नियम्य याममाचार्यः कारयेन्मनुवंशजः।
अवेहि पृथिवीनाथ! कर्मजीवनकारणम्॥ 26॥

मनु वंशज शिल्पाचार्य को अपने ऐसे दैनन्दिन नियम को प्राय: एक याम (एक पहर) तक निर्धारित रखना चाहिए। हे पृथ्वीनाथ! कर्म ही जीवन का कारणभूत है।

ततः स्नात्वा पुनर्भूतिं लिप्त्वा माध्याह्निकं तथा।
औपासनं च कृत्वाग्नौ देवपूजां समारभेत्॥ 27॥

इसके बाद स्नानकर भस्म धारण करके मध्याह्न संध्या करें। गृह्याग्नि (गृहस्थ से सम्बद्ध अग्नि) में हवनादि करके देवपूजन कार्य आरम्भ करें।

कारुश्च स्फाटिकं लिङ्गं तक्षा मरकतं तथा।
शुल्बी रत्नं शिल्पी नीलं सुवर्णमत्वर्कशालिकः॥ 28॥

जो कारु (लौहकर्मी) हों, उनको स्फाटिक के बने लिंग की पूजा करनी चाहिए। तक्षणकर्मकर्ता को मरकत (पन्ना) से बने शिवलिंग, शुल्बी (डोरक का काम करने वाले या ताम्रकार) को माणिक्य के शिवलिंग, शिल्पीजनों को नील के बने शिवलिंग और सुवर्णकार को सोने से बने (या अर्क निर्मित) शिवलिंग की पूजा करनी चाहिए।

श्वेतपुष्पाक्षताश्चैव श्वेतमाल्याम्बराणि च।
श्वेतद्रव्याणि गन्धाश्च कारुणाञ्च विशेषकृत॥ 29॥

पूजा कार्य के निमित्त कारुजनों को विशेष रूप से सफेद पुष्प, अक्षत, सफेद माला, सफेद वस्त्र, सफेद द्रव्य और गन्धादि का प्रयोग करना चाहिए।

गन्धपुष्पाक्षताः सर्वे श्यामलाः श्यामलांशुकाः।
पूजने धारणे चैव तक्षकाणां विशेषकृतः॥ 30॥

जो काष्ठकर्मकार तक्षणकर्ता हों, उनको पूजा कार्य के लिए गन्ध, पुष्प, अक्षत सभी पूजा सामग्री को श्यामल रंग वाली प्रयोग में लानी चाहिए। पूजा में धारण करने योग्य उनके वस्त्र भी श्यामल ही होना चाहिए।

वस्त्रपुष्पाक्षतागन्धा रक्तद्रव्याणि सुव्रत!।
शुल्बिनां विहिताश्चैव सर्वाण्यपि तथैव च॥ 31॥

हे सुव्रत! शुल्बियों (त्वष्ट्रा वंशियों) के लिए पूजार्थ लाल वस्त्र, लाल पुष्प, अक्षत, गन्ध और लाल द्रव्यों का उपयोग निर्धारित है। उनके लिए सभी सामग्री लाल ही होनी चाहिए।

नीलगन्धाश्च पुष्पाणि नीलमाल्याम्बराणि च।
नीलद्रव्याणि सर्वाणि शिल्पिनां च विशेषकृत॥ 32 ॥

शिल्पियों (शिला से सम्बद्ध कर्म करने वाले) के लिए नील वर्णीय सामग्री होनी चाहिए। गन्ध, नीले पुष्प, नीली माला, नीले वस्त्र और समस्त द्रव्यादि नीले ही होने चाहिए।

पीतचन्दनपुष्पानि पीतमाल्याम्बराणि च।
पीतद्रव्याणि सर्वाणि विहितान्यर्कशालिनाम्॥ 33 ॥

विश्वज्ञ के वंशजों के लिए पूजा कार्यार्थ पीला चन्दन, पीले पुष्प, पीले फूलों की माला, पीले वस्त्रानुलेपन और समस्त पूजा योग्य द्रव्य पीले ही होने चाहिए।

एवं नित्यं महादेवं पूजयित्वा दृढव्रतः।
अर्पयेदथ नैवेद्यं रसैः षड्भिः समन्वितम्॥ 34 ॥

इस प्रकार महादेव की नित्य पूजा दृढ़ संकल्प करके (व्रत-दीक्षापूर्वक) करनी चाहिए। पूजा में षट्रस युक्त नैवेद्य अर्पित करना चाहिए।

एवं कुर्वन्नित्यकर्म प्रीतये विश्वकर्मणः।
अर्पयेत्सकलं तस्मै तत्फलं श्रद्धया विभो॥ 25 ॥

हे राजन्! इस प्रकार नित्यकर्म को भगवान् विश्वकर्मा की प्रसन्नता के लिए करना चाहिए और प्राप्य समस्त कर्मफल को उनको ही समर्पित कर देना चाहिए।

इति श्रीकालहस्तिमुनि प्रणीत श्रीविश्वकर्मपुराणे नित्यकर्मकर्त्तव्यं वर्णनं नाम द्वाविंशोऽध्यायः॥ 22 ॥

इस प्रकार कालहस्ति मुनि द्वारा प्रणीत श्रीविश्वकर्मपुराण में नित्यकर्म कर्त्तव्य वर्णन नामक बाईसवाँ अध्याय पूरा हुआ।

अथ त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ 23 ॥

मुनि उवाच —

गर्भाधानादि कर्माणि ततो नैमित्तिकानि च।
प्रवक्ष्ये विधिवत्तुभ्यं शृणु सुव्रत भूपते॥ 1 ॥

हे महाराज सुव्रत! अब मैं तुमसे नैमित्तिक कर्मों के प्रसंग में गर्भाधानादि संस्कारों के बारे में शास्त्रसम्मत रूप से कहूँगा। सुनियेगा।

प्रथमं तेषु दाराणां गर्भाधानं प्रकीर्तितम्।
रजोदर्शनतः पूर्वं न कुर्यात्सङ्गमं सुधीः॥ 2 ॥

इन संस्कारों में पहला स्त्रियों के लिए गर्भाधान संस्कार कहा गया है। बुद्धिमान को कभी रजोदर्शन होने से पूर्व युवती के साथ सहवास नहीं करना चाहिए।

दम्पती मङ्गलस्नानं कारियेयुर्वराङ्गनाः।
गन्धमाल्यैराभरणैरलङ्कृत्यामालाम्बरैः॥ 3 ॥

इस संस्कार के लिए समझदार महिलाओं को चाहिए कि वे दम्पति को मांगलिक स्नान करवाएँ। उनको गन्ध-माला-आभरण-वस्त्रादि से अलंकृत करें।

आहूय ब्राह्मणाः सर्वानाचार्यान्विश्वकर्मणः।
कृत्वाभ्युदयिकं कर्म ब्राह्मणैः सहभोजयेत्॥ 4 ॥

इसके बाद समस्त विश्वकर्मीय विप्रों को आमन्त्रित करें। वे दम्पति के लिए आभ्युदयिक कर्म करें और उनके लिए सहभोज दिया जाए।

ततो वधूगृहं गच्छेन्निशायां वृद्धभूसुरैः।
स्त्रीसङ्घैरावृतो यानैर्नृत्तगीतादि विभ्रमैः॥ 5 ॥

जब रात्रि हो जाए, तो वरांगनाएँ और वृद्ध ब्राह्मण वधू के कक्ष में जाएँ। वहाँ पर स्त्रियों का समुदाय मिल-बैठकर नृत्त, गीतादि सहित नाट्य का आयोजन करें।

तत्र नीराजितो गेहे प्रविष्याचार्य सम्मताम्।
शुभासने स्थितो वध्वा कुर्यात्पुण्याहवाचनम्॥ 6 ॥

उस कक्ष में इस अवसर पर आए आचार्य की सम्मति से नीराजन (आरती) का आयोजन करना चाहिए। अच्छे आसन पर वधू को बिठाकर पुण्याह वाचन करना चाहिए।

दक्षिणादिभिरभ्यर्चय आचार्यान् ब्राह्मणानपि।
अन्तःपुरं प्रविशतां दम्पती तावलङ्कृतौ ॥ 7 ॥

इसके बाद आचार्य और अन्य संघस्थ ब्राह्मणों को दक्षिणादि प्रदान कर उनकी अभ्यर्चना करें और अलंकृत दम्पति को अन्तःपुर में प्रवेश करना चाहिए।

ततः प्रति ऋतौ कुर्यात्वभार्यायां सुसङ्गमम्।
ऋत्वतिऽक्रमणे राजन्! भ्रूणहत्या प्रजायते ॥ 8 ॥

इसके बाद, प्रत्येक ऋतुकाल में पति को अपनी पत्नी के साथ सहवास करना चाहिए। हे राजन्! यदि ऋतुमति के साथ सहवास नहीं किया जाए तो यह भ्रूणहत्या के समान पाप समझना चाहिए।

कुरूपात्कलहाद्यो वा निषिद्ध दिवसान्विता।
त्यजेद्दतुमतीं भार्यां स याति नरकं ध्रुवम् ॥ 9 ॥

यदि कोई पुरुष निषिद्ध दिवसों को छोड़कर अपनी ऋतुमति पत्नी के कुरूप होने अथवा कलह के कारण सहवास का त्याग करता है तो वह निश्चित ही नरक का अधिकारी होता है।[१]

अनागतार्तवां कन्यां नवोढां चैव पुष्पिणीम्।
दिवा च पर्वकालेषु न कुर्यादङ्गना रतिम् ॥ 10 ॥

जिसको ऋतुचक्र नहीं आया हो, कन्या हो, नवेली अथवा पुष्पवती हो उसके साथ दिन के समय और पर्वकाल (अष्टमी, चतुर्दशी, अमावस्या और सूर्य की सङ्क्रान्ति) में रतिकर्म नहीं करना चाहिए।

न कुर्यात् परदारेषु रतिमाचार्य वंशजः।
कृत्वा तु नरकं याति यावदाभूत विप्लवम् ॥ 11 ॥

---

१. ऐसी ही स्मृतिकार पराशर और शातातप की उक्ति है कि स्त्री के ऋतुस्नान करने के उपरान्त यदि पति उससे सहवास नहीं करता है तो वह घोर भ्रूणहत्या करता है और उसके पाप का निसन्देह भागीदारी होता है— ऋतुस्नातां तु यो भार्यां सन्निधौ नोपगच्छति। घोरायां भ्रूणहत्यायां पच्यते नात्र संशयः॥ (मुहूर्तचिन्तामणि पीयूषधारा टीका 5, 7; बृहद्दैवज्ञरञ्जनम् 49, 105)

जो मनु शिल्पाचार्य के वंश में उत्पन्न हुआ हो, उसको पराई स्त्री के साथ संगम नहीं करना चाहिए। यदि कोई ऐसा करता है तो वह प्रलयकाल तक नरक में रहता है।[१]

आचार्यवंशजो वीर्यं नोत्सृजेदन्ययोनिषु।
यथा विषं सर्पदंष्ट्रे क्षिप्तं दुग्धं भविष्यति॥ 12॥
स्वपत्न्या धार्यते गर्भो विश्वकर्मकुलोद्भवः।

शिल्पाचार्य के वंश में जन्म लेने वाले पुरुष को कभी पराई स्त्री की योनि में अपने वीर्य का त्याग नहीं करना चाहिए। जैसे साँप के दाँत के छूने पर दूध तत्काल विष बन जाता है, वैसे ही वह रेतस् विषरूप दुष्परिणाम देता है। अतः विश्वकर्मकुल में उत्पन्न होने वाले को अपनी पत्नी को ही गर्भधारण का अवसर देना चाहिए।

तृतीये मासि कर्त्तव्यं कर्म पुंसवनाख्यकम्॥ 13॥
सुदिने पुंसनक्षत्रे सुलग्ने मनु वंशजः।
आचार्यवर्यानाहूय मङ्गलस्नानमाचरेत्॥ 14॥

गर्भाधान हो जाने के तीसरे महीने पुँसवन नामक संस्कार करना चाहिए। इसके लिए मनु वंशजों को शुभ दिवस (सोम, बुध, गुरु व शुक्रवार), पुरुष नक्षत्र (श्रवण, पुष्य, स्वाती, हस्त, पुनर्वसु, मूल, रेवती, अनुराधा, मृगशिरा), शुभ लग्न (2, 3, 4, 6, 7, 9, 12) का संयोग देखना चाहिए। वहाँ पर आचार्यवर्य को आमन्त्रित करके गर्भवती स्त्री को मंगलस्नान करवाना चाहिए।

अभ्यर्चय विश्वकर्मण्य सभां गन्धाक्षतादिभिः।
पुण्याहवाचनं कुर्यात्पुण्यस्त्रीभिः समावृतः॥ 15॥

वहाँ संक्षिप्त सभा आयोजित करें और उसमें गन्ध, अक्षतादि से भगवान् विश्वकर्मा की अभ्यर्चना करनी चाहिए। इस अवसर पर स्त्रियों का समुदाय भी उपस्थित रहे और पुण्याहवाचन, बधावों का गान होना चाहिए।

दम्पत्योर्गर्भ शुद्ध्यर्थं सुवर्ण कलशोदकैः।
पञ्चामृतैश्च कर्त्तव्यमाचार्यस्याभिषेचनम्॥ 16॥

---

१. यूं तो पराई स्त्री से अनुराग सबके लिए निषिद्ध है तथापि देवताओं की प्रतिष्ठा करने करने वाले शिल्पाचार्य के वंशजों के लिए यह सर्वथा अकरणीय है— न गच्छेत् कदापि परयोषां शिल्पाचार्यवंशजाः।

इस बीच आचार्य को गर्भ शुद्धि के लिए सुवर्ण कलश में भरे जल और पंचामृत से उस दम्पति का अभिषेक कार्य करना चाहिए।

ततः पञ्चामृतं पत्नीं प्राशयेदुक्तमन्त्रतः।
सर्पिर्दधिमधुक्षीरशर्कराशुद्धवारिभिः ॥ 17 ॥

इसके बाद, गर्भवती स्त्री को पंचामृत का पान करवाना चाहिए। यह पंचामृत घी, दही, शहद, दूध, शक्कर व शुद्ध जल मिलाकर बनाया जाता है। इसके पीते समय पुरोहित को निम्न मन्त्रों का पाठ करना चाहिए—

''मांसपिण्डेषु मध्यस्थ मत्पत्नी गर्भगोलकः।
मन्त्रपिण्डं करिष्यामि यथाचार्य प्रसादतः ॥
अनन्तकोटि पूर्वेषां जन्मनामेव सूतकान्।
परिपूतो भवाचार्य पत्नी जठर संस्थितः ॥
सर्वेषां गर्भ संस्थानां प्रसवानां सुधाकरः।
असि जातं च नित्यत्वं रक्षको मृतदायकः ॥
विश्वब्रह्मकुलाचार योग्यता सिद्ध्येऽधुना।
प्रथमो गर्भसंस्कारः कृतस्त्वांस पुनाति हि ॥''

उपर्युक्त श्लोकों का पाठ करते हुए गर्भवती को पुँसवन संस्कार के लिए पंचामृत-प्राशन करवाना चाहिए।

इति पञ्चामृत प्राश्य वीणागानं सुशोभनम्।
श्रद्धया दम्पती चन्द्रस्तुतिमाचार्यमण्डले ॥ 18 ॥

इसी प्रकार पंचामृत का पान करते समय सुन्दर वीणावादन और गीतों का गान हो और दम्पति को आचार्य मण्डल के बीच श्रद्धापूर्वक चन्द्रस्तुति[१] करनी चाहिए।

---

१. चन्द्रमा की स्तुति के मूल में इस बात की पुष्टि होती है कि पूर्वकाल में यह संस्कार उस समय किया जाता था जबकि चन्द्रमा किसी पुरुष नक्षत्र में होता था। यह कालावधि पुंसन्तति की उत्पत्ति में मददगार समझी जाती थी। (हिन्दू संस्कार : राजबली पाण्डेय, पृष्ठ 76) यूं पुँसवन और सीमन्त संस्कार में स्त्री का चन्द्रबल ही ग्रहण किया जाता रहा है, इस प्रसंग में गर्ग का मत है— अथ पुंसवनं कुर्यात् तृतीये मासि पुंस्त्विदम्। शुक्लपक्षे च पूर्वाह्ने चन्द्रताराबलान्विते ॥ (बृहद्दैवज्ञरञ्जनम् 50, 9)

सुपुत्रावाप्तये कुर्यात्फलदानं सदक्षिणाम्।
दातव्यं गुरवे वध्वा यन्मनोरथ भक्षणम्॥ 19॥

सुपुत्र की प्राप्ति हो, इसके लिए गुरु को सदक्षिणा फलदान करना चाहिए। बाद में गर्भवती स्त्री को अपनी इच्छा के अनुसार भोजन करना चाहिए।

पतिः प्रसूतिपर्यन्तं क्षौरकर्म विसर्जयेत्।
दूरयात्रां शवोद्वाहं परान्नं गिरिरोहणम्॥ 20॥

पति को चाहिए वह पत्नी के प्रसव होने तक अपना क्षौरकर्म नहीं करवाएँ। उसको दूर की यात्रा नहीं करनी चाहिए, मुर्दा को नहीं उठाना चाहिए। पराये अन्न को नहीं खाएँ और किसी पर्वत पर आरोहण नहीं करें।

इत्येवं प्रथमे गर्भे कृते सीमन्तकर्मणि।
परिशुद्धा भविष्यन्ति सर्वगर्भा महीपते॥ 21॥

हे महीपति! इसी प्रकार प्रथम गर्भ के समय सीमन्तोन्नयन संस्कार करना चाहिए। इससे भविष्य के सभी गर्भ भी परिशुद्ध हो जाएँगे।

इति श्रीकालहस्तिमुनि प्रणीत श्रीविश्वकर्मपुराणे गर्भाधानपुंसवनादि नैमित्तिककर्म वर्णनं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः॥ 23॥

इस प्रकार कालहस्ति मुनि द्वारा प्रणीत श्रीविश्वकर्मपुराण में गर्भाधान पुंसवनादि नैमित्तिक कर्म वर्णन नामक तेईसवाँ अध्याय पूरा हुआ।

अथ च

मुनि उवाच —

ततः कुमारजनने
कृते पितृऋणान्मु

मुनि आगे बोले—
जन्म हो जाए तब जातक
पितृऋण से मुक्त हो जाता है

कुमारजननं शृत्वा
स्नायात्सगोत्रजैः
तन्मज्जनेप्युत्पतनि
तावद्वर्ष सहस्राणि

यदि पुत्र जन्म का
हुए अपनी गोत्र में उत्पन्न
लगाकर स्नान करना चाहि
पानी की जितनी बूँदे आस
स्वर्ग में निवास करते हैं।

ततः शिशोर्नाभि
निबद्धश्छेदयेन्मा

स्नानान्तर पिता के
की नाभि से अलग करन
चाहिए।

ततः सर्वान् ज्योि
अर्चयेद्गन्धपुष्पाद्यै

इसके बाद समस्त
और गन्ध, पुष्पादि अर्चना

जन्मलग्नं समाक
पत्रिकालेखनं कृ

अथ चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ 24 ॥

मुनि उवाच —

ततः कुमारजनने कर्त्तव्यं जातकर्म च।
कृते पितृऋणान्मुक्तो भविष्यति न संशयः ॥ 1 ॥

मुनि आगे बोले— पूर्वोक्त सीमन्तोन्नयन संस्कार के बाद, जब शिशु का जन्म हो जाए तब जातकर्म संस्कार करना चाहिए। इस संस्कार से गृहस्थ पितृऋण से मुक्त हो जाता है, इसमें संशय नहीं है।

कुमारजननं शृत्वा जलेतूर्णं निपत्य च।
स्नायात्सगोत्रजैः कर्ता प्रयोदरस सम्प्लुतः ॥ 2 ॥
तन्मज्जनेप्युत्पतन्ति यावन्तो बिन्दवो नभः।
तावद्वर्ष सहस्त्राणि पितृणां स्वर्ग संस्थिति ॥ 3 ॥

यदि पुत्र जन्म का समाचार मिले तो तत्काल प्रसन्नता से अभिभूत होते हुए अपनी गोत्र में उत्पन्न जनों के साथ नदी या तालाब पर पहुँचकर डुबकी लगाकर स्नान करना चाहिए। इस अवसर पर पानी में कूदने-डुबकी लगाने से पानी की जितनी बूँदे आसमान की ओर उठती हैं, उतने ही वर्षों तक उनके पितर स्वर्ग में निवास करते हैं।

ततः शिशोर्नाभिनालं यज्ञसूत्रेण तत्पितुः।
निबद्धश्छेदयेन्माता स्नापयेदुष्णवारिणि ॥ 4 ॥

स्नानान्तर पिता के यज्ञोपवीत के धागे से शिशु के नाल को बाँधकर जच्चा की नाभि से अलग करना चाहिए और शिशु को गर्म जल से स्नान करवाना चाहिए।

ततः सर्वान् ज्योतिषज्ञानाचार्यांश्च पुरोहितान्।
अर्चयेद्गन्धपुष्पाद्यैः संविश्य गृहमण्डपे ॥ 5 ॥

इसके बाद समस्त ज्योतिषज्ञान के आचार्यों व पुरोहितों को आमन्त्रित करें और गन्ध, पुष्पादि अर्चना करके उनको घर के मण्डप में विराजित करें।

जन्मलग्नं समाकर्णय नक्षत्राणां दशाफलम्।
पत्रिकालेखनं कृत्वा शिशोर्जीवनवृद्धये ॥ 6 ॥

वहीं पर ज्योतिषाचार्य को चाहिए कि वह नवजात शिशु के जन्मलग्न और नक्षत्रों के आधार पर दशा फल को सुनाए। शिशु के जीवन की अभिवृद्धि की कामनापूर्वक पत्रिका का लेखन कार्य करें।

जननी जन्म सौख्यानां वर्धनी कुलसम्पदाम्।
पदवीपूर्वपुण्यानां लिख्यते जन्मपत्रिका॥ 7॥

जन्म पत्रिका में शिशु के पदचिह्न बनाएँ और उनसे पूर्व पुण्यवचनों को लिखना चाहिए। इसका आरम्भ 'जननी जन्म सौख्यानां वर्धनी कुलसम्पदाम्' जैसे वाक्य[१] से करना चाहिए।

पुत्रोत्सवे ब्राह्मणेभ्यो दातव्या भूरिदक्षिणाः।
सुवर्णानि च वस्त्राणि शतशोथ महीपते॥ 8॥

हे महीपते! पुत्र के जन्मोत्सव के अवसर पर ब्राह्मणों को अच्छी दक्षिणा दी जानी चाहिए। दक्षिणा के रूप में सुवर्ण, वस्त्रादि सैकड़ों हो सकते हैं।

बालग्रहविनाशाय सदाऽस्मिन् सूतिकागृहे।
आद्वादशदिनं राजन् कर्त्तव्यं चाग्नि रक्षणम्॥ 9॥

---

१. मानसागरी में जन्मपत्रिका में ऐसे ही अभिवृद्धिकारक वचन लिखने का निर्देश आया हैं— मैं उस जन्मपत्री को लिखता हूँ जो कि कल्याण, लक्ष्मी और सुख को विधान करने वाली है; मंगल कार्यों में उत्साह दिलाने वाली; पुत्र और समरांगण में विजय दिलाने वाली; तुष्टि और पुष्टि प्रदान करने वाली; अनेक प्रकार की सम्पत्तियों को सुलभ कराने वाली; धन, कुल, यश और आयु को बढ़ाने वाली, दुर्जन; विपत्ति और विघ्न का नाश करने वाली तथा सभी प्रकार के गुणों की आगार हैं—स्वस्ति श्रीसौख्यधात्री सुतजय जननी तुष्टिपुष्टिप्रदात्री माङ्गल्योत्साहकर्त्री गतभवसदसत्कर्मणां व्यञ्जयित्री। नानासम्पद्विधात्री धनकुलयशसमायुषां वर्धयित्री दुष्टापद्विघ्नहर्त्री गुणगण वसतिर्लिख्यते जन्मपत्री॥
जिस जातक की यह जन्मपत्री लिखी जा रही है, उसकी श्रीमान् सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, शुक्र, शनि, राहु, केतु ग्रह, गणेश, ब्रह्मा; महादेव और लक्ष्मीनारायण जैसे देवता सर्वदा रक्षा करें। मैंने फलादेश के लिए न तो जलयन्त्र का साधन किया न ही नक्षत्रों को ही किसी यन्त्र से देखा है, शंकु को भी धारण नहीं किया किन्तु मैं अन्यों के निर्धारित लिखित विचारों के आधार पर समय के अनुसार जातक का जन्मफल लिख रहा हूँ— श्रीमान् पङ्कजिनीपतिः कुमुदिनीप्राणेश्वरो भूमिभूः शाशाङ्किः सुरराजवन्दितपदो दैत्येन्द्रमन्त्री शनिः। स्वर्भानु शिखिनां गणो गणपतिब्रह्मेशलक्ष्मीधरास्तं रक्षन्तु सदैव यस्य विमला पत्री त्वियं लिख्यते॥ कृतं मया नोदकयन्त्र साधनं न भेक्षणं चापि न शङ्कुधारणम्। परोपदेशात् समयावबोधकं विलिख्यते जन्मफलं नराणाम्॥ (मानसागरी आदौ प्रशस्ति 1-8-9 इत्यादि)

हे राजन्! इसके बाद बालग्रहों (नवजात शिशु को पीड़ा पहुँचाने वाले उपग्रह) के प्रभाव के विनाश के लिए सूतिकागृह में बारह दिनों तक निरन्तर रक्षार्थ अग्निहोत्र का विधान करना चाहिए।

ततः तृतीये दिवसे राजतं शृङ्खलं क्रमात्।
कृत्वा विलोकयेत्पुत्रं पिता मनुकुलोद्भवम्॥ 10॥

इसके उपरान्त, मनु के कुल में उत्पन्न पुत्र को तीसरे दिन चांदी की करधनी (कणकती, कन्दौरा) धारण करवाएँ। इसके बाद पिता अपने पुत्र को देख सकता है।[१]

पुत्रिका नामकरणं कुर्यादेकादशेहनि।
पुत्रस्य नामकरणं कर्त्तव्यं द्वादशेहनि॥ 11॥

यह परम्परा रही है कि पुत्री का जन्म हुआ हो तो ग्यारहवें दिवस उसका नामकरण करना चाहिए। पुत्र का नामकरण जन्म के बारहवें दिन करें।[२]

मुण्डितो मङ्गलस्नानं कृत्वा पुत्रेण बान्धवैः।
सुवस्त्राभरणैर्देहमलङ्कृत्य ततः शुचिः॥ 12॥

इससे पूर्व क्षौरकर्म करवाएँ और पुत्र-बन्धुओं सहित मंगलस्नान करें। पवित्र होकर अच्छे वस्त्र, आभरण धारण करके देह को अलंकृत करें।

पुत्रेण पत्न्या संयुक्तंश्चासीनश्चासने शुभे।
कलशौ द्वौ पुरोधाय जलपूर्णौ सुपल्लवौ॥ 13॥
पूर्वाचार्यान्नमस्कृत्वा पुण्याहसलिनेन सः।

---

१. यह मान्यता रही है कि मय के वंशज सीसकशृंखल, त्वष्टा के वंशज ताम्रसूत्र, शिल्पीवंशज लोहशृंखल और विश्वज्ञ के वंशज सुवर्णसूत्र धारण करवाकर शिशु का मुखदर्शन करते हैं।

२. नारदसंहिताकार का मत है कि शिशु का जन्म जिस समय हुआ हो, उसी मुहूर्त में अथवा सूतक के समापन पर पितृपूजन (नान्दीश्राद्धादि) पूर्वक जातकर्म संस्कार किया जाना श्रेष्ठ है— तस्मिञ्जन्मुहूर्तेऽपि सूतकान्तेऽथवा शिशोः। जातकर्म च कर्तव्यं पितृपूजन पूर्वकम्॥ (नारदसंहिता 19, 1)
इस क्रम में श्रीपतिभटाचार्य आदि का मत है कि जातकर्म संस्कार पुत्र जन्म के अवसर पर ही किया जाता है— 'जातमात्र कुमारस्य जातकर्म विधीयते।' मृदु, ध्रुव, क्षिप्र और चर नक्षत्र के साथ यदि बृहस्पति और शुक्र लग्न में हो तब जातकर्म संस्कार किया जाना चाहिए— मृदुध्रुवरेषु भषुसूनो विधेयं खलु जातकर्म गुरौ भृगौ। वापि चतुष्टयस्थिसन्त प्रशंसन्ति व नामधेयम्॥ (ज्योतिषरत्नमाला 13, 2)

मार्जयेत्सर्वतोमन्त्रमुच्चरन्विश्वकर्मणः ॥ 14 ॥

इसके बाद पुत्र और पत्नी के साथ शुभ आसन (चौकी, बाजोट) पर बैठना चाहिए। उनके सामने की ओर दो कलशों को रखना चाहिए जो जल से भरे हुए हों और उन पर सुन्दर पत्तों को सजाया गया हों। इस स्थिति में पहले आचार्य को नमस्कार करें। पुण्याह जल को छिड़कते हुए उनका सभी ओर से मार्जन करें और इस बीच विश्वकर्मा के मन्त्रों का जाप करते रहें।

आनीय राजतं पात्रं परिपूरितं शुक्लतण्डुलैः।
सुवर्णेन च संलिख्य पुत्रनाम समाक्षरैः ॥ 15 ॥

वहीं पर उज्ज्वल चावलों से भरा चाँदी का एक पात्र लाएँ और उसमें सुवर्ण की कलम से पुत्र का नाम सुन्दर अक्षरों में लिखना चाहिए।

मनुवंश सुजातानामाचार्य इति संलिखेत्।
मयवंशेपि जातानामोज इत्यचेलापते! ॥ 16 ॥

हे पृथ्वीपते! यदि शिशु मनु के शुभ वंश में जन्मा हो तो नाम के अन्त में आचार्य लिखना चाहिए। मय के वंश में जन्म हुआ हो तो अन्त में ओज शब्द को लिखना चाहिए।

आचार्योऽयं सदाचारादोङ्कार जननात्क्रमात्।
कथयन्त्योज इत्यार्चा भक्तास्त्वार्य भक्तितः ॥ 17 ॥

उक्त शिशु अपने सदाचार के कारण 'आचार्य' है, ओंकार से जन्म लेने के कारण 'ओज' और आचार्यों के प्रति भक्ति रखने के कारण 'भक्त' कहा जाएगा, ऐसा आचार्य का वचन है। (यथा— मन्वाचार्य, रामोजु, विश्वकर्मा, भक्त इत्यादि)

पिता पुष्पाज्यक्षतांश्च पुत्रमूर्धनि विकीर्य च।
दीर्घायुर्भव पुत्रेति व्याहरेदन्य नाम च ॥ 18 ॥

इस विधि से नामकरण करने के बाद पिता और पुत्र के सिर पर पुष्प, घृत और अक्षत को छिड़कना चाहिए तथा 'पुत्र दीर्घायु हो' ऐसा आशीर्वाद देना चाहिए। प्रेम से व्यवहार के लिए अन्य नाम भी दिया जा सकता है।

त्रिवारमुच्चरेत्कर्णे दक्षिणे चाक्षरैः समैः।
आशीषं च ततो लभद्वादावयेद्भूरिदक्षिणाम् ॥ 19 ॥

पिता को चाहिए कि वह पुत्र के दक्षिणी कान में तीन बार समान रूप से

नामाक्षरों को बोले। इसके बाद सभा में विद्यमान लोगों को दक्षिणा प्रदान कर आशीर्वाद लेना चाहिए।

इति श्रीकालहस्तिमुनि प्रणीत श्रीविश्वकर्मपुराणे जातकर्मादिसंस्कार वर्णनं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ 24 ॥

इस प्रकार कालहस्ति मुनि द्वारा प्रणीत श्रीविश्वकर्मपुराण में जातकर्मादि संस्कार वर्णन नामक चौबीसवाँ अध्याय पूरा हुआ।

अथ पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ 25 ॥

मुनि उवाच —

ततः पुत्रं मातुलादि बन्धूनां निनयेद्गृहम्।
कारयित्वा मङ्गलार्थं स्नानं मासे तृतीयके ॥ 1 ॥

मुनि कालहस्ति ने आगे कहा— जन्म के तीसरे मास जच्चा-बच्चा को मंगलस्नान करवाएँ और मामा तथा अन्य भाइयों को चाहिए कि वे दोनों को ही अपने घर ले जाएँ।

एतन्निष्कृति कर्मेति कर्त्तव्यं नृपसत्तम!।
मास्येव विषमे युग्मे न कर्त्तव्यं कदाचन ॥ 2 ॥

हे नृपसत्तम! यह निष्क्रमण संस्कार कहा गया है। इस संस्कार को विषम महीनों (3, 7, 9 आदि) में करना चाहिए। युग्म मासों (2, 4, 6 आदि) में यह संस्कार नहीं करें।[१]

तत्रोपायन दानानि फलपूपयुतानि च।
दत्वा नीराजितं बालं स्वगृहं निनयेत्पुनः ॥ 3 ॥

मामा या बन्धुजनों के घर पर फल और मालपूआ आदि व्यंजनों को उपहार के रूप में वितरित करना चाहिए। वहीं आरती के बार बालक को पुनः अपने घर ले जाना चाहिए।

पुरन्ध्रीमङ्गलालापैर्डोलायां स्थाप्यतं शिशुम्।
लालयेच्चरितैर्माता श्रीपतेर्मुखैरिणः ॥ 4 ॥

शुभ दिवस देखकर सौभाग्यवती प्रौढ़ महिलाओं को चाहिए वे मंगलगान करते हुए शिशु को पालने में पौढ़ाएँ। माता को चाहिए वह लाड़-लड़ाते हुए शिशु को भगवान् विष्णु के चरित्र से सम्बन्धित कोई लोरी भी सुनाएँ।

---

१. निष्क्रमण के लिए यम का मत है कि तीसरे मास में सूर्य का दर्शन और चौथे सावन मास में चन्द्रदर्शन कराएँ तथा शिशु को घर से निकालना चाहिए— तृतीये मासि कर्तव्यमहःसूर्यस्य दर्शनम्। चतुर्थे मासि कर्तव्यमग्रेश्चन्द्रस्य दर्शनम्॥ उपनिष्क्रमणं कुर्याच्चतुर्थे मासि सावने। (ज्योतिर्निबन्ध पृष्ठ 115, श्लोक 2)

ततस्तु षष्ठे सम्प्राप्ते मासेन्नप्राशनं शुभे।
लग्ने शुभैर्ग्रहैर्युक्ते कुर्याच्चविधिवच्छिशोः ॥ 5 ॥

इस तरह छठवें महीने में जब ग्रह शुभ स्थान में हो और अच्छा लग्न[1] हो तब शिशु के अन्नप्राशन संस्कार की विधि को सम्पादित करना चाहिए।

अन्नानि बहुधा कुर्याद्रसैः षड्भिः सुसंयुतान्।
निक्षिपेद्भाजने तानि प्रत्येकं पुरतः शिशोः ॥ 6 ॥

अन्नप्राशन संस्कार के लिए षड्रस सहित नाना प्रकार के आहारों को बनाएँ और अलग-अलग पात्रों में परोसकर शिशु के सामने रखने चाहिए।

दध्यन्नं राजते पात्रे मध्वन्नं ताम्रपात्रके।
शुक्लान्नं सीसपात्रे च कांस्यपात्रे तु पायसम् ॥ 7 ॥
आज्योदनमयः पात्रे क्षीरान्नं स्वर्णपात्रके।
मृत्पात्रे पिष्टरचितं दारुपात्रे हविस्तथा ॥ 8 ॥

---

१. अन्नप्राशन के लिए धाराधिप भोजदेव का मत है कि छठे मास, शुभ चन्द्रमा, शुक्लपक्ष में प्रथम बार बालक को अन्नाहार शुभ होता है। हस्त, पुष्य, पुनर्वसु, रोहिणी, चित्रा, मृगशिरा, अनुराधा, अश्विनी, स्वाती, उत्तरा, धनिष्ठा, मघा, रेवती नक्षत्र में; रिक्ता तिथियों को छोड़कर, बुध, शुक्र, सोम, रवि, गुरुवार में, कन्या, मिथुन, वृष, मीन लग्न में शिशु को सर्वप्रथम अन्नाहार करवाया जाना शुभ होता है—षष्ठे मासे शुभे चन्द्रे पक्षे चाप्यसितेतरे। अन्नस्य प्राशनं कुर्य्याद्धिताय प्रथमं शिशोः॥ चित्रास्वाति पुनर्वसुर्मृगशिरः पुष्यानुराधा तथा रोहिण्युत्तररेवतीरविमघाप्राप्ताविशाखाश्विनी। देवाचार्य दिने रवौ भृगुसुते शीतांशुजे शीतगौ गोकन्यामिथुनोदयेष्वथ वृषे शस्तोन्नपाने शिशोः॥ हस्तः पुष्यपुनर्वसु कमलजत्वाष्ट्रेन्दुमैत्राश्विनी वायव्योत्तरवासवानिलमघा पौष्णेष्व रिक्ते तिथौ। वारेष्विन्दुज भार्गवेन्दुदिनकृद्वाचस्पतीनां शिशोरन्नप्राशनमङ्गना मिथुन गोमीनोदये शोभनम्॥ (राजमार्तण्ड 236-238)
ज्योतिर्विद् विट्ठलदीक्षित का मत है कि मृदु संज्ञक नक्षत्र, ध्रुव संज्ञक नक्षत्र, क्षिप्र संज्ञक नक्षत्र और चर संज्ञक नक्षत्रों (स्वाती, पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा) में; दिवस काल में; 1, 8 एवं 12 राशिगत लग्नों को त्यागकर; केन्द्र (1, 4, 7, 10), त्रिकोण (9, 5), तीसरे, ग्यारहवें और दूसरे स्थान में जब शुभग्रह हो तो अन्नप्राशन करवाना चाहिए। पापग्रह 3, 6 एवं 11वें स्थान में होने चाहिए। छठे, आठवें और बारहवें भाव का चन्द्रमा प्रशस्त नहीं होता है। शुक्लपक्ष की अष्टमी से लेकर कृष्णपक्ष की अष्टमी के मध्य, चन्द्रमा को बलवान देख अन्नप्राशन करवाना शुभ है— मृदुध्रुवक्षिप्रचराभिधाने त्र्यंशोनकृष्णेन्दुदिनांशलग्ने। अजालिमीनौनित लग्नकेऽपि केन्द्रत्रिकोणत्रिधनायसद्भिः॥ पापैस्त्रिषष्ठायगतैः खशुद्धौ व्ययाष्टषष्ठो न शशी प्रशस्तः। शुक्ला सिताष्टान्तरतः शुभः स्यात् कृष्णार्जुनाष्टान्तरसच्छशाङ्कः॥ (मुहूर्तकल्पद्रुम 12, 31-32)

पत्रावल्यान्तु शाकाश्च भूमौद्यात्फलानि च।
शूर्पेदद्यदपूपानि शिशोः सर्वाणि दर्शयेत्॥ 9॥

शिशु के सामने दहीभात को रजत के पात्र में रखें। मधु मिश्रित आहार को ताम्र के पात्र में, शुक्लान्न को सीसा के पात्र, खीर को कांस्यपात्र में, घृत मिले आहार को अयसपात्र में, क्षीरान्न को सुवर्णपात्र में, आटे से बनी रोटी आदि को मिट्टी के पात्र में, हवि योग्य सामग्री को काष्ठ के पात्र में, शाक-सब्जियों को पत्तल-दोनों में, फलों को भूमि पर और शूर्प में अपूप को रखकर शिशु को दिखलाना चाहिए (और उसकी प्रतिक्रिया देखनी चाहिए)।

दध्यन्नं संस्पृशन्भालो भवेदाचार संयुतः।
मध्वन्नमपि चायुष्मान् शुक्लान्नं चाङ्गपुष्टिमान्॥ 10॥
क्षीरान्नं स्याद्ब्रह्मतेजा अज्यान्नं च निरामयः।
मृत्पात्रपिष्टं रोगः स्यात् काष्ठस्थं दुर्विधो भवेत्॥ 11॥
शाकभुक्चपलो ज्ञेयः फलाशी सुमतिर्भवेत्।
प्राज्ञो भवेदपूपाशी सर्वभूक्सर्वपारगः॥ 12॥

यदि शिशु दहीभात को खाने के लिए पात्र को हाथ से छूता हो तो यह जानना चाहिए कि वह भविष्य में आचारवान बनेगा। शहद मिश्रित सामग्री को स्पर्श करें तो आयुष्मान व शुक्लान्न को स्पर्श करें तो बलवान होगा। क्षीरान्न के पात्र की ओर हाथ बढ़ाता हो तो ब्रह्म-तेजस्वी होगा। घी से बने आहार की ओर लपके तो वह जीवन में निरोगी होगा। मिट्टी के पात्र में रखी आटे की सामग्री को छूता हो तो रोगी होगा और यदि लकड़ी के पात्र को स्पर्श करे तो दरिद्र रहेगा। यदि शाक-सब्जियों को खाने की कोशिश करे तो चंचलचित्त और फलों को खाने की चेष्टा करे तो अच्छी बुद्धि वाला होगा। यदि पूपों को खाने का प्रयास करें तो प्राज्ञ होगा तथा सामने रखी समस्त खाद्य सामग्री खाने का प्रयास करें तो यह समझना चाहिए कि वह भविष्य में सर्वविद्या निष्णात बनेगा।

ततः तृतीये वर्षे तु चौलं कुर्याद्यथाविधिः।
नो चेत्तथोपनयने कार्यं तन्मन्त्रतो बुधैः॥ 13॥

जब शिशु तीन वर्ष का हो, उसका यथाविधि चौलकर्म या शिरो मुण्डन करवाना चाहिए। यदि किसी कारण से उस समय न हो सके तो समझदार को चाहिए कि उपनयन संस्कार के समय करवाया जाए।

कारुकस्योपनयनं कर्त्तव्यं पञ्चमाब्दके।
तक्षकाणान्तु षष्ठाब्दे त्वष्ट्राणां सप्तमाब्दके॥ 14॥
शिल्पिनामष्टमाब्दे तु सप्त(?नव)माब्देऽर्कशालिनाम्।

हे महाराज! कारुकर्मियों (मनु के वंशजों) को पाँच वर्ष में पुत्र का उपनयन संस्कार करना चाहिए। तक्षणकर्मियों (मय के वंशजों) को छह वर्ष में, त्वष्ट्रा (विश्वकर्मा) के वंशजों को सात वर्ष, शिल्पी (ब्रह्मकुल) के वंशजों को आठ और विश्वज्ञ के वंशजों को नवें वर्ष में बालक का उपनयन संस्कार करना चाहिए।

कारुणां च वसन्तौ ग्रीष्मे तु रथकर्मिणाम्॥ 15॥
त्वष्टुवाणाञ्च शरत्काले हेमन्तौतु शिल्पिनाम्।
क्रमादेवं महाराज! शैशिरेत्वर्कशालिनाम्॥ 16॥

उक्त क्रम से कारुकर्मियों हेतु इस संस्कार के लिए वसन्त ऋतु विहित है। रथकर्मियों के लिए ग्रीष्मकाल, त्वष्टा के वंशजों के लिए शरदकाल, शिल्पी वंशजों के लिए हेमन्त ऋतु और विश्वज्ञ वंशजों के लिए शिशिर ऋतु निर्धारित है।[1]

अनध्यांश्च सङ्क्रान्ति मौढ्यं च गुरु-शुक्रयोः।
विहाय चोपनयनं कुर्याल्लग्ने शुभे दिने॥ 17॥

जिन दिनों में अध्ययनकार्य नहीं होता हो, जब संक्रान्ति हो तथा गुरु और शुक्र का मूढत्व हो, उनको छोड़कर शुभ लग्न और शुभ दिन उपनयन संस्कार करना चाहिए।[2]

---

१. मनुस्मृति में यह व्यवस्था दी गई है कि विप्रादि के लिए 8, 11 एवं 12 वर्ष नित्यकाल है। इसी प्रकार 5, 6 एवं 8 वर्ष काम्यकाल कहा गया है। दुगुने समय 16, 22 एवं 24 वर्ष तक गौणकाल होता है। इसके बाद, बटुकों के लिए व्रात्य संज्ञा दी गई है। इन व्रात्यों के साथ पठन-पाठन, कन्यादान एवं पाक-सम्बन्ध सङ्कटकाल में भी नहीं करना चाहिए—
गर्भाष्टमेऽब्दे कुर्वीत ब्राह्मणस्योपनयनम्। गर्भादेकादशे राज्ञो गर्भात्तु दादशे विशः॥ ब्रह्मवर्चसकामस्य कार्यं विप्रस्य पञ्चमे। राज्ञो बलार्थिनः षष्ठे वैश्यस्येहार्थिनोऽष्टमे॥ आषोडशाद् ब्राह्मणस्य सावित्री नातिवर्तते। आद्वाविंशात् क्षत्रबन्धोराचतुर्विंशतेविशः॥ अत ऊर्ध्वं त्रयोऽप्येते यथाकालम- संस्कृताः। सावित्रीपतिता व्रात्या भवन्त्यार्यविगर्हिताः॥ नैतेरपूतैर्विधिवदापद्यपि हि कर्हिचित्। ब्राह्मान्यौनाश्च सम्बन्धानाचरेद् ब्राह्मणैः सह॥ (मनुस्मृति 2, 36-40)

२. केशव दैवज्ञ के अनुसार जिन तिथियों में अध्ययन कार्य नहीं होता, उनमें उपनयन संस्कार निषिद्ध होता है। परम्परानुसार समस्त महीनों में चतुर्दशी, पूर्णिमा, अमावस्या और प्रतिपदा; अष्टकाओं में; संक्रान्ति; महीनों में चैत्र एवं वैशाख के शुक्लपक्ष की तृतीया, ज्येष्ठ के

पूर्वेद्युः स्वकुलाचार्यान् सन्मन्त्र्य च सुवासिनीः।
तदाभ्युदयिकं कुर्वन्निष्टदेवान् समर्चयन्॥ 18॥

जिस दिन का मुहूर्त हो, उससे पहले ही अपने कुल के आचार्य, परामर्शदों और प्रौढ़ महिलाओं को न्यौतकर इष्टदेवता की आराधना करते हुए आभ्युदयिक कर्म का आचरण करना चाहिए।

होमकुण्डं प्रकुर्वीत मेखलात्रय शोभितम्।
हस्त प्रमाण विस्तारमुन्नतं त्रिंशदङ्गुलम्॥ 19॥

वहाँ पर होम के लिए कुण्ड का निर्माण करना चाहिए। वह कुण्ड तीन मेखलाओं वाला हों। उसका विस्तार एक हाथ और ऊँचाई तीस अंगुल के बराबर हों।

मनोस्त्रिकोण कुण्डञ्च मयानां चतुरस्त्रकम्।
त्वष्ट्राणां वर्तुलं कुण्डं शिल्पिनां पञ्चकोणकम्॥ 20॥
मौञ्जीकर्मणि कुर्वीत षट्कोणं चार्कशालिनाम्।
मन्वादीनां क्रमाद्देवं कुण्डलक्षणमीरितम्॥ 21॥

मौञ्जीकर्म के लिए मनु के वंशज हों तो उनको त्रिकोण कुण्ड बनाना चाहिए। मय के वंशजों को चौकोर, त्वष्ट्रा के वंशजों को गोलाकार, शिल्पी के वंशजों को पञ्चकोणीय और विश्वज्ञ के वंशजों को षट्कोणीय कुण्ड की रचना करनी चाहिए। ये मन्वादि वंशजों के लिए क्रमशः कुण्ड के लक्षण बताए गए हैं।[1]

शुक्लपक्ष की द्वितीया, माघ में शुक्ल पक्ष की द्वादशी और फाल्गुन में कृष्ण पक्ष की द्वितीया को अनध्याय की तिथियाँ कहा गया है। (इनमें उपनयन नहीं होता है)। इसी प्रकार उत्पात (दिव्य, अन्तरिक्ष एवं भौम) होने पर भी व्रतबन्ध नहीं करना चाहिए। यदि बटुक की माता गर्भिणी हो तो भी निषिद्ध जानना चाहिए। इसी प्रकार शनिवार, रिक्तातिथि (4, 9, 14), सप्तमी, त्रयोदशी और प्रदोषकाल भी नेष्ट है। इसके अतिरिक्त जिस दिन अनध्याय हो, उसके पूर्व-पर एक-एक दिवस, षष्ठी, मंगलवार भी त्याज्य कहे गए हैं किन्तु यदि चैत्र मास में मीन का सूर्य हो जाए तो प्रशस्त जानना चाहिए— भूतात्तिस्त्रोष्टमी$_8$ सङ्क्रम मधुयुगल प्राक्तृतीया$_3$द्वितीया$_2$ ज्येष्ठेमाघेच्युतो$_{12}$न्त्यासितकतिथिरनध्याय औत्पातिकश्च। गुर्विण्यम्बार्किरिक्तेमदनरवितिथी, सप्रदोषा च नेष्टान्येनध्यायादुभौ षष्ठ्यसृगथ झषगोर्कोत्रचैत्रेऽति शस्तः॥ (मुहूर्ततत्त्वम् संस्कार प्रकरण 14)

१. शारदातिलक की टीका में विश्वकर्मा के मत से कहा गया है कि यदि गहराई अधिक हो तो निर्माणकर्ता रोगी हो जाता है, कम गहराई हो तो गोधन व सम्पत्ति का विनाश होता है। यदि कुण्ड वक्र हो तो सन्ताप, मेखला छिन्न हो जाए ता मरण, मेखला नहीं हो तो शोक और नियम से अधिक मेखला हो तो धन का क्षय व योनि विहीन कुण्ड हो तो भार्या का

कुमारमुपनेषैयवं सङ्कल्पं कलयमस्तः।
वटोः कर्माधिकारार्थं नवतन्तु च निक्षिपेत्॥ 22॥

इस अवसर पर संकल्प करके, बटुक को आलिंगन करके उसको कर्माधिकार के प्रयोजन से नव-तन्तु गठित यज्ञोपवीत धारण करवाया जाना चाहिए।

ततस्तु देवताह्वानं कुर्याद्घण्टारवेण च।
पात्रे तण्डुलमानीय निवसन्त्विति मन्त्रतः॥ 23॥

इसके उपरान्त घण्टावादन करते हुए वहाँ देवताओं का आवाहन किया जाना चाहिए। इसके लिए एक उचित पात्र में चावल लेना चाहिए एवं इन्द्रादि देवताओं का ('अग्निष्वात्ताद' और पितरों के लिए 'निवनन्तु') मन्त्र पाठपूर्वक आवाहन किया जाना चाहिए।

आचार्योप्येवमुक्त्वास्य वटोर्ग्रहबलाय च।
कुर्यान्नवग्रहमखं ततस्त्वाचार्य भोजनम्॥ 24॥

आचार्य को चाहिए कि वहाँ बनाए गए होमकुण्ड में बटुक के ग्रहबल के प्रयोजन से होम करवाए। होम के उपरान्त आचार्य को भोजन से सन्तुष्ट किया जाना चाहिए।

आपरेद्युरुषःकाले उदिते भानुमण्डले।
स्थापयेद्घटिकाकुम्भं राजतं शुक्लतण्डुले॥ 25॥

दूसरे दिन, उषाकाल में जबकि सूर्यादय होता हो, शुक्ल चावलों के ढेर पर लघु रजत कलश की स्थापना की जानी चाहिए।

कृत्वाथ मङ्गलस्नानं स्थित्वा शोभनमण्डपे।
कुमारमुपनेष्येति सङ्कल्प्य स्वस्तिवाचने॥ 26॥

इस बीच मंगलस्नान करके सुन्दर-सजे मण्डप में प्रवेश करना चाहिए। वहाँ पर 'कुमारमुपनेष्ये' आदि मन्त्रों के साथ स्वस्तिवाचन करते हुए संकल्प करना चाहिए।

विनाश हो जाता है। इसी प्रकार कण्ठ नहीं हो तो अपत्यध्वंस होता है— खाताधिके भवेद्रोगी हीने धेनुधनक्षयः। वक्रकुण्डे तु सन्तापो मरणं छिन्नमेखले॥ मेखलारहिते शोकोऽभ्यधिके वित्तसंक्षयः। भार्याविनाशनं कुण्डं प्रोक्तं योन्या विना कृतम्। अपत्यध्वंसनं प्रोक्तं कुण्डं यत् कण्ठवर्जितम्॥ (शारदा. पदार्थादर्शटीका 3, 89 पर उद्धृत)

होमकुण्डे समालिप्ते चूर्णैस्तण्डुलनिर्मितैः।
स्त्रीयुञ्जेन समानीतं तत्राग्निं स्थापयेत्तदा॥ 27॥
अग्नेरीशानदेशे तु पूर्णकुम्भं निधाय च।
आचार्यं चोत्तरे भागे पश्चिमे संविशेत् स्वयम्॥ 28॥

चावलों के चूर्ण से अलंकृत किए गए होमकुण्ड में प्रौढ़ स्त्रियों द्वारा लाई गई अग्नि का आधान किया जाना चाहिए और अग्नि के ईशानकोण में पूर्ण कलश को रखकर आचार्य को उत्तर दिशा में बिठाकर स्वयं कर्ता को पश्चिम दिशा में बैठ जाना चाहिए।

ब्रह्माणं दक्षिणे भागे सन्निवेश्य च हावयेत्।
समिदाज्य चरुद्रव्यैर्ममन्त्रैरेवं यथाविधि॥ 29॥

अग्नि के दक्षिणी ओर यज्ञ के ब्रह्मा को विराजित कर समिधाओं, घी और चरु द्रव्यों का मन्त्रोच्चार करते हुए यथाविधि हवन करना चाहिए।

ततः पञ्चशिखाः कुर्यान्मौञ्जीबन्धनकर्मणि।
वटोरपि च कुर्वीत कर्णवेधं यथाक्रमम्॥ 30॥

इस मौंजीबन्धकर्म के साथ ही पाँच शिखाएँ रखकर बटुक का यथाक्रम कर्णवेध संस्कार[१] सम्पन्न करना चाहिए।

ततो वटुः पुनः स्नानः कुर्यान्नान्दीमुखं शुभम्।
सहपङ्क्तौ वटु मात्रा-बन्धुभिश्चैव भोजयेत्॥ 31॥

बाद में वटु को स्नान करवाएँ और शुभ नान्दीमुख[२] (मंगल श्राद्ध) का विधान करवाएँ। इस अवसर पर वटुक की माता और बन्धुजनों को एक साथ बैठकर भोजन करना चाहिए।

---

१. रामदैवज्ञ ने कहा है कि चैत्र, पौष, तिथिक्षय, विष्णुशयनी से देवोत्थान एकादशी तक, जन्ममास, रिक्ता तिथि, समसंख्यक वर्ष (2, 4 इत्यादि) एवं जन्मतारा (जन्मनक्षत्र से 1, 10, 19 नक्षत्र) को छोड़कर; जन्म से 6, 7, 8वें मास में या जन्मदिन से 12, 16वें दिन, बुध, गुरु, शुक्र और सोमवारों में, विषम वर्षों (3, 5, आदि) में श्रवण, धनिष्ठा, पुनर्वसु, मृदु और लघु नक्षत्रों में कर्णवेध करना प्रशस्त है— हित्वैतांश्चैत्र पौषावमहरिशयनं जन्ममासं च रिक्तां युग्माब्दं जन्मतारामृतुमुनिवसुभिः सम्मिते मास्याथो वा। जन्ममाहात्सूर्यभूपैः परिमितदिवसे ज्ञेज्यशुक्रेन्दुवारेऽथौजाब्दे विष्णुयुग्मादितिमृदुलघुभैः कर्णवेधः प्रशस्त॥ (मुहूर्तचिन्तामणि 5, 24)

२. विष्णु का वचन है कि व्रतबन्ध, व्रतोद्यापन, यज्ञ, विवाह, श्राद्ध, होम, पूजा, जप आदि कार्यों

भुङ्क्तवन्तं कुमारन्तं वेदिकायां पितास्वयम्।
संवेश्य दक्षिणे तस्य कुर्यात्कौपीन धारणम्॥ 32॥

पिता को चाहिए कि वह भोजन से निवृत्त हुए कुमार को उपनयन वेदिका पर अपनी दक्षिणी दिशा में बिठाएँ और उसको कौपीन (लंगोट) धारण करवाएँ।

मनुर्दुकूलवस्त्रञ्च मयः पीताम्बरं तथा।
त्वष्टा सूर्यपटं चैव शिल्पी नीलाम्बरं तथा।
हेमाम्बरं त्वर्कशाली धारयेदुपनायने॥ 33॥

यह ज्ञातव्य है कि वह उपनयन मनु वंशजों के लिए श्वेत व रेशमी की हो। मय के वंशजों के लिए पीले वस्त्र की हों, त्वष्टा या विश्वकर्मा वंशजों के लिए लालपट्ट, शिल्पी के वंशजों के लिए नीली और विश्वज्ञ के वंशजों के लिए सुवर्णमयवस्त्र की हो।

ततो यज्ञोपवीतञ्च धारयेत्तं वटुं शुभम्।
मनोरजतसूत्रं च मयानामं पद्मसूत्रकम्॥ 34॥
त्वष्टृणां ताम्रसूत्रं च शिल्पिनां सीससूत्रकम्।
विश्वज्ञानां हेमसूत्रं कार्पास्यं सर्वजातयः॥ 35॥

इसके बाद वटुक या ब्रह्मचारी को शुभ यज्ञोपवीत धारण करना चाहिए। मनु के वंशजों को रजतसूत्रमय, मय के वंशजों को पद्मसूत्रमय, विश्वकर्मा के वंशजों को ताम्रसूत्रमय, शिल्पी के वंशजों को सीस (? अयस) सूत्र और विश्वज्ञ के वंशजों को सुवर्णसूत्रमय यज्ञोपवीत धारण करने का निर्देश है किन्तु कपास के सूत से बना यज्ञोपवीत सभी के लिए योग्य होता है।[१]

में जब तक कर्म प्रारम्भ न हो, तब तक सूतक लगता है लेकिन प्रारम्भ होने के उपरान्त मृत्य और जन्म का आशौच नहीं लगता। यज्ञ में ब्राह्मण के वरण के बाद, व्रत या महायज्ञ में संकल्प के बाद, विवाह में नान्दीमुख श्राद्ध के बाद और श्राद्ध में भोजन पकाना प्रारम्भ होने के बाद एवं ब्राह्मणों को आमन्त्रण देने के उपरान्त आशौच नहीं लगता। नान्दीमुख श्राद्ध यज्ञ में 21 दिन पहले, विवाह में 10 दिन पहले, चौलकर्म में तीन दिन पहले और उपनयन में 6 दिन पहले नान्दीश्राद्ध करना चाहिए— व्रतयज्ञविवाहेषु श्राद्धे होमेऽर्चने जपे। आरब्धे सूतकं न स्यादनारब्धे तु सूतकम्॥ प्रारम्भो वरणं यज्ञे सङ्कल्पो व्रतसत्रयोः। नान्दीमुखं विवाहादौ श्राद्धे पाकपरिक्रिया॥ एकविंशत्यहर्यज्ञे विवाहे दश वासराः। त्रिशट् चौलोपनयने नान्दीश्राद्धं विधीयते॥ (बालबोध ज्योतिषसार समुच्चय, मुम्बई, 5, 34-36)

१. धर्मानुसार विप्र ब्रह्मचारी को बेल या पलाश का, क्षत्रिय बटुक को वट या खदिर का और

ततोदण्डं समादध्याद्वटुः स्वशिरसोन्नतम्।
मनो रजतदण्डश्च मयानां सीसदण्डकः॥ 36॥
त्वष्ट्रणां ताम्रदण्डश्च शिल्पिनां लोहदण्डकः।
विश्वज्ञानां हेमदण्डः पालाशः सर्वजातिषु।
एवं क्रमेण सर्वत्र तत्तज्जाति विशेषतः॥ 37॥

यज्ञोपवीत के बाद बटुक को दण्ड ग्रहण करवाना चाहिए। दण्ड उसके सिर के बराबर ऊँचा होना चाहिए। मनु के वंशज बटुक को रजतदण्ड, मय के व्रंशजों को सीसदण्ड, विश्वकर्मा के वंशजों को ताम्रदण्ड, शिल्पी के वंशजों को लोहदण्ड और विश्वज्ञ के वंशजों को सुवर्णदण्ड धारण करना चाहिए। पलाश वृक्ष का बना दण्ड सभी जाति वालों के लिए योग्य होता है। इस क्रम से सभी जाति वालों को अपने लिए दण्ड का प्रयोग करना चाहिए।[1]

ततः कृष्णाजिनं धृत्वा ततो मौञ्जीनिबन्धनम्।
अग्निकार्यं ततः कृत्वा सूर्यायार्घ्यं ततः परम्॥ 38॥

इसके बाद कृष्णाजिन (कृष्णमृग की चर्म) धारण करें और फिर मौंजीबन्धन करें। इसके बाद अग्निकार्य[2] का सम्पादन करके सूर्य के प्रति अर्घ्य

---

१. वैश्य बटुक को पीलु या गूलर का दण्ड धारण करना चाहिए— ब्राह्मणो बैल्वपालाशौ क्षत्रियो वाटखादिरौ। पैलवौदुम्बरौ वैश्यो दण्डनर्हन्ति धर्मतः॥ केशान्तिको ब्राह्मणस्य दण्डः कार्यः प्रमाणतः। ललाटसंमितो राज्ञः स्यात्तु नासान्तिको विशः॥ (मनुस्मृति 2, 45 व 46)
दण्ड की बड़ी महिमा है— गवां निवारणार्थाय, शत्रूणां निधनाय च, जन्तुभ्यो भीतिनाशाय, एकद्दण्डं वहाम्यहम्।
कार्पासञ्चोपवीतं सर्वेषाम्। (पैठीनसि) मनु का मत है कि विप्र को कपास, क्षत्रिय को सन, वैश्य को भेड़ की ऊन का उपवीत धारण करना चाहिए— कार्पासमुपवीतं स्याद् विप्रस्योर्ध्वं वृत्तं त्रिवृत्। शाणसूत्रमयं राज्ञो वैश्यस्याविकसूत्रजम्॥ (मनुस्मृति 2, 44)
ब्रह्मचारी एक यज्ञोपवीत धारण कर सकता है— उपवीतं वटोरेकं द्वे तथेतरयोः स्मृते॥ (देवलोक्ति) और गृहस्थ तथा वानप्रस्थ आश्रम वाले दो यज्ञोपवीत धारण कर सकते हैं— यज्ञोपवीते द्वे धार्ये श्रौते स्मार्ते च कर्मणि। तृतीयमुत्तरीयार्थे वस्त्राभावे तदिष्यते॥ (विश्वामित्र वचन)
यज्ञोपवीत धारण करने का मन्त्र है— ॐ यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यत् सहजं पुरस्तात्। आयुष्ममग्र्यं प्रतिमुञ्च शुभ्रं यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः। ॐ यज्ञोपवीतमसि यज्ञस्य त्वा यज्ञोपवीतेनोपनह्यामि॥ (पारस्कर गृहसूत्रम् 2, 2, 13)

२. अग्निकार्य के लिए श्लोकपाठ इस तरह होगा— अग्नये समिधं दद्यादग्न्ये विश्वकर्मणे। नमस्ते रुद्ररूपाय नमो वैश्वानराय च। प्रसंगानुसार तिलक करने का मन्त्र यह है— रुद्रोरक्षेल्ललाटं

प्रदान करना चाहिए।

ततो गुरुपदेशश्च दक्षिणे श्रवणेवरम्।
वटुः स्वबान्धवान् सर्वान् भिक्षामुश्चैश्च याचयेत्॥ 39॥

उक्त विधानों के बाद अपने दक्षिणी कान से गुरुवर का उपदेश सुनना चाहिए। बाद में बटुक को अपने सभी बन्धुजनों से भिक्षा की याचना करनी चाहिए।

अग्निगर्भो मनुश्चैव मन्युकश्यपकाश्यपाः।
पञ्चार्षेय प्रवरश्च एवं काश्यप गोत्रिणाम्॥ 40॥

इस अवसर पर ज्ञेय है कि अग्निगर्भ, मनु, मन्यु, कश्यप और काश्यप— काश्यप गोत्र वालों के ये पाँच आर्षेय प्रवर कहे गए हैं। इनको कहना चाहिए।

मयोवनस्पतिस्तक्षावर्धकीविष्णुवर्धनः।
पञ्चार्षेय सत्प्रवरः विष्णुवर्धन गोत्रिणाम्॥ 41॥

मय, वनस्पति, तक्षा, वर्धकी और विष्णुवर्धन— ये पाँच आर्षेय प्रवर विष्णुवर्धन गोत्र के हैं।

त्वष्टा चतुर्मुखश्चैव विश्वरूपस्तथैव च।
त्रयार्षेयक प्रवरो विश्वरूप सुगोत्रिणाम्॥ 42॥

त्वष्टा, चतुर्मुख (ब्रह्मा) और विश्वरूप— ये तीन आर्षेय प्रवर श्रेष्ठ विश्वरूप गोत्र के लिए कहे गए हैं।

शिल्पीन्द्रः स्थपतिर्विभ्राट्कर्मज्ञोनलदेशिकः।
भूबलस्सप्तकार्षेय प्रवरो भूबलगोत्रिणाम्॥ 43॥

शिल्पी, इन्द्र, स्थपति, विभ्राट, कर्मज्ञ, नलदेशिक और भूबल— ये सात आर्षेय प्रवर भूबल गोत्र वालों के हैं।

सहस्त्रांशुरसावर्को विश्वज्ञश्च तथैव च।
त्रयार्षेयक प्रवरस्तथा विश्वज्ञ गोत्रिणाम्॥ 44॥

सहस्त्रांशु, अर्क और विश्वज्ञ— ये तीन आर्षेय प्रवर विश्वज्ञ गोत्र वालों के लिए कहे गए हैं।

मे, कण्ठं तु शितिकन्धरः। भुजो च शङ्करो रक्षेत् हृदयं मे हरो वतु॥

एवं कृत्वोपनयनं वटोर्दिनचतुष्टयम्।
आचार्यान्दक्षिणादानैस्तर्पयेद्भोजनादिभिः ॥ 45 ॥

इस प्रकार वटुकों-ब्रह्मचारियों के लिए चार दिवसीय उपनयन संस्कार किया जाना चाहिए। तदोपरान्त आचार्यों को दान-दक्षिणा और इच्छित भोजनादि से सन्तुष्ट करना चाहिए।

इति श्रीकालहस्तिमुनि प्रणीत श्रीविश्वकर्मपुराणे निष्क्रमणान्नप्राशन चौलोपनयनादिसंस्कारवर्णनं नाम पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ 25 ॥

इस प्रकार कालहस्ति मुनि द्वारा प्रणीत श्रीविश्वकर्मपुराण में निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चौल, उपनयनादि संस्कार वर्णन नामक पच्चीसवाँ अध्याय पूरा हुआ।

अथ ष

मुनि उवाच —

इत्येवमादिशेत्पुत्रं
भवसि ब्रह्मचारी त
आचार्यवशगो भूत
गुरुशुश्रूषणिं नित्यं

मुनि कालहस्ति बोले-
ब्रह्मचारी पुत्र से पिता कहे
मेरा आदेश है कि तुम अप
शुश्रूषा करो तथा भिक्षा का
आरम्भ करो।"

एवमाज्ञापितः पुत्रः
वसेद् गुरुगृहे नित्यं

पिता से इस प्रकार की
निवास करना आरम्भ करना
जिज्ञासा से वेदाभ्यास करना

उपक्रमावसानेषु मू
अधीयतां गुरोस्तस्म

अध्ययनकाल में नित्य
चाहिए वह गुरु के चरणों का
और अधीन रहते हुए उनसे

मेखलाजिन कौपीन
पवित्रं चोपवीतं च

कटिसूत्र, अजिन् (
यज्ञोपवीत - ये पाँच वस्तुएँ ब्र

सम्प्राप्ते श्रावणे मासे
गुरुः कुर्यादुपाकर्म

अथ षडविंशोऽध्यायः ॥ 26 ॥

मुनि उवाच —

इत्येवमादिशेत्पुत्रं विधिवद्ब्रह्मचारिणम्।
भवसि ब्रह्मचारी त्वं मयादिष्टो यथाविधि ॥ 1 ॥
आचार्यवशगो भूत्वा वेदाभ्यासमुत्वषुर्भक।
गुरुशुश्रूषणिं नित्यं कुरु भिक्षाशनं सदा ॥ 2 ॥

मुनि कालहस्ति बोले— पूर्वोक्त विधि से यज्ञोपवीत को धारण करने वाले ब्रह्मचारी पुत्र से पिता कहे कि "अब तुम विधिवत् ब्रह्मचारी हो गए हो। अब मेरा आदेश है कि तुम अपने गुरु के हस्तगत होओ और उनकी नित्य सेवा-शुश्रूषा करो तथा भिक्षा का आहार ग्रहण करते हुए वेदाभ्यास (अध्ययन कर्म) आरम्भ करो।"

एवमाज्ञापितः पुत्रः स वटु श्रद्धयान्वितः।
वसेद् गुरुगृहे नित्यं वेदाभ्यासाय वत्सलः ॥ 3 ॥

पिता से इस प्रकार की आज्ञा लेकर ब्रह्मचारी को श्रद्धा के साथ गुरुगृह में निवास करना आरम्भ करना चाहिए। वहाँ पर वात्सल्य भाव प्राप्त करते हुए नित्य जिज्ञासा से वेदाभ्यास करना चाहिए।

उपक्रमावसानेषु मूर्धना तच्चरणौ स्पृशन्।
अधीयतां गुरोस्तस्मात् कार्यं कर्म समाचरन् ॥ 4 ॥

अध्ययनकाल में नित्य अध्ययन के आरम्भ और समापन पर बटुक को चाहिए वह गुरु के चरणों का अपने सिर से स्पर्श करें अर्थात् दण्डवत प्रणाम करें और अधीन रहते हुए उनसे अभ्यास कार्य करें।

मेखलाजिन कौपीन शिखा दण्डादिकास्तथा।
पवित्रं चोपवीतं च लक्षणं ब्रह्मचारिणाम् ॥ 5 ॥

कटिसूत्र, अजिन् (कृष्णमृग की चर्म), कौपीन, शिखा और पवित्र यज्ञोपवीत - ये पाँच वस्तुएँ ब्रह्मचारी के लक्षण हैं।

सम्प्राप्ते श्रावणे मासे पौर्णमास्यां च विष्णुभे।
गुरुः कुर्यादुपाकर्म सशिष्यैर्यब्रह्मचारिभिः ॥ 6 ॥

जब श्रावणमास की पूर्णिमा के अवसर पर विष्णु से सम्बद्ध नक्षत्र (श्रवण) हो, तब ब्रह्मचारी को गुरु और अन्य छात्रों के साथ उपाकर्म करना चाहिए।

अभ्यसेत् स्वकुलाचार विद्या वेदादिकान्गुरोः।
ब्रह्मचर्येण सन्तर्पय शुश्रूषादिभिरन्वहम्॥ 7॥

गुरु के आश्रम में ब्रह्मचारी अपनी सेवा-शुश्रूषा से गुरु को सन्तुष्ट करते हुए अपने कुलगत आचरणीय कलाकर्मों और विद्या[१] का अभ्यास करें और उसे वेदादि शास्त्रों का मनोयोग से अध्ययन करना चाहिए।

---

१. प्रस्तुत पुराण की कन्नड़ टीका में अभ्यास योग्य विद्याओं का नामोल्लेख पाद टिप्पणि के रूप में दिया गया है—

ऋग्यजुस्सामाथर्वण प्रणव, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, छन्दोलक्षण, काव्य, नाटक, अलंकार, लिपि लेखन, गणित, गान्धर्व, ज्योतिःशास्त्र, लोहकर्म, काष्ठकर्म, अग्निस्थम्भन, जलस्तम्भन, शुक्ल स्तम्भन, परविद्याभेदन, परकाय प्रवेश, दूरदृष्टि, दूरश्रवण, अतीतानागत ज्ञान, धनुर्विद्या, मल्लविद्या, तुरगाभ्यास, वारुणाभ्यास, होलिका, ढिंकिणीसूत, सूत्रघोष्य, अश्वविद्या, कन्यालक्षण, पादुकासिद्धि, रससिद्धि, घटिकासिद्धि, योगसिद्धि, मन्त्रसिद्धि, वेतालसिद्धि, गज-तुरग-नर वैद्यक, शिल्पशास्त्र, शिलारोहण, रतनपरीक्षा, धातुपरीक्षा, अस्त्रपरीक्षा, कन्यावलम्बन, मारण, अदृश्यकरणि, स्त्रीहृदय, चोरव्याप्ति, चर्म विद्या जैसी 62 विद्याएँ। आत्मवादश्च वेदश्च अक्षरं गणितं तथा। ज्योतिषं भैषजं चैव धनुर्विद्या महेन्द्रकं वाहकं सूक्ष्मशास्त्रं च रतिशास्त्रं च शिल्पिकं परकर्ममति ज्ञाने महाविद्याश्चतुर्दश। ऐसी 64 कलाओं और 14 महाविद्याओं का अभ्यास करना चाहिए।

कला विषयक प्राचीन ग्रन्थों में कहीं 64 तो कहीं 72 अभ्यास योग्य कलाओं का साक्ष्य मिलता है। वात्सायन के कामसूत्र (काम. 1, 3, 16; जयमंगला टीका, मुम्बई 1900 ई., 1, 3, 15, पृष्ठ 32-34, 43, 95) में चौंसठ कलाओं का नामोल्लेख मिलता है; जो तत्कालीन समाज में व्यवहार्य थीं—

1. गीतम्, 2. वाद्यम्, 3. नृत्यम्, 4. आलेख्यम्, 5. विशेषकच्छेद्यम्, 6. तण्डुल कुसुमवलि विकारा, 7. पुष्पास्तरणम्, 8. मणिभूमिकाकर्म, 10. शयनरचनम्, 11. उदकवाद्यम्, 12. उदकाघात, 13. चित्रयोगाः, 14. माल्य ग्रन्थन विकल्पाः, 15.शेखर-कापीडयोजनम्, 16. नेपथ्यप्रयोगाः, 17. कर्णपत्रभङ्गा, 18. गन्धयुक्तिः, 19. भूषणयोजनम्, 20. ऐन्द्रजालयोगाः, 21. कोचुमारयोगाः, 22. हस्तलाघवम्, 23.विचित्र-शाकयूषभक्ष्य विकार क्रियापानकर सरागासवयोजनम्, 24. सूचीवानकर्माणि, 25. सूत्रक्रीड़ा, 26. वीणा डमरुक वाद्यानि, 27. प्रहेलिका, 28. प्रतिमाला, 29. दुर्वाचकयोगाः, 30. पुस्तकवाचनम्, 31. नाटकाग्व्यायिकादर्शनम्, 32. काव्य समस्यापूरणम्, 33. पट्टिका-वेत्रवानविकल्पा, 34. तर्ककर्माणि, 35. तक्षणम्, 36. वास्तुविद्या, 37. रुप्य रत्नपरीक्षा, 38. धातुवादः, 39. मणिरागाकरज्ञानम्, 40. वृक्षायुर्वेदयोगाः, 41. मेषकुक्कुट-लावकयुद्धविधिः, 42.

युवा यदि ब्रह्मचारीरहः स्त्रीणां गृहं प्रति।
न गच्छेत्तासु नारीषु न वदेत्पुरतः स्थितः॥ 8॥

ब्रह्मचारी यदि युवावस्था को प्राप्त हो गया हो तो उसे यह ध्यान में रखना चाहिए कि जहाँ स्त्रियाँ हों, वहाँ जाकर अथवा उनके सामने ठहरकर वार्तालाप

शुकसारिका-प्रलापनम्, 43. उत्सादन-संवाहन-केशमर्दन-कौशलम्, 44. अक्षरमुष्टिकाकथनम्, 45. म्लेच्छितविकल्पाः, 46. देशभाषाविज्ञानम्, 47. पुष्पशकटिका, 48. निमित्तज्ञानम्, 49. यन्त्रमातृका, 50. धारणमातृकाः, 51. संपाठ्यम्, 52. मानसी, 53. काव्यक्रिया, 54. अभिधानकोषः, 55. छन्दोज्ञानम्, 56. क्रियाकल्पः, 57. छलितकयोगाः, 58. वस्त्रगोपनानि, 59. द्यूतविशेषाः, 60. आकर्षक-क्रीड़ा, 61. बाल क्रीडनकानि, 62. वैनयिकीनां विद्यानां ज्ञानम्, 63. वैजयिकीनां विद्यानां ज्ञानम्, 64. व्यायामिकीनां विद्यानां ज्ञानम् इत्यादि।

ये ही नाम श्रीमद्भागवत की श्रीधर जीवगोस्वामी कृत विवृति (श्रीधरी टीका, 10, 45, 36), विष्णुपुराण, हरिवंश (श्रीधरी. पृष्ठ 736), ललितविस्तर (शान्तिभिक्षु शास्त्री सम्पादित-ललितविस्तर, पृष्ठ 296-299) में मिलते हैं। इसी प्रकार जैनागम उत्तराध्ययनसूत्र (सेक्रेड बुक्स ऑफ दी ईस्ट सीरिज, खण्ड 45, पृष्ठ 108), कल्पसूत्र (211), दशकुमारचरितम् (2, 21), कादम्बरी (पृष्ठ 70), क्षेमेन्द्रकृत कलाविलास (4, 2-11), समवायसूत्रागम, विदर्भराज रामचन्द्रकृत टीका, ललितासहस्रनाम की नारायणकृत टीका (जर्नल ऑफ द रायल एशियाटिक सोसायटी 1914, पृष्ठ 355-367) तथा भास्करराज टीका (पृष्ठ 71) आदि ग्रन्थों में भी विविध कलाओं के बारे में नाम आदि का विवरण मिलता है। शुक्रनीति, प्रबन्धकोश में भी कलाओं का नामोल्लेख किया गया है, जहाँ क्रमशः 64 और 72 कलाओं की गणना है। 'वस्तुविज्ञानरत्नकोश' में 72 कलाओं का उल्लेख हैं जिन्हें ज्योतिषरत्नमाला के टीकाकार महादेव (1264 ई.) ने वारप्रकरण के चतुर्थ श्लोक की टीका में उद्धृत किया है, जिनमें इन कलाओं को एक दूसरे से सम्बद्ध बताया गया है- कलाशब्दः। प्रत्येकं सम्बध्यते। एतेद्वासप्तति: कला—

1. गीतकला, 2. विद्या, 3. नृत्य, 4. गणित, 5. पठन, 6. लिखित, 7. व्याख्यान, 8. ऋष्यादान, 9. नाद्य, 10. व्याकरण, 11. छन्द, 12. अलंकार, 13. दर्शन, 14. अभिधान, 15. धातु, 16. कर्म्म,17. अर्थ, 18. काम, 19. वचन, 20. बुद्धि, 21. शौच, 22. विचार, 23. उच्चाटन, 24. मन्त्र, 25. वस्तु, 26. कुसुम, 27. इन्द्रजाल, 28. सूची, 29. स्नेह, 30. सौख्य, 31. योग, 32. गन्ध, 33. वस्त्र, 34. रत्न, 35. पत्र, 36. देशकला, 37. विनय, 38. भाषित, 39. आयुध, 40. वाणिज्य, 41. युद्ध, 42. नियुद्ध, 43. समय, 44. वर्त्तन, 45. हस्ति, 46. अश्व, 47. गो, 48. नरवैद्य, 49. हस्तिवैद्य, 50. अश्ववैद्य, 51. स्त्री, 52. वृक्ष, 53. बघ्न, 54. द्रोह, 55. उत्तर, 56. सत्व, 57. शास्त्र, 58. नैपथ्य, 59. लेप, 60. चित्र, 61. काष्ठ, 62. पाषाण, 63. विलास, 64. दृश्यनीति, 65. शकुन, 66. क्रीडन, 67. हस्तलाघव, 68. पक्षी, 69. संयोग, 70. सूत्रधार, 71. परिचितज्ञान और 72. वैराग्य। (वस्तुविज्ञानरत्नकोश वार प्रकरणम्)

नहीं करें।

सायं प्रातरूपासीत् गुर्वर्काग्नि सुरोत्तमान्।
प्रयतस्संध्ययोर्भूत्वा जपं कुर्याद्यथाविधि॥ 9॥

ब्रह्मचारी को चाहिए कि सायं और प्रातःकाल अपने गुरुजनों, सूर्य और अग्नि आदि श्रेष्ठ देवताओं की आराधना करें। दोनों ही संध्याकाल में यथाविधि मन्त्र का जप करना चाहिए।

इति श्रीकालहस्तिमुनि प्रणीत श्रीविश्वकर्मपुराणे वेदाभ्यासोपाकर्मादि कर्मवर्णनं नाम षडविंशोऽध्यायः॥ 26॥

इस प्रकार कालहस्ति मुनि द्वारा प्रणीत श्रीविश्वकर्मपुराण में वेदाध्ययन, उपाकर्मादि वर्णन नामक छब्बीसवाँ अध्याय पूरा हुआ।

मुनि उवाच —

गुरुणाज्ञ
समावर्त

मुनि काल
होने के बाद गृह
लौटना चाहिए। वि

आहूयबा
विचार्य

अपने सभ
परस्पर मिलकर व
में होमवेदिका का

अनयेत्स
कारुपल
औदुम्बर
अर्कशाल

उस वेदिव
किया जाना चाहि
तक्षणकर्मी को प

१. समावर्तन एक स
का होता था जे
वेदाध्ययनान्तरं
आवश्यक होती
गृह. 3, 8; तुलनं
ये ब्रह्मचारी विद
विद्याव्रतस्नातक इ
२. इस प्रसंग में राम
शुभम्। व्रतोक्त वि

अथ सप्तविंशोऽध्यायः ॥ 27 ॥

मुनि उवाच —

गुरुणाज्ञासितः शिष्यः गृहस्थाश्रमकारणम्।
समावर्तन सत्कर्म कुर्यात् स्वगृहमागतः ॥ 1 ॥

मुनि कालहस्ति ने संस्कारों के क्रम में ही आगे कहा— अध्ययन पूर्ण होने के बाद गृहस्थाश्रम के लिए गुरु की आज्ञा लेकर शिष्य को अपने गृह लौटना चाहिए। विवाह से पूर्व समावर्तन संस्कार किया जाना चाहिए।[1]

आहूयबान्धवान्सर्वानाचार्यांश्च गुरुंस्तथा।
विचार्य कन्यां कुर्वीत् स्वगृहे होमवेदिकाम् ॥ 2 ॥

अपने सभी बन्धु-बान्धवों, आचार्यों, गुरुओं को न्यौता जाना चाहिए और परस्पर मिलकर कन्या के सम्बन्ध में विचार करना चाहिए। इसके बाद अपने गृह में होमवेदिका का निर्माण करना चाहिए।[2]

अनयेत्सम्यगिध्मानि समावर्तन कर्मणि।
कारुपलाशसामिधः तक्षकोश्वत्थसम्भवाः ॥ 3 ॥
औदुम्बरभवाः शुल्बी शिल्पी तु शमिसम्भवाः।
अर्कशालीत्वर्ककाष्ठा दण्डाश्चापि तथैव च ॥ 4 ॥

उस वेदिका में समावर्तन संस्कार के लिए होम के लिए समिधा का संग्रह किया जाना चाहिए। कारुकर्मी को पलाश की समिधा संगृहीत करनी चाहिए। तक्षणकर्मी को पीपल की समिधा, शुल्बी को गूलर, शिल्पी को खेजड़ी और

---

१. समावर्तन एक स्नान सम्बन्धी संस्कार था। यह संस्कार गुरुकुल निवासी उन ब्रह्मचारियों का होता था जो अपने सम्पूर्ण अध्ययन की समाप्ति कर लेते थे : तत्र समावर्तनं नाम वेदाध्ययनान्तरं गुरुकुलात् स्वगृहागमनम्। अपने गृहागमन के लिए गुरु की अनुमति आवश्यक होती थी— विद्यान्ते गुरुमर्थेन निमन्त्र्य कृतानुज्ञानस्य वा स्नानमिति। (आश्वलायन गृह. 3, 8; तुलनीय : मनु. 2, 4)
ये ब्रह्मचारी विद्या-स्नातक कहे जाते थे— त्रय स्नातका भवन्ति विद्यास्नातकी व्रतस्नातको विद्याव्रतस्नातक इति। (पारस्करगृहसूत्रम् 2, 5, 33)

२. इस प्रसंग में रामदैवज्ञ का संक्षिप्त मत विचारणीय है— केशान्तं षोडशे वर्षे चौलाक्त दिवसे शुभम्। व्रतोक्त दिवसादौ हि समावर्तनमिष्यते॥ (मुहूर्तचिन्तामणि 5, 60)

सुवर्णकार को आक (मन्दार) की समिधा का संग्रहण करना चाहिए। पूर्व में जैसा दण्डों का प्रयोग कहा गया (पलाश की समिधा का औचित्य, अध्याय 25, 37), वैसा निर्णय भी यहाँ किया जा सकता है।

ततो विहाय कौपीनं सुवस्त्रं मौक्तिकं तथा।
शुद्धस्फटिकरुद्राक्षान् धारयेत्कारुवंशजः॥ 5॥
इतरेषां मयादीनामंशुकादीनि पूर्वतः।
उक्तान्यूह्यानि चा तापि सुव्रतक्षितिपाऽधुना॥ 6॥

इस अवसर पर पुरानी कौपीन का त्याग कर देना चाहिए और नवीन अच्छे परिधान सहित मोतियों का हार, शुद्ध स्फटिक, रुद्राक्ष की मालाएँ आदि कारु वंशजों को धारण करनी चाहिए। इसके अतिरिक्त मयादि अन्य वंशजों के लिए धारण करने के लिए अंशुक आदि का निर्देश पहले कथनानुसार (अध्याय 25, 33) समझना चाहिए। हे क्षितिपति सुव्रत! अन्य ज्ञातव्य आगे कहता हूँ।

ततस्त्रिपुण्ड्रं निटिले धारयेन्मनु वंशजः।
ऊर्ध्वपुण्ड्रं मयभवः वर्तुलं त्वष्टृ सन्ततिः॥ 7॥
शिल्पी तु पट्टवत्कार्यं तिलकंत्वर्कशालिनः।
अक्षतानपि कुर्वीत जातिभेदाद्यथोविधम्॥ 8॥

समावर्त संस्कार के अन्तर्गत, इसके बाद जाति भेद के अनुसार मनु वंशज युवक के ललाट पर त्रिपुण्ड्र (भस्म से तीन आड़ी रेखाएँ) धारण करवाया जाना चाहिए। मय के वंशज को ऊर्ध्वपुण्ड्र, त्वष्टा की सन्तति को गोलतिलक, शिल्पी के वंशज को पट्टपुण्ड्र (चतुरश्र पुण्ड्र) और विश्वज्ञ के वंशज को तिलक लगाकर उस पर अक्षत लगाने चाहिए।

ततः शिरसि चोष्णीषं धृत्वा दण्डं च पादुकौ।
पुष्पस्त्रग्भिरलङ्कृत्य दर्शयेदथ दर्पणम्॥ 9॥

इसके बाद संस्कारित होने वाले को सिर पर पगड़ी बँधवाएँ। हाथ में नवीन दण्ड धारण करवाएँ। पाँवों नवीन पादुकाएँ और गले में पुष्पों का हार पहनाएँ। ऐसा सजाकर उसको अपनी छवि दर्पण में दिखानी चाहिए।

यात्रार्थं बान्धवैर्युक्तः गृहाद्गत्वा निवर्तय च।
पाथेयं गुरुवेदद्यात् प्रार्थितः श्वशुरेण च॥ 10॥

तदोपरान्त बन्धुजनों के साथ यात्रार्थ घर से बाहर निकलना चाहिए।

सबसे मार्गव्यय जुटाना चाहिए और श्वसुर से अपने को कन्या देने की प्रार्थना करनी चाहिए। घर लौटकर जमा मार्गव्यय गुरुदेव को प्रदान कर देना चाहिए।

शुभायां वेदिकायामप्यासीनः प्राङ्मुखो हवेत्।
समिदाज्यचरुद्रव्यैर्मन्त्रैरेवं यथाविधि॥ 11॥

इसके बाद मंगलार्थ होमवेदिका के पास पूर्वाभिमुख होकर बैठें और मन्त्रों का जाप करते हुए यथाविधि समिधा, घी, चरु-द्रव्यादि का हवन करना चाहिए।

इति श्रीकालहस्तिमुनि प्रणीत श्रीविश्वकर्मपुराणे समावर्तनादि कर्मवर्णनं नाम सप्तविंशोऽध्यायः॥ 27॥

इस प्रकार कालहस्ति मुनि द्वारा प्रणीत श्रीविश्वकर्मपुराण में समावर्तनादि कर्म वर्णन नामक सत्ताईसवाँ अध्याय पूरा हुआ।

अथाष्टाविंशोऽध्यायः ॥ 28 ॥

मुनि उवाच —

ततस्तु बान्धवान्मुख्यान् कन्यार्थं प्रेषयेद्वरः।
स्वसारं मातरं चापि त्यजेत् स्वप्रवरान्विताम् ॥ 1 ॥
अरोगाञ्च सुशीलाञ्च सुरूपाञ्च सुलक्षणाम्।
आचार-धन-विद्यासु वरयेत् स्वकुलोचितम् ॥ 2 ॥

मुनि कालहस्ति ने विवाह संस्कार से पूर्व करणीय कर्त्तव्यकर्मों के सम्बन्ध में कहा— इसके बाद बन्धु-मुखियाओं को कन्या की खोज के लिए भेजना चाहिए। बहन, मां समान कन्याओं और अपने गोत्र-प्रवर की कन्या के लिए विवाह प्रस्ताव नहीं करना चाहिए। कन्या आरोग्य हों, सुशील, सुन्दर रूप और सामुद्रिक शास्त्र वर्णित लक्षणों वाली हों, चाल-चलन, सम्पत्ति, विद्या आदि की दृष्टि से अपने कुल के लिए उचित हो, ऐसी कन्या का वरण करना चाहिए।[१]

स्वगोत्रप्रवरे जाता स्वसैवात्र न संशयः।
तस्मादऽहं प्रवक्ष्यामि गोत्रप्रवर लक्षणम् ॥ 3 ॥

अपने ही गोत्र और प्रवर में जन्मी कन्या अपनी बहन ही होती है, इसमें सन्देह नहीं है। इसलिए मैं गोत्र-प्रवरों के लक्षण भी कहता हूँ।

मनोः शिवस्वरूपस्य सद्योजातादि पञ्चसु।
एकैकस्मिन्मुखे पञ्च बभूवुः परमात्मनः ॥ 4 ॥
कारवेस्तेषु सञ्जाताः पञ्चविंशति गोत्रिणः।
मुखभेदे न सम्बन्धं प्रकुर्वीत परस्परम् ॥ 5 ॥

मनु को शिव का स्वरूप कहा गया है। शिव के सद्योजातादि (1. सद्योजात, 2. वामदेव, 3. अघोर, 4. तत्पुरुष एवं 5. ईशान) पाँच मुख कहे गए हैं। उन परमात्मा के एक-एक मुख से पाँच-पाँच सन्ततियाँ हुई हैं। ऐसे में

---

१. ज्योतिर्निबन्ध में कहा गया है कि कन्यावरण का निश्चय पवित्र दिवस, विवाहोक्त नक्षत्र और चित्रा, धनिष्ठा, कृत्तिका व श्रवण नक्षत्र में चन्द्रमा के बली होने पर सत्य वचन के साथ करें— पुण्याहे च विवाहर्क्षे चित्रावस्वग्निविष्णुभे। लब्ध्वा चन्द्रबलं दद्यान्निश्चयं सत्यया गिरा ॥ (ज्योतिर्निबन्ध पृष्ठ 148, श्लोक 2)

कारुओं की पच्चीस गोत्रें कही गई हैं। एकमुखोद्भव गोत्रों का परस्पर भेद होने पर भी उनमें वैवाहिक सम्बन्ध नहीं करना चाहिए।

अग्निगर्भोग्निमामन्युस्ततः कश्यप काश्यपाः।
सानगः पञ्चपुरुषाः सद्योजात मुखोद्भवाः॥ 6॥

अग्निगर्भ, अग्निमामन्य, कश्यप, काश्यप और सानग— ये पाँचों सद्योजात नामक मुख से उत्पन्न कहे गए हैं।

सनातनो वामदेवः सहस्रशिरः एव च।
कर्मण्यो विश्वकारश्च वामदेव मुखोद्भवाः॥ 7॥

सनातन, वामदेव, सहस्रशिरस्क, कर्मण्य और विश्वकार— ये पाँचों वामदेव नामक मुख से उत्पन्न हुए हैं।

अघोरोमूर्तिमांश्चैव कर्तुकर्मचरौ तथा।
अमूर्तिः पञ्चपुरुषाः अघोराख्य मुखोद्भवाः॥ 8॥

अघोर, मूर्तिमन्त, कर्ता, कर्मचर और अमूर्ति— ये पाँच पुरुष अघोर नामक मुख से उत्पन्न हुए हैं।

तत्पुरुषो महापुरुषः सुब्रह्मा ब्रह्मरूपकः।
सर्वतोमुखकश्चैते तत्पुरुष मुखोद्भवाः॥ 9॥

तत्पुरुष, महापुरुष, सुब्रह्मा, ब्रह्मरूप और सर्वतोमुख— ये पाँच तत्पुरुष के मुख से उत्पन्न कहे गए हैं।

ईशानश्च महेशानो जटाधरा सुवल्कलौ।
विश्वेशाख्यः पञ्चचैते ईशानमुखसम्भवाः॥ 10॥

इनके अतिरिक्त ईशान, महेशान, जटाधर, सुवल्कल और विश्वेश— ये पाँच ईशान नामक मुख से उद्भूत बताए गए हैं।

मयस्य विष्णुरूपस्य चत्वारः सन्ति बाहवः।
चतुसृष्वपि चैकस्मिन् चत्वारः सम्प्रजज्ञिरे॥ 11॥

मय को विष्णु स्वरूप कहा गया है। उनकी चार भुजाएँ हैं और उन चारों ही भुजाओं से एक-एक भुजा से चार-चार सन्ततियाँ उत्पन्न हुई हैं।

मयो वनस्पतिस्तक्षाविष्णुवर्धन एव च।
चत्वारो दक्षिणे बाह्वौ सम्भूता पुरुषा इमे॥ 12॥

इनमें से मय, वनस्पति, तक्षा और विष्णुवर्धन— ये चार पुरुष पहले दक्षिण बाहू से उत्पन्न कहे गए हैं।

रथकारो वर्धकी च गृहाकारोऽपि वार्दिनः।
ते द्वितीये प्रजायन्ते चत्वारे परमात्मनः॥ 13॥

रथकार, वर्धकि, गृहकार और वार्दिन— ये चार पुरुष विष्णुस्वरूप मय के दूसरे दक्षिण बाहू से उत्पन्न हुए हैं।

शङ्खपालो जगत्कर्ता सर्वतन्त्री तथैव च।
शार्जी च सम्बभूवुस्ते वामबाहौ महात्मनः॥ 14॥

महात्मा मय के पहले वाम बाहू से शंखपाल, जगत्कर्ता, सर्वतन्त्री और ऐसे ही शार्जी (शार्ङ्गी) नामक चार पुरुषों ने जन्म लिया।

विश्वज्ञो विश्वरक्षश्च महौजश्चोज एव च।
सञ्जाताश्चतुरो ह्येते भुजे वामे द्वितीयके॥ 15॥

द्वितीय वाम बाहू से विश्वज्ञ, विश्वरक्ष, महौजस एवं ओज नामक चार पुरुषों ने जन्म लिया।

त्वष्टुर्ब्रह्मस्वरूपस्य मुखत्रयमनिन्दितम्।
एकैकस्मिन्मुखे तस्मिंश्चत्वारः सम्प्रजज्ञिरे॥ 16॥

इसी प्रकार ब्रह्मस्वरूप त्वष्टा के तीन मुख हैं और तीनों ही मुखों से चार-चार पुरुषों ने जन्म लिया।

त्वष्टारमहभूनुश्च विश्वरूपं चतुर्मुखम्।
प्रथमेलपने त्वष्टा चतुरः समजीजनत्॥ 17॥

इनमें से त्वष्टा, अहभूनु, विश्वरूप और चतुर्मुख— इन चारों को त्वष्टा ने अपने पहले मुख से जन्म दिया।

लोकस्त्रष्टापरब्रह्मा तन्तुवर्धन इत्यपि।
हिरण्यगर्भस्त्वष्टुरद्वितीयलपने भवन्॥ 18॥

लोकस्त्रष्टा, परब्रह्मा, तन्तुवर्धन और हिरण्यगर्भ— इन चार पुरुषों को त्वष्टा ने अपने दूसरे मुख से उत्पन्न किया।

विधाता विश्वकर्माख्यः कमलासन शुल्बिनौ।
चत्वारो धातृलिपने तृतीये समजज्ञिरे॥ 19॥

विधाता, विश्वकर्मा, कमलासन और शुल्बी— इन चार पुरुषों को धातृरूप त्वष्टा ने अपने तीसरे मुख से जन्म दिया।

शिल्पनः शक्ररूपस्य चत्वारः सन्ति बाधवः।
तेषु बाहुषु सञ्जातास्त्रयो राजन् महौजनः॥ 20॥

हे राजन्! इन्द्र स्वरूप शिल्पी के चार हाथ हैं। उन चारों हाथों से एक-एक में से तीन-तीन पुरुषों को उत्पन्न किया गया।

नलशिल्पीमेघवाहः समजायन्त दक्षिणे।
वामे पुरन्दरः प्रत्नः शिल्पिनः पाकशासनः॥ 21॥

उनमें से नल, शिल्पी और मेघवाह— ये तीन दक्षिणी भुजा उत्पन्न हुए। वाम बाहू से पुरन्दर, प्रत्न और पाकशासन— ये तीन शिल्पी हुए।

शतमन्युः शिल्पिनोस्य पुरूहूतः तथैव च।
वास्तोष्पतिः सम्भवन् द्वितीये वामके भुजे॥ 22॥

शतमन्यु, पुरूहूत और वैसे ही वास्तोष्पति— ये तीन शिल्पी ब्रह्मा के दूसरे वामहस्त से उत्पन्न हुए।

वृद्धश्रवा हरिताश्वः पर्वतान्तस्तथैव च।
द्वितीये दक्षिणे तस्य जज्ञिरे च नृपाधिपा॥ 23॥

हे राजाधिराज! वृद्धश्रवा, हरिताश्व और वैसे ही पर्वतान्त— इन तीन पुरुषों ने दूसरे दक्षिणी हाथ से जन्म लिया।

विश्वज्ञस्यार्करूपस्य बभूव द्वादशात्मता।
एकैकस्माद्भेदतोप्येकैको भूत्पुरुषः क्रमात्॥ 24॥

अर्कस्वरूप विश्वज्ञ बारह मूर्तियों वाले हुए हैं। उनमें से एक-एक मूर्ति से एक-एक पुरुष ने जन्म लिया। इनका क्रम अग्रानुसार हैं—

अभवन्नर्कमामन्युः सहस्रांशु हिरणमयौ।
विश्वज्ञ सूर्यगोविन्दौ सप्ताश्वो लोकबान्धवः॥ 25॥
कर्मसाक्षि सुपर्णश्च तथैव च प्रभाकरः।
अर्कशाली विकर्ता च पृथक् तुल्य पराक्रमाः॥ 26॥

अर्कमामन्य, सहस्रांश, हिरण्मय, विश्वज्ञ, सूर्यगोविन्द, सप्ताश्व, लोकबान्धव, कर्मसाक्षी, सुपर्ण, प्रभाकर, अर्कशाली और विकर्ता— ये सभी

बारह पुरुष समान रूप से पराक्रमशाली हुए।[१]

इति श्रीकालहस्तिमुनि प्रणीत श्रीविश्वकर्मपुराणे गोत्रप्रवरलक्षणं नामाष्टाविंशोऽध्यायः ॥ 28 ॥

इस प्रकार कालहस्ति मुनि द्वारा प्रणीत श्रीविश्वकर्मपुराण में गोत्र प्रवर लक्षण नामक अठाईसवाँ अध्याय पूरा हुआ।

---

१. इस प्रसंग में प्रवरमंजरी में कहा गया है कि पाँच पुरुषों में सामान्यतया तीन में विवाह का अभाव तथा तीन में दोनों का भृगु अंगिरा के गणों में अभाव और अवशिष्टों में एक और का निषेध प्राप्त होता है। मातृ गोत्र प्रवर का समान प्रवर होने पर भी विवाह नहीं करना चाहिए क्योंकि वह बहन होती है— पञ्चानां त्रिषु सामान्यादविवाहस्त्रिषु द्वयोः। भृग्वङ्गिरोगणेष्वेवं शेषेष्वेकापि वारयेत्॥ समानप्रवरो भिन्नो मातृगोत्रवरस्य च। विवाहो नैव कर्त्तव्यः सा कन्या भगिनी भवेत्॥ (ज्योतिर्निबन्ध पृष्ठ 132, 3-4)

अथ एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ 29 ॥

मुनि उवाच —

अन्य गोत्रोद्भवा कन्या सुशीलास्वकुलोचिता।
स्नातकाय वृणीतव्य ज्ञातिभिः पितृबान्धवैः ॥ 1 ॥

मुनि कालहस्ति ने स्नातक के विवाह के लिए कन्यावरण के प्रसंग में कहा—पिता और बन्धुजनों को चाहिए कि वे अपनी जाति की किन्तु अपने गोत्र से पृथक् गोत्र में उत्पन्न सुशील और अपने कुल की दृष्टि से उचित कन्या का वरण करें।

गृहस्थले गवां घोषे सस्यक्षेत्रे सुरालये।
द्विमार्गे च श्मशाने च शालायां गजवाजिनाम् ॥ 2 ॥
आरामे मृत्तिकां धृत्वा पिण्डान्कुर्यात् पृथक् पृथक्।
तेषामेकं गृहाणेति वदेत्कन्यां विचक्षणः ॥ 3 ॥

(वरण की गई कन्या कैसी होगी? इसके लिए अलग-अलग स्थानों की मिट्टी लेकर उनकी गोलियाँ बनाकर परीक्षण करना चाहिए) इसके लिए अपने घर की मिट्टी, गायों की शाला, खेती की, देवालय की, दो रास्ते की, श्मशान की, गजशाला की, अश्वशाला की और बाग में से मिट्टी अलग-अलग ही ग्रहण करें और उस मिट्टी से अलग-अलग पिण्डियाँ तैयार करें। उन पिण्डिकाओं में कोई एक उठाएँ और उसके आधार पर कन्या के सम्बन्ध में फल कहना चाहिए।[1]

अष्टौ विवाहपर्यायाः स्त्रीपुंसोः सर्वयोरपि।
ब्राह्मं दैवमथार्षेयं प्राजापत्यमथासुरम् ॥ 4 ॥
गान्धर्वं राक्षसं चैव पैशाचक मतःपरम् ॥ 5 ॥

सभी कुलों में स्त्री-पुरुषों के बीच वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करने के लिए आठ प्रकार बताए गए हैं— 1. ब्राह्म विवाह, 2. दैव विवाह, 3. आर्ष

---

१. कन्या परीक्षण की यह परम्परा लोकमान्यताश्रित है। इसके फलाफल इस प्रकार बताए गए हैं—
गृहस्थल मृत्तिका = सत्पुत्रवती। गौशाला की मृत्तिका = चौपाया वृद्धिकारिणी
खेती की मृत्तिका = धान्य की वृद्धिकारी। देवालय की मृत्तिका = दरिद्रा
दो रास्ते की मृत्तिका = व्यभिचारिणी। श्मशान की मृत्तिका = वैधव्यवती
गजाश्वशाला की मृत्तिका = भाग्यवती। बगीचे की मृत्तिका = आयुष्मती

विवाह, 4. प्राजापत्य विवाह, 5. आसुर विवाह, 6. गान्धर्व विवाह, 7. राक्षस विवाह और 8. पैशाच विवाह।[१]

यत्कर्म दक्षिणे दद्यात्कन्यां स्वर्णविभूषिताम्।
तत्पाणिपीडनं युक्तं मयमन्वंशजन्मनाम्॥ 6॥

जिस विवाह संस्कार में कन्या को सुवर्णालंकारों से विभूषित करके वर से पाणिग्रहण करवाया जाता है, (ऐसा दैव विवाह) मनु और मय के वंशजों के लिए प्रशस्त होता है।

तमानीय गृहं दद्यात्समानस्य च मानवे।
कन्यां कनकसम्पन्नां प्राजापत्यं तदुच्यते॥ 7॥

अपने ही बराबर वर को अपने गृह में न्यौतकर सुवर्णाभरणों से अलंकृत कन्या का दान करना प्राजापत्य विवाह कहा जाता है।

प्रतिगृह्णाति गोयुग्मं दत्वा कन्यां च यो नरः।
तदार्षेय इति ख्यातः भूरिभिः शास्त्रपारगैः॥ 8॥

जिसमें गाय-बैल की जोड़ी को स्वीकार करके कन्या का दान किया जाता है, वह विवाह आर्षेय विवाह कहा जाता है। शास्त्र के विद्वानों ने इसकी प्रशंसा की है।

स्त्रीपुंसोरूभयोरेव गान्धर्वः प्रीतिसङ्गमः।
कन्याशुल्कं धनं दत्त्वा स्वीकृतं चासुरं भवेत्॥ 9॥

जब युवती और युवक प्रेम करके विवाह रचाते हैं, वह गान्धर्व विवाह कहलाता है। कन्या के पिता को शुल्क और धन देकर विवाह करना आसुर विवाह होता है।

हत्वा भित्वा बलात्कन्यां ये हरन्तीह राक्षसम्।
सुप्तां प्रमत्तां कन्यां वा पैशाचकमिति स्मृतः॥ 10॥

कन्या के पक्ष वालों की हत्या करके, घायल करके युवती को बलात् उठा

---

१. श्रीपति ने भी आठ प्रकार के विवाह बताए हैं— प्राजापत्यं ब्राह्मदैवर्षिसंज्ञाः कालेषूक्तेष्वेव कार्या विवाहाः। गान्धर्वाख्यश्चासुरो राक्षसश्च पैशाचो वा सर्वकाले विधेयाः॥ इनमें प्राजापत्य, ब्राह्म, दैव और आर्ष विवाह मुहूर्तानुसार करने चाहिए और शेष विवाह किसी भी समय किए जा सकते हैं। (बृहद्दैवज्ञरञ्जनम् 71, 16)

लेना राक्षस विवाह होता है। सुप्त अवस्था में अथवा बहला-फुसलाकर कन्या को ले जाना पैशाच विवाह जानना चाहिए।

ब्राह्मो दैवस्तु चार्षेयः प्राजापत्यस्तथैव च।
चतुर्विध विवाहास्तु विशेषाः परिकीर्तिताः॥ 11॥
गान्धर्वऽऽसुरश्चैव मध्यमौ परिकीर्तितौ।
पैशाचको राक्षसश्च अधमौ परिकीर्तितौ॥ 12॥

आठ विवाहों में से ब्राह्म विवाह, दैव, आर्षेय और प्राजापत्य विवाह— ये चार विवाह विशेष रूप से उत्तम कहे गए हैं। गान्धर्व और आसुर विवाह मध्यम कहे गए हैं। पैशाच और राक्षस विवाह अधम कहे गए हैं।

ब्राह्मो दैवश्च आर्षेयः ब्राह्मणानां विशेषकाः।
प्राजापत्यश्च गान्धर्वो राक्षसः क्षत्रजातिषु॥ 13॥
आसुरश्चैव गान्धर्व प्राजापत्यो विशां कुले।
आसुरश्चैव पैशाचो राक्षसः शूद्रज्ञातिषु॥ 14॥

इसी प्रकार ब्राह्मण समुदाय में ब्राह्म, दैव और आर्षेय— ये तीन विवाह स्वीकार्य हैं। प्राजापत्य, गान्धर्व और राक्षस— ये तीन विवाह क्षत्रिय कुल; आसुर, गान्धर्व और प्राजापत्य— ये तीन विवाह वैश्य समुदाय और आसुर, पैशाच और राक्षस— ये तीन विवाह शूद्र समुदाय के लिए स्वीकारे गए हैं।

कन्यादानं कृतं येन सदाचारस्य सूनवे।
उद्धरेत्सप्तगोत्राणि कुलमेकोत्तरं शतम्॥ 15॥

सदाचार से सम्पन्न पुत्र को कन्यादान करके दाता अपने से सम्बद्ध सात गोत्रों की एक सौ सात पीढ़ियों का उद्धार करता है।

कन्यार्थं लभते द्रव्यं विश्वकर्मा कुलोद्भवम्।
स याति नरकं घोरं पितृभिः सह मानवः॥ 16॥

विश्वकर्मा के कुल में उत्पन्न होने वाला जो व्यक्ति कन्या के बदले वर पक्ष से यदि किसी प्रकार का द्रव्य लेता है तो वह अपने पितरों के साथ घोर नरक में जाता है।

विवाहात्पूर्वतो या वै कन्या यदि रजस्वला।
सा कन्या वृषली ज्ञेया तज्जातः शूद्र एव च॥ 17॥

यह ज्ञातव्य है कि विवाह से पूर्व ही यदि कन्या रजस्वला हो जाए तो वह वृषली कहलाती है। उसके द्वारा उत्पन्न की गई सन्तान शूद्र होती है।[1]

इति श्रीकालहस्तिमुनि प्रणीत श्रीविश्वकर्मपुराणे कन्यावरणं चाष्टविध विवाहवर्णनं नाम एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ 29 ॥

इस प्रकार कालहस्ति मुनि द्वारा प्रणीत श्रीविश्वकर्मपुराण में कन्या वरण और आठ प्रकार के विवाह के वर्णन नामक उनतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ।

---

१. यह बहुत पूर्वकालीन मान्यता है और वर्तमान में अनुचित, अप्रासंगिक है। वात्स्य का मत कई ग्रन्थों में उद्धृत है कि वृषली कन्या से यदि कोई विप्र मद से मोहित होकर विवाह रचा लेता है तो वह असम्भाष्य, अपांक्तेय एवं वृषलीपति हो जाता है—यस्तां विवाहयेत्कन्यां ब्राह्मणो मदमोहितः। असम्भाष्यो ह्यपांक्तेयः स विप्रो वृषलीपतिः॥ (राजमार्तण्ड 401; बृहद्दैवज्ञरञ्जनम् 71, 56)

अथ

मुनि उवाच —

ततो मङ्गलतूर्यैश्च
वरोवाहनमारुह्य

मुनि कालहस्ति अ
चयन हो जाने के बाद वि
गीतों के गायन के बीच
जाना चाहिए।

प्रतिगत्वा सुवा
तेष्वक्षतान्विकी

वहाँ पहुँचने पर
बन्धु वर पक्ष वालों (ब
दीपक जलाकर नीराजन

कन्यां वृणीध्व
स्नातकः प्रेरये

वहाँ वर को
वृणीध्वम्' कहकर कन्य

एवं नियुक्तास्त
उच्चैर्वदेयुः प्र

इस प्रकार नियु
सम्मुख पहुँचें और कन्य
उच्चारण करें।

पुनर्वरान्तिकं
स्वस्तित्युक्त्व

इसके बाद उन
भी गोत्र-प्रवरों का उच
वर के लिए स्वस्तिवाच

अथ त्रिंशोऽध्यायः ॥ 30 ॥

मुनि उवाच —

ततो मङ्गलतूर्यैश्च पुण्यस्त्रीगानसंयुतैः।
वरोवाहनमारुह्य गच्छेत्कन्यागृहं द्विजैः ॥ 1 ॥

मुनि कालहस्ति आगे वैवाहिक लोकचारों के प्रसंग में बोले— कन्या का चयन हो जाने के बाद विप्र दूल्हा को मंगल वाद्यों के वादन और सुहागिनों के गीतों के गायन के बीच वाहनारूढ़ करके (वरयात्रा सहित) कन्या के गृह पर जाना चाहिए।

प्रतिगत्वा सुवासिन्यः कन्याया भ्रातृबान्धवैः।
तेष्वक्षतान्विकीर्याथ दीपैर्नीराजनक्रियाम् ॥ 2 ॥

वहाँ पहुँचने पर कन्या पक्ष की सजी-धजी महिलाएँ और उसके भाई-बन्धु वर पक्ष वालों (बारात) का स्वागत करें। उन पर अक्षतवर्षण करें और दीपक जलाकर नीराजन (आरती) करें।

कन्यां वृणीध्वमित्युक्त्वा कन्यायाः पितुरन्तिकम्।
स्नातकः प्रेरयेद्विद्वानाचार्यान् प्रयतस्ततः ॥ 3 ॥

वहाँ वर को चाहिए कि वह विद्वानों, आचार्यों को 'मदर्थं कन्यां वृणीध्वम्' कहकर कन्यादानकर्ता युवती के पिता के पास जाने को कहे।

एवं नियुक्तास्ते गत्वा कन्यायाः पितुरन्तिकम्।
उच्चैर्वदेयुः प्रवरान् कन्यापूर्वकमग्रतः ॥ 4 ॥

इस प्रकार नियुक्त किए गए आचार्यों को चाहिए कि वे कन्या के पिता के सम्मुख पहुँचें और कन्या से पूर्व, उनके आगे खड़े होकर उच्च स्वर में गोत्र-प्रवर उच्चारण करें।

पुनर्वरान्तिकं गत्वा तत्राप्येवं वदेत्ततः।
स्वस्तित्युक्त्वा वरः पश्चात्परतः परितोजनैः ॥ 5 ॥

इसके बाद उन आचार्यों को पुनः वर के डेरे (जानीवासा) में आकर वहाँ भी गोत्र-प्रवरों का उच्चारण करना चाहिए। इस विधान के बाद स्वजनों के साथ वर के लिए स्वस्तिवाचन करें।

विष्टरं प्रथमं दद्यात्पाद्यं दद्यात्ततः परम्।
पादौ प्रक्षालयेत् पत्नी करे कलशवारिणा ॥ 6 ॥

वैवाहिक रीति के अन्तर्गत कन्यादाता को पहले वर को विष्टर (कुश निर्मित आसन) प्रदान करना चाहिए और फिर वर को पाद्य प्रदान करना चाहिए। पाँवों का प्रक्षालन करते समय कन्यादाता की पत्नी को अपने हाथ में कलश लेकर पाँवों पर जल गिराना चाहिए।

त्रिरर्घ्यं कुसुमैर्धृत्वा दद्यादाचमनोदकम्।
आनयेद्राजते पात्रे दधिसर्पिर्मधूनि च ॥ 7 ॥
वरस्य हस्तेतद्दद्यात्सोऽपि त्रिःप्राशयेन् मधु।
कुर्यात्ततः पिता दानं कन्यायाः शुभलग्नके ॥ 8 ॥

बाद में पुष्प हाथ में लेकर तीन अर्घ्य दें और आचमन के लिए जल देना चाहिए। वहीं पर चाँदी के कटोरे में दही, घी और शहद मिलाकर बने 'मधुपर्क' को लाएँ। वर की हथेली में तीन बार मधुपर्क देकर चटवाएँ। मधुपर्क प्राशन के बाद शुभलग्न में पिता को कन्यादान करना चाहिए।

ततो माङ्गल्यसूत्रं च काञ्चनं कन्यकागले।
निबध्नीयाद्वरस्तस्मिन् गौरीं कालीमनुस्मरेत् ॥ 9 ॥

इसी क्रम में शुभ लग्न में वर को चाहिए कि वह गौरी और काली का स्मरण करते हुए सुवर्ण से बने मंगलसूत्र को वधू के गले में बाँधने की रीति पूरी करे।

अन्योन्यमक्षतान्मूर्धोन् निक्षिपेतां वधूवरौ।
अलङ्कृतौ सुवस्त्राद्यैः प्रेमपूर्वकमात्मनिः ॥ 10 ॥

इस बीच, अलंकरणों व वस्त्रों से सुसज्जित वर और वधू प्रेमपूर्वक मुस्कान भाव दिखाते हुए एक दूसरे के सिर-प्रदेश पर अक्षतों की वर्षा करें।

अलङ्कृतां वधूं हस्ते गृहीत्वा मन्त्रपूर्वकम्।
प्रणम्य पार्वतीं तत्र शूर्पाणि च प्रदापयेत् ॥ 11 ॥

पाणिग्रहण की वेला में मन्त्रोच्चार के बीच सुसज्जित वधू का हाथ वर अपने हाथ में लें। वहीं पार्वतीदेवी को प्रणाम करें और देवी को शूर्प (सूपड़ा) का दान करना चाहिए।

ततः सप्तर्षिन्पुण्यान् रात्रौ ध्रुवमरुन्धतीम्।
दृष्ट्वा प्रणम्य दत्वार्घ्यं प्रविशेत्तत्रवेदिकाम्॥ 12॥

पुनः रात्रिकाल में पुण्यस्वरूप आकाशस्थ सप्तर्षियों, ध्रुव और अरुन्धतीदेवी[१] के दर्शनों का जोड़े से लाभ लेकर उनको अर्घ्यदान और प्रणाम करें और विवाह की वेदिका पर प्रवेश करना चाहिए।

कुण्डं तत्र विनिर्माय प्रतिष्ठाप्य च पावकम्।
हावयेन्मन्त्रतो भक्त्या लाजांस्तत्र यथाविधि॥ 13॥

विवाह-वेदिका पर कुण्ड को बनाएँ और उसमें अग्नि की स्थापना करें। उसमें श्रद्धापूर्वक मन्त्रोच्चार सहित लाजा (खीलों, भुंजित धान्य) का हवन करना चाहिए।

तत सप्तपदीं कृत्वा परिक्रम्य प्रदक्षिणम्।
कृत्वा नीराजनं नार्यः फलपूजां यथाक्रमम्॥ 14॥

तदोपरान्त सप्तपदी के अन्तर्गत हवनाग्नि के प्रदक्षिण पथ पर चलते हुए परिक्रमा करें। फल आदि से यथाक्रम पूजा करके सन्नारियों को युगल की नीराजन (आरती) करनी चाहिए।

चतुर्थीदिनपर्यन्तमाचार्यान् भोजयेज्जनाम्।
स्नात्वा नागबलिं कुर्यादर्धरात्रे चतुर्थके॥ 15॥

इस प्रकार चार दिन तक रीतियाँ होंगी। इस दौरान आचार्यादि जनों को भोजन करवाएँ। चौथे दिन आधी रात में स्नान करके नागबलि की रीति करनी चाहिए।

कल्याणमण्डपं कृत्वा नानारङ्गैलडकृतम्।
स्थापयेत्तत्र कुम्भौ द्वौ प्रदीपावलीमग्रतः॥ 16॥

इस बीच, अनेकानेक रंग और अलंकरण सामग्री का प्रयोग करते हुए

---

१. कर्दम प्रजापति की देवहूति उत्पन्न नौ पुत्रियों में से एक जिसको वशिष्ठ पत्नी माना गया है। वशिष्ठ सप्तर्षिमण्डल में परिगणित हैं। अरुन्धती को प्रभातकालीन तारा माना गया है। वह दाम्पत्य महत्ता के लिए ख्यात है। भार्योचित समर्पण के कारण पाणिग्रहण संस्कार में वर के द्वारा उसका आवाहन किया जाता है। स्त्री होते हुए भी उसको वह सम्मान मिला है जो सप्तर्षियों को सुलभ है। रघुवंश में कहा गया है— अन्वासितमरुन्धत्या स्वाहयेव हविर्भुजम्। (संस्कृत-हिन्दी कोश : आप्टे, पृष्ठ 93)

कल्याण-मण्डप (विवाह वेदी) को रंगोली सहित रचें।[१] उसमें दो कलशों को विराजित करें और आगे की ओर दीयों को शृंखलाबद्ध रूप में जलाया जाए।

कृत्वा प्रदक्षिणं तस्य स्त्रीभिस्सह पुरोधसा।
माङ्गल्यधारणं चैव हस्त्यारोहणमुज्ज्वलम्॥ 17॥

उक्त कल्याण-मण्डप में ही सुहागिन स्त्रियों को पुरोहित के साथ चलकर उसकी प्रदक्षिणा करनी चाहिए। वहीं पर मांगल्य-धारण[२] की रस्म पूरी करें और नूतन हाथियों पर आरोण करना चाहिए।

एवं नागबलिं कृत्वा तोषणाद्विश्वकर्मणः।
आचार्याशीर्वचः प्राप्य कुर्यात्ताम्बूलचर्वणम्॥ 18॥

विश्वकर्मा की सन्तुष्टि के लिए इस अवसर पर नागबलि का विधान करना चाहिए। आचार्यों का आशीर्वाद लेना चाहिए और ताम्बूल का सेवन करना चाहिए।

नान्दीविसर्जनं कृत्वा कङ्कणानी विसर्जयेत्।
वासन्तिकोत्सवं कृत्वा स्थालीपाकादिकं चरेत्॥ 19॥

बाद में नान्दी-विसर्जन (खुशी के गीतों का समापन) करके कंकण का विसर्जन का कार्य करना चाहिए और वासन्तिकोत्सव मनाएँ और स्थालीपाक (लपसी) आदि बनाने का कार्य करना चाहिए।

स्थपतिं याजये देवं वेदोक्तविधिना ततः।
कुर्याच्च वैश्वकर्मेष्टिं विग्रहायुधयोरपि॥ 20॥

पुनः वेदोक्त विधिसम्मत स्थपति याग करवाना चाहिए। उसमें वैश्वकर्मण यज्ञ से विग्रह-आयुध शान्ति को भी सम्मिलित करना चाहिए।[३]

---

१. विवाहपटल में सप्तर्षि मत से कहा गया है कि अपने गृह के प्रमाण से समस्त मांगलिक कार्यों के लिए 16, 12 अथवा 10 हाथ का मण्डप बनाना चाहिए। चार स्तम्भों से सुसज्जित करके बीच में बीच में वेदी बनाएँ और उसको चारों ओर सुन्दर चित्रित कलशों से सजाया जाना चाहिए— मङ्गलेषु च सर्वेषु मण्डपो गृहमानतः। कार्यः षोडशहस्तो वा द्विषड्ढस्तो दशावधिः॥ स्तम्भैश्चतुर्भिरेवात्र वेदी मध्ये प्रतिष्ठिता। शोभिता चित्रिता कुम्भैरासमन्ताच्चतुर्दिशम्॥ (बृहद्दैवज्ञरञ्जनम् 71, 1156-1157)

२. सौभाग्य सूचक नीललोहित या काले मोती बन्धन की रीति। अन्य क्षेत्रों में माँग भराई की रस्म भी इसी दौरान की जाती है जिसमें वर द्वारा रजत शलाका से सिन्दूर को माँग में भरा जाता है।

३. यह मान्यता है कि इस विश्वकर्मेष्टि से शिल्पियों को शिल्प कर्माधिकार की सिद्धि होती है।

एवं दीक्षित आचार्यः पञ्चशिल्प विचक्षणः।
लोकोपकार कृद्धीमान् जीवेच्छरदां शतम्॥ 21॥

इस प्रकार से याग-दीक्षित होकर शिल्पाचार्य पाँच शिल्पों के ज्ञानानुशासन-व्यवहार में कुशल होता है और वह अपनी बुद्धिमता से लोकोपकार करता हुआ शतायु होता है।

इति श्रीकालहस्तिमुनि प्रणीत श्रीविश्वकर्मपुराणे पाणिग्रहणकर्म वर्णनं नाम त्रिंशोऽध्यायः॥ 30॥

इस प्रकार कालहस्ति मुनि द्वारा प्रणीत श्रीविश्वकर्मपुराण में पाणिग्रहणकर्म नामक तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ।

अथैकत्रिंशोऽध्यायः ॥ 31 ॥

मुनि उवाच —

मासि भाद्रपदे कृष्णपक्षे कन्यागतौ रवौ।
पित्रूनुद्दिश्य विधिवत्कार्यं श्राद्धं नरः शुचिः ॥ 1 ॥

लोकाचार सहित वैवाहिक संस्कार के वर्णन के बाद मुनि कालहस्ति बोले— भाद्रपद मास के कृष्णपक्ष में जबकि सूर्य कन्याराशि में हो, व्यक्ति को पवित्र हृदय होकर पितृ-देवताओं के उद्देश्य से विधिसम्मत श्राद्धकर्म करना चाहिए।

पितृ मातृ त्रयं चैव सपत्नी जननी तथा।
मातामहानां सस्त्रीणां तथा जयासुतादयः ॥ 2 ॥

यह ज्ञातव्य है कि पिता, पितामह, प्रपितामह, माता, पितामही, प्रपितामही और पत्नियों सहित मातामहिएँ और किसी कारणवश दिवंगत पत्नी, पुत्र ये सभी श्राद्ध कर्म के योग्य होते हैं।

अन्येषु पुण्यकार्येषु सङ्क्रान्ति ग्रहणेषु च।
अन्नेन वा हिरण्येन श्राद्धं कुर्याद् गयादिषु ॥ 3 ॥

भाद्रपद मास ही नहीं, वर्ष में किसी भी संक्रान्ति के समय, सूर्य या चन्द्र ग्रहण के काल में भी गया जैसे पुण्य क्षेत्र में अन्नदान या सुवर्णदानादि से श्राद्धकर्म किया जा सकता है।

विश्वकर्मा कुलोद्भूतो ये श्राद्धं नैव कारयेत्।
स पापी नरकं याति यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥ 4 ॥

जो विश्वकर्मा के कुल में उत्पन्न हुआ हो और यदि श्राद्ध नहीं करता है तो वह पापी चन्द्रमा एवं सूर्य के रहने तक नरक में रहता है।

विश्वकर्म कुलाचारं यस्त्यक्त्वा श्राद्धकर्मसु।
अन्यजातौ वृथा श्राद्धं स पापी नरकं व्रजेत् ॥ 5 ॥

यही नहीं, जो अपने विश्वकर्मीय कुलाचार को त्यागकर जो अन्य जाति-समुदायों की परम्परा को स्वीकार कर वृथा श्राद्धकर्म करता है तो वह पापी भी नरक को जाएगा।

आश्रितांश्च गुरुंश्चैव श्रोत्रियं च स्वशाखिनम्।
विद्यागुरुं यतीन्द्रञ्च पूजयेच्छ्राद्धकर्मसु॥ 6॥

अपने आश्रितों, गुरुजनों, श्रोत्रियों और अपनी शाखा वालों सहित विद्या प्रदान करने वाले गुरु और यतीन्द्र की श्राद्ध के अवसर पर अवश्य पूजा करनी चाहिए।

आसन्नमतिथिं चैव दरिद्रं बान्धवं तथा।
आश्रितं ज्ञातिभ्रातृव्यं भोजनाय न लङ्घयेत्॥ 7॥

समीपवर्ती सम्बन्धियों, अतिथियों, दरिद्रजनों, बन्धु-बान्धवों, आश्रय में रहने वाले सेवकादि सहित अपने जाति-बन्धुओं को श्राद्धभोज में कभी टालना नहीं चाहिए।

द्वादश्यां चैव जन्मर्क्षान् व्यतीपातेषु पर्वणि।
आचार्यान् भोजयेत्सम्यक् प्रीतये विश्वकर्मणः॥ 8॥

द्वादशी के दिन, जन्म नक्षत्र के दिन, व्यतिपात नामक योग और पर्व (14, 8, 15, 30 एवं संक्रान्ति) के अवसर पर भगवान् विश्वकर्मा के प्रति प्रीति के उद्देश्य से आचार्य को न्यौतकर श्रद्धापूर्वक भोजन करवाना चाहिए।

तीर्थे श्राद्धं प्रकुर्वीत् ग्रहणे च हिरण्यकम्।
पित्रोः प्रत्याब्धिकं चैव नित्यश्राद्धमितीरितम्॥ 9॥

जहाँ भी तीर्थ स्थल हो, वहाँ पर नैमित्तिक श्राद्ध करना चाहिए। ग्रहणादि का योग हो तब सुवर्ण श्राद्ध करना चाहिए। प्रतिवर्ष अपने माता-पिता के लिए वार्षिक (प्रत्याब्धिक) श्राद्ध करना चाहिए। (इसको नित्य श्राद्ध भी कहा जाता है)।

मृतेहनि परित्यज्य चण्डालः कोटिजन्मसु।
अवन्ध्यं दिवसं कुर्यादुपवासी परेहनी॥ 10॥

माता-पिता के निधन के दिवस को स्मरण करके जो श्राद्ध नहीं करता, वह करोड़ों जन्म तक चाण्डाल होता है। यदि किसी बाधा के कारण निश्चित दिवस पर श्राद्ध नहीं हो सके तो दूसरे दिन उपवासकर तीसरे दिन श्राद्ध का सम्पादन करना चाहिए।

जाताशौचे मृताशौचे महारोगाद्युपप्लवे।
निवृत्ते तदुपाधौतु नित्यं श्राद्धं समाचरेत्॥ 11॥

शिशु के जन्म के कारण हुए आशौच, मृत्यु के कारण हुए आशौच, महारोग, उपप्लव (महामारी, विस्थापन) आदि के कारण से यदि श्राद्ध कर्म में विघ्न हुआ हो तो सब आशौचों के निवृत्त होने के बाद नित्यश्राद्ध करना चाहिए।

वसवश्च तथा रुद्रा आदित्या विश्वकर्मणः।
लीलारूपाणि तल्लोके पित्रुणां श्राद्धमक्षयम्॥ 12॥

यह ज्ञातव्य है कि अष्ट वसु, एकादश रुद्र और बारह आदित्य— ये सभी विश्वकर्मेश्वर के लीलारूप हैं, वे इस लोक में पितृदेवता की तरह है। अतः उनको लक्ष्य करके किया गया पितृश्राद्ध अक्षय माना जाता है।

विराड्विश्वमयो ब्रह्म विश्वेदेवात्मकस्ततः।
श्राद्धौ मन्वादिरूपी तु प्रियतां विश्वभुक्सदा॥ 13॥

विराट्विश्वमय ब्रह्म विश्वदेवात्मक माने गए हैं, इसलिए श्राद्धकर्ताओं से मनु, मय, त्वष्टा, शिल्पी, विश्वज्ञ रूप में विश्वभोक्ता सन्तुष्ट होते हैं।[१]

पितृवर्ग त्रयं चैव मातृवर्ग त्रयं ततः।
सापत्नी मातरः पश्चात्ततो मातामह त्रयम्॥ 14॥
मातामही त्रयं चैव स्वभार्या च सुतस्तथा।
भ्राता चैव पितृव्यश्च मातुलश्च स्वसा ततः॥ 15॥
श्वसुरश्च तथा श्वश्रूः दौहित्रौ दुहिता तथा।
जामाता भागिनोयश्च स्नुषा चैव वित्रुष्वसा॥ 16॥
मातृश्वसा भावुकश्च श्यालकश्चेति बान्धवाः।

अपने पारिवारिक सम्बन्धियों में पिता, पितामह, प्रपितामह, माता, पितामही, प्रपितामही, सौतली माताएँ, माता के पिता, माँ के दादा, माँ के परदादा, नानी, नानी की माँ, नानी की माँ की माँ (ये बारह पितृदेव), अपनी पत्नी, पुत्र, भाई, पिता के भाई चाचा, मामा, बहिन, ससुर, सास, भाँजा, बेटी, दामाद, भाँजी, बहू, भुआ, मौसी और साला— ये सब बन्धुजन कहे जाते हैं।

---

१. कहा गया है कि जो परमेश्वर हम सबके पालन करने वाले और उत्पन्न करने वाले हैं, जो सभी के धारणकर्ता हैं, जो सम्पूर्ण स्थानों एवं लोकों के ज्ञाता है, जो एक होकर भी विविध देवों के नामों को धारण करते हैं, सभी लोकों के प्राणी अन्ततः उनको ही प्राप्त होते हैं— यो नः पिता जनिता यो विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा। यो देवानां नामधा एक एव तं सम्प्रश्नं भुवना यन्त्यन्या॥ (ऋग्वेद 10, 82, 3)

ये मृतास्ते हि सन्तर्पयाहः तत्तत् श्राद्धदिनेषु च॥ 17॥
तर्पणं तिलदर्भैश्च पर्वण्यन्यत्र चोदकेः।
दर्शे द्वादशदैवत्यं षड्पिण्डं वा त्रिपिण्डकम्॥ 18॥

इनमें से जिस किसी की जिस तिथि को मृत्यु हुई हो, श्राद्ध के दिनों में, महालयों में उस दिन पिण्ड आदि से तर्पण करना चाहिए। पर्वण्य में तिल और दर्भ से तर्पण करना चाहिए। अन्यत्र जल से तर्पण करना चाहिए। अमावस्या का दिन हो तो षड्पिण्ड विधान से अथवा त्रिपिण्ड विधान से श्राद्ध अवश्य करना चाहिए।

इति श्रीकालहस्तिमुनि प्रणीत श्रीविश्वकर्मपुराणे श्राद्धकर्म विधानं नाम एकत्रिंशोऽध्यायः॥ 31॥

इस प्रकार कालहस्ति मुनि द्वारा प्रणीत श्रीविश्वकर्मपुराण में श्राद्धकर्म विधान नामक इकतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ।

अथ द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ 32 ॥

सुव्रतोवाच —

कालहस्ति मुने! ब्रूहि पुण्यपाप विचारकम्।
स्वर्गस्य नरकस्यापि साधनं शुद्धिकारणम्॥ 1 ॥

संस्कारों और श्राद्ध विषयक विचारों को सुनकर राजा सुव्रत ने मुनिवर से प्रश्न किया— हे कालहस्ति मुने! आप पाप-पुण्य के विचार के विषय में बताइयेगा। स्वर्ग और नरक प्राप्ति के कारण और उनके अर्थ में शुद्धिकारण साधन के सम्बन्ध में भी कहियेगा।

मुनि उवाच —

शृणु सुव्रत! वक्ष्यामि शिल्पं लोकोपकारकम्।
पुण्यं तदव्यतिरिक्तं तु पापमित्यभिधीयते॥ 2 ॥
इति सामान्यतः प्रोक्तं विशेषस्तवत्र कथ्यते।
पुण्यं सत्कर्मजा दृष्टं पातकं तु विकर्मजम्॥ 3 ॥

इस पर मुनिवर कहने लगे— हे सुव्रत! सुनिये, मैं वही सब कहता हूँ। (पंचविध) शिल्पकर्म निश्चित ही लोक का उपकार करने वाला है। शारीरिक श्रमपूर्वक धनार्जन करना पुण्य कहा जाता है। उसका उल्लंघन करना ही पाप है अर्थात् बिना परिश्रम किए भोजन करना पाप होता है। यह व्यवस्था सामान्य पाप-पुण्य स्वरूप है। विशेषतः यह जाने कि अपने कर्माचरण से होने वाला फल पुण्य है और इसके विपरीत कर्म के आचरण से होने वाला फल पाप होता है।

शुद्ध्यर्थेहात्मनोः सत्यं दया भूतेषु चार्जवम्।
परोपकारश्चास्तिकं विज्ञेयं पुण्यकारणम्॥ 4 ॥

व्यक्ति को अर्थ के प्रयोजन से सदा ही अपने को शुद्ध रखना चाहिए। मन को पाप चिन्तन से दूर रखकर निर्मल करना चाहिए। सत्य व्रत का सदैव पालन करें। प्राणियों के प्रति दया रखें। कभी विपरीत मार्ग का अनुसरण नहीं करें। परोपकार करें और भगवान् एवं परलोक को स्वीकारना ही पुण्य के कारण हैं।

स्वर्णस्तेयं सुरापानं परस्त्रीसङ्गमनं तथा।
हिंसनं चानृतं चेति पातकं पञ्चलक्षणम्॥ 5॥

सुवर्ण आदि मूल्यवान द्रव्यों की चोरी करना, मद्यपान, पराई स्त्री के साथ सहवास, प्राणियों की हिंसा करना और झूठ बोलना— ये पाँच पाप के लक्षण हैं। अन्य सभी पाप भी इन्हीं के अन्तर्गत हैं।

स्वर्गापवर्गौ पुण्येन पापेन नरकं व्रजेत्।
अगामी त्यागतो नश्येत् प्रायश्चित्तेन सञ्चितम्॥ 6॥

पुण्य करने से व्यक्ति स्वर्ग और अपवर्ग को प्राप्त करता है। पाप कर्मों को करने से नरक में जाता है। आगे आने वाले पाप-पुण्य को नवकर्म परित्याग रूप से नष्ट किया जा सकता है। पहले ही प्राप्त पाप-पुण्य को प्रायश्चित से विनष्ट किया जा सकता है।

प्रारब्धमनुभाव्यं स्यादिति विश्वकुलोद्भवः।
ज्ञात्वा पुण्येमतिं दध्याच्छुद्धात्मा नियतव्रतः॥ 7॥

प्रारब्ध के कारण पाप-पुण्य को भोगना ही पड़ता है। इसलिए विश्व के सारे मानव समुदाय को देह और मन को परिशुद्ध रखकर अपने लिए निर्धारित कर्मों का आचरण करते हुए पुण्यार्जन के लिए प्रयत्न करना चाहिए।

स्नानाद्देहमलं नश्येद्दानात् स्तेयकृतं मलम्।
हिंसाजंदयमात्यक्त्वा दुःखमाशौचतस्तयजेत्॥ 8॥

स्नान आदि से शरीर के मालिन्य को दूर किया जा सकता है। दान करने से चोरी के पाप का प्रायश्चित हो सकता है। दया करने से हिंसाजन्य पाप का प्रायश्चित हो सकता है और इष्टजनों के वियोग से हुए दुःखों को शौच भावना से दूर किया जा सकता है।

पित्रादि ज्ञाती मरणे दशाहं च ततस्त्रयहम्।
मध्ये शेष दिनं पश्चात् पक्षिण्यब्देत्वपःस्पृशेत्॥ 9॥

पिता आदि सपिण्ड की मृत्यु हो गई हो तो दस दिनों तक आशौच रखना चाहिए। अपिण्ड जातिजनों के लिए तीन दिन तक आशौच रखें। अन्य कोई हो तो एक दिन बाद और बाद में एक पक्ष या एक वर्ष में स्नान से शुद्धि होती है।

समीपबन्धोरन्यस्य त्रिदिनं शौचमुच्यते।
अतिक्रान्ते त्वनाशौचं स्यायाद्बालमृतौ तथा॥ 10॥

निकटतम बन्धु की मृत्यु हो गई हो तो तीन दिन का आशौच रहता है। यदि तीन दिनों बाद उसके निधन का समाचार मिला हो तो आशौच ही नहीं रहता है। बालक के मरण पर स्नान से ही शुद्धि हो जाती है।

दशाहं जननाशौचं सपिण्डानां विधीयते।
मातुश्च मासपर्यन्तं नास्पृश्यत्वं मृतौ न हि॥ 11॥

सपिण्ड जाति वालों के निधन पर और जन्म जन्य आशौच दस दिन तक रहता है। माता के निधन होने पर एक महीना आशौच रहता है।

रजस्वलायास्त्रिदिनमस्पृश्यत्वं प्रकीर्तितम्।
आस्नानं दुष्टसंसर्गा चन्द्रसूर्योपरागके॥ 12॥

रजस्वला हुई स्त्री को तीन दिन तक नहीं छूना चाहिए। चन्द्र और सूर्य के ग्रहण काल में स्नान करने तक कोई संसर्ग नहीं करना चाहिए।

पञ्चसूतकमित्येतद्दीक्षितानां न विद्यते।
दृग्धेषस्यत्वनुष्ठानमुच्छिष्टे तु जलाच्छुचिः॥ 13॥

जो लिंग दीक्षित होते हैं, उनके लिए पंचसूतक नहीं लगता है। दृद्दोष अनुष्ठान से दूर होता है और उच्छिष्ट या जूठा जल से धोने से शुद्ध हो जाता है।

मलोत्सर्गे मृदा शुद्धिः वस्त्राणां क्षालनेन च।
लोहे सन्तपनात् शुद्धिः पाकं स्पर्शेनदूष्यति॥ 14॥

मलोत्सर्ग करने पर मृत्तिका सहित जल से शुद्धि होती है, मलीन वस्त्र की शुद्धि धोने पर होती है। लोहे को धूप या आग में तपाने पर शुद्ध होता है। पके हुए पदार्थ दूसरों के स्पर्श करने मात्र से दूषित होते हैं।

क्रोधेपि चाश्रुपाते च शोके चापि जलं स्पृशेत्।
कुर्यान्नलोहितं विद्वान् विश्वकर्मा सदाशुचिः॥ 15॥

क्रोध आने पर, अश्रुपात करने पर और शोक होने पर स्नान करना चाहिए। विद्वान लोग कभी रक्तपात का काम नहीं करते। विश्वकर्मा के वंशज तो सदा ही शुद्ध होते हैं।

एवं विधस्य पुण्यस्य दर्शनं पापनाशनम्।
पञ्चब्रह्मकुलोत्पन्नो विश्वधामपरं व्रजेत्॥ 16॥

इस प्रकार कहे गए शुद्ध आचरण वाले पुण्यात्मा के दर्शन से सारे पाप

मिट जाते हैं। पञ्चब्रह्मकुल में उत्पन्न होने वाला सदाचार से सम्पन्न व्यक्ति श्रेष्ठतम विश्वधाम को प्राप्त कर सकता है।

इति श्रीकालहस्तिमुनि प्रणीत श्रीविश्वकर्मपुराणे सदाचारप्रसंशादि नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ 32 ॥

इस प्रकार कालहस्ति मुनि द्वारा प्रणीत श्रीविश्वकर्मपुराण में सदाचार की प्रशंसा मूलक बत्तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ।

अथ त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ 33 ॥

सुव्रतोवाच —

श्रीकालहस्ति योगीश्वरा! मुमूर्षुः किं समाचरेत्।
मृतस्य वर्णिनः किंवा कार्यमाश्रमिणां तथा ॥ 1 ॥

राजा सुव्रत ने पूछा— हे कालहस्ति योगीश्वर! दिवंगत के लिए क्या करना चाहिए? निधन को प्राप्त होने वाले के वंशजों और चार आश्रम वालों के लिए क्या-क्या कर्म होते हैं? समझाइयेगा।

मुनि उवाच —

प्रेतकर्म रहस्यं तु श्रूयतां सुव्रताऽधुना।
बन्धोरगतिकस्यापि मुहूर्षोर्हितमाचरेत् ॥ 2 ॥

मुनि कालहस्ति ने इस प्रश्न पर कहा— हे सुव्रत! अब तुम प्रेमकर्म के रहस्य को सुनियेगा। मरणासन्न व्यक्ति अपना निकट सम्बन्धी हो या अनाथ, उसको जीवनदायी औषधियाँ देकर उसका हित करना चाहिए।[१]

तस्य वाक्यं समाकर्णय तद्धनं परिगृह्य च।
धर्माय दापये देवं तथास्थित्यनुगृह्यतम् ॥ 3 ॥

यदि कोई मरने की स्थिति में हो और वह अपनी सम्पत्ति प्रदान करता है तो उसकी बातों को सुनकर 'आप जैसा कहते हैं, वैसा ही करूँगा' कहकर उसको विश्वास देना चाहिए। उससे प्राप्त धन को धार्मिक कार्यों में लगाना चाहिए।

---

१. शिवधर्मोत्तरपुराण में कहा गया है कि मरणासन्न की उपचारचर्या से वह पुण्य लाभ होता है जो समस्त यज्ञों के सम्पादन से होता है। जिस तरह आकाश का अन्त नहीं होता है, वैसे ही देवताओं को भी जो दुर्लभ है, वह पुण्य आरोग्यदान से होता है, उसको कहा नहीं जा सकता है। इस महान् पुण्य के फलस्वरूप आरोग्यदाता शिवपुर को जाता है और वहाँ विविध भोगों का उपभोग करता है। वह मनोरथपूर्ण करने वाले विमान पर आरूढ़ रहता है। उसके साथ इक्कीस कुलों और नौकर-चाकर आदि को भी लाभ मिलता है—यत्पुण्यं महदाप्नोति न तत्सर्वैर्महामखैः। आकाशस्य यथा नान्तः सुरैरप्युपलभ्यते ॥ तद्वदारोग्यदानस्य नान्तो वै विद्यते क्वचित्। पुण्येनानेन महता गत्वा शिवपुरं नरः ॥ मोदते विविधैर्भोगैः विमानैः सार्वकामिकैः। एकविंशत् कुलोपेतः सभृत्यः परिपालितः ॥ (शिवधर्मोत्तर. 2, 186-188)

म्रियमाणस्य श्रवणे जपेच्छिव शिवेति च।
तं मृतं स्नापयेदद्भिर्विभूतिं निटिले न्यसेत्॥ 4॥

मरणासन्न व्यक्ति के कान में 'शिवं शिवं' सुनाते हुए जाप करना चाहिए। जब उसके प्राण छूट जाएँ, तो शव को स्नान करवाना चाहिए और कपाल आदि पर विभूति धारण करवानी चाहिए।[1]

आच्छद्य नववस्त्रेण कृत्वा गोदानमुत्तमम्।
तत्पुत्र ज्ञातयश्चापि केश श्मश्रूणि वापयेत्॥ 5॥

शव को नवीन वस्त्रों से आच्छादित करना चाहिए और गोदान का पुण्यकर्म करना चाहिए। उसके पुत्र और निकटवर्ती परिजनों-बन्धुओं को दाढ़ी-मूँछ, केशों को मुण्डवा लेना चाहिए।

आचार्याणां चतुर्णाञ्च दत्त्वा वासांसि भक्तितः।
तत्पुत्र प्रार्थयमानास्ते वाहकार्थं निमन्त्रयेत्॥ 6॥
अनाथ प्रेतमाचार्यं यो वहेन् मनुवंशजः।
पदे पदेऽश्वमेधस्य फलं स लभते ध्रुवम्॥ 7॥

विश्वकर्मा के जिस वंश में व्यक्ति का निधन हुआ हो, उसके पुत्र को चाहिए कि उस वंश को छोड़ शेष चारों ही वंशों के आचार्यों को निमन्त्रित करें। उनको सश्रद्ध वस्त्रादि प्रदान कर शव उठाने के लिए आने की प्रार्थना करनी चाहिए। जो मनु वंशज किसी अनाथ शव को कन्धा देता है, वह श्मशान के मार्ग में चलते हुए कदम-कदम पर निश्चित ही अश्वमेधयज्ञ का फल प्राप्त है।[2]

---

१. गरुडपुराण में कहा गया है कि कर्म के सम्बन्ध से जब प्राणी अपना शरीर छोड़ने लगे तो उस समय तुलसी के समीप गोबर से एक मण्डल की रचना की जानी चाहिए। उसके ऊपर तिलों को बिखेरकर श्वेत वस्त्रासन पर शालग्राम को स्थापित करना चाहिए। जहाँ पाप, दोष और भय का हरण करने वाली शालग्राम शिला विद्यमान होती है,उसके संनिधान में मरने से प्राणी की मुक्ति निश्चित होती है। जहाँ जगत का ताप हरने वाली तुलसी वृक्ष की छाया विद्यमान होती है, वहाँ मरने से सदैव मुक्ति ही होती है, जो मुक्ति दानादि कर्मों से दुर्लभ होती है— कर्मयोगाद्यदा देही मुञ्चत्यत्र निजं वपुः। तुलसीसंनिधौ कुर्यान्मण्डलं गोमयेन तु॥ तिलांश्चैव विकीर्याथ दर्भांश्चैव विनिक्षिपेत्। स्थापयेदासने शुभ्रे शालग्रामशिलां तदा॥ शालग्रामशिला यत्र पापदोषभयापहा। तत्संनिधानमरणान्मुक्तिर्जन्तौः सुनिश्चिताः॥ तुलसीविटपच्छाया यत्रास्ति भवतापहा। तत्रैव मरणान्मुक्तिः सर्वदा दानदुर्लभा॥ (गरुडपुराण सारोद्धार, 9, 3-6)

२. तुलनीय—धृत्वा स्कन्धे स्वपितरं यः श्मशानाय गच्छति। सोऽश्वमेधफलं पुत्रो लभते च पदे

ततः पथिबलिं दत्त्वा चितारोपणं शवस्य च।
प्रोक्षणं प्रेतहोमं च विश्वाग्रेर्दानमेव च॥ 8॥

श्मशान के मार्ग में पथिबलि देनी चाहिए और शव को ले जाकर चित्ता पर रखना चाहिए। इस बीच जल से प्रोक्षण, प्रेतहोम, विश्वाग्निदान करना चाहिए।[१]

शिलाया वासनश्चापि ग्रहणं तद्दिने स्मृतम्।
अस्थि सञ्चयनं श्वस्तु समे नित्यविधिर्नहि॥ 9॥

इसके बाद, शिलाग्रहण या वासनग्रहण उसी दिन करना चाहिए। अस्थियों का संचयन दूसरे दिन करना चाहिए किन्तु यह स्मरणीय है कि नित्यकर्मों के दिन के अतिरिक्त सम दिनों (2, 4, 6 आदि) में नहीं करना चाहिए।

ततः कुर्यान्नवश्राद्धं विषमेषु दिनेषु च।
प्रेतमुद्दिश्य विधिवत्तण्डुलैश्च यथाक्रमम्॥ 10॥

तदोपरान्त विषम दिनों (3, 7, 9, 11 आदि) में नवश्राद्ध की रीति करनी चाहिए। प्रेत को उद्देश्य करके यह विधि तण्डुलों से यथाक्रम करनी चाहिए।

एकादशेह्नि सम्प्राप्ते कुर्यात्प्रेतत्वमुक्तये।
वृषोत्सर्गादिकं श्राद्धं प्रयतो भक्तितो नरः॥ 11॥

इसी क्रम में ग्यारहवें दिन श्राद्धकर्ता को पवित्र होकर श्रद्धा व भक्ति से दिवंगत की मुक्ति के लिए वृषोत्सर्गादि श्राद्ध करना चाहिए।

द्वादशेहि तु सापिण्ड्यं कार्यं प्रेतत्व मुक्तये।
सप्ताचार्यांश्च भुक्त्यर्थं पूतात्मा स निमन्त्रयेत्॥ 12॥

बारहवें दिन प्रेतत्व से मुक्ति के लिए सपिण्डीकरण कार्य करना चाहिए। इसके लिए सात आचार्यों को भुक्ति के लिए न्यौतना चाहिए और उनका सम्मान करना चाहिए।

पदे॥ नीत्वा स्कन्धे स्वपृष्ठे वा सदा तातेन लालितः। तदैव तदृणान्मुच्येन्मृतं स्वपितरं वहेत्॥ (गरुडपुराण सारोद्धार 10, 12-13)

१. गरुडपुराण में कहा गया है— चितामारोप्य तं प्रेतं पिण्डौ द्वौ तत्र दापयेत्। चितायां शवहस्ते च प्रेतनाम्ना खगेश्वरः। चितामोक्षप्रभृतिकं प्रेतत्वमुपजायते॥ केऽपि तं साधकं प्राहुः प्रेतकल्पविदो जनाः। चितायां तेन नाम्ना वा प्रेतनाम्नाऽथवा करे॥ (गरुडपुराण सारोद्धार 10, 21-22)

ततो वैतरणीं नाम कुर्याद्गोदानमुत्तमम्।
उत्सृजेत वृषभं चैव तस्मात्सद्गतिरेथते॥ 13॥

बाद में यमलोक के मार्ग में पड़ने वाली वैतरणी नदी को पार करने के उद्देश्य से उत्तम गाय का दान करें। मृतक की गति के लिए वृषोत्सर्ग भी करना चाहिए।

मृतस्य मनुवंशस्य दहनं न भवेद्यदि।
तत् कुलं नाशमाप्नोति क्षिप्रमेव न संशयः॥ 14॥

यदि दिवंगत होने वाला मनु का वंशज हो और उसका दाह नहीं किया जाए तो उसका कुल शीघ्र ही विनाश को प्राप्त होता है, इसमें संशय नहीं है।

वानप्रस्थं यतीन्द्रं च व्रतिनं लिङ्गधारिणम्।
मृतं तु न दिहेद्धीमान् जले वा भुवि निक्षिपत्॥ 15॥

यदि दिवंगत होने वाला वानप्रस्थी, यतीन्द्र, व्रतिन् और लिंगधारण करने वाला हो तो बुद्धिमान को चाहिए कि उसके शव को जलाए नहीं बल्कि जल समाधि अथवा भूसमाधि देने का प्रयास करें।

इति श्रीकालहस्तिमुनि प्रणीत श्रीविश्वकर्मपुराणे प्रेतकर्मवर्णनं नाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः॥ 33॥

इस प्रकार कालहस्ति मुनि द्वारा प्रणीत श्रीविश्वकर्मपुराण में प्रेतकर्म वर्णन नामक तैंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ।

अथ चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ 34 ॥

सुव्रतोवाच —

वानप्रस्थस्य वृत्तं मे कालहस्ति महामुने!।
ब्रूवतां पुरुष व्याघ्र मनुवंश द्विजन्मनः ॥ 1 ॥

राजा सुव्रत ने पूछा— हे कालहस्ति महामुनि! अब आप मुझे वानप्रस्थ आश्रम की चर्या के विषयय में बताइयेगा। विशेष रूप से पुरुषों में सिंह के रूप में स्वीकार्य मनु वंश में जन्मे द्विजों के लिए यह आश्रम कैसा हो सकता है?

कालहस्ति मुनि उवाच —

वत्सराणां विरागोते षष्ठिः पत्न्या वने वसन्।
सन्त्यजेद्विषयान् भोगान् जटावल्कलवानसौ ॥ 2 ॥

यह सुनकर मुनि कालहस्ति बोले— जब व्यक्ति साठ वर्ष का हो जाए, वह पत्नी से वन में निवास की आज्ञा लेकर वैराग्य को धारण करें। वह विषयों और भोगों को छोड़कर जटा, वल्कल के परिधानों को अंगीकार करें।

चरेद्वनेषु गिरिषु तीर्थक्षेत्र नदीषु च।
त्यजेद् ग्रामनिवासं तु सन्त्यजेदन्न भोजनम् ॥ 3 ॥

वह वानप्रस्थी वन-वन विचरण करें। पर्वतों, तीर्थों के क्षेत्र में और नदियों के प्रवाह क्षेत्र में विहार करें। ग्राम के निवास का सर्वथा परित्याग करें और अन्न का आहार भी छोड़ दें।

हृदिध्यानं मुखे मन्त्रं मस्तके शिवचिह्निताम्।
जटां यज्ञोपवीतं च विश्वकर्मण्य लक्षणम् ॥ 4 ॥

उसके हृदय में ईश्वर का ध्यान हो, मुख पर मन्त्र का जप हो, मस्तक पर शिव का चिह्न हों। वह जटाएँ और यज्ञोपवीत धारण करें— ये विश्वकर्मीय वानप्रस्थ के लक्षण होते हैं।

चरेद्द्वादशवर्षाणि षड्वर्षाणि त्रयोऽपि वा।
वर्षमेकं ततः कुर्यात् सन्यासाश्रममुत्तमम् ॥ 5 ॥

वानप्रस्थी को इन नियमों के अनुसार बारह वर्ष, छह वर्ष, तीन वर्ष अथवा एक वर्ष की अवधि व्यतीत करें। तदोपरान्त वह उत्तम सन्यास आश्रम को

ग्रहण कर लें।

यतीनां वाऽथ स्वेनैव गृहीतव्यं दृढव्रतम्।
जीवश्राद्धं च कृत्वाथ त्यजेत्सूत्रं शिखादिकम्॥ 6॥

सन्यास की दीक्षा को वह किसी यतिराज से ग्रहण करें अथवा स्वयं भी सन्यास ले सकता हैं। इससे पूर्व उसको जीविच्छ्राद्ध करना चाहिए और शिखा, यज्ञोपवीत, कटिसूत्र आदि का त्याग कर देना चाहिए।

चतेत्सर्वत्र तीर्थेषु स कुर्वन् भूप्रदक्षिणाम्।
त्रिरात्रं पञ्चरात्रं वा ग्रामे ग्रामे वसेन्मुनिः॥ 7॥

सन्यास व्रत धारण करने के उपरान्त उसको सर्वत्र विचरण करना चाहिए। उसके तीर्थाटन करते हुए पृथ्वी की परिक्रमा करनी चाहिए। मुनिव्रत के बाद वह तीन अथवा पाँच रात्रि ही किसी एक ग्राम में ठहर सकता है।

चातुर्मास्ये तु सम्प्राप्ते वसेत्तत्र मनोहरे।
आश्रमे भवने यत्र गृहिणश्चोप कल्पिते॥ 8॥

चातुर्मास (आषाढ़ी चतुर्दशी से कार्तिक चतुर्दशी तक) की अवधि में वह संचरण को छोड़कर किसी गृहस्थी द्वारा सुझाए गए सुन्दर आश्रम अथवा भवन को प्राप्त कर उसमें ठहर सकता है।

उपानीतं धनं येन सद्यो नो दापयेद्यदि।
कल्प्यते सोऽपि कर्मन्दी पुनरूत्पत्तये भुवि॥ 9॥

इस बीच, यदि कहीं से कुछ धन की उपलब्धि हो जाए तो सन्यासी को चाहिए कि वह उसको तुरन्त ही दूसरों, जरूरतमन्दों के लिए व्यय कर दें। यदि ऐसा नहीं किया जाए तो यति को मुक्ति नहीं मिलती, उसे इस भूमि पर पुनः जन्म लेना पड़ता है।

कृत्या कालत्रये स्नानमनुष्ठानं यथाविधि।
एतादृशविधं प्रोक्तं यथा देह स्वभावतः॥ 10॥

सन्यासी को नियमित रूप से तीनों ही संध्याकाल में स्नान करके यथाविधि अनुष्ठान करना चाहिए। सन्यासी को अपने-अपने देहतत्त्व के अनुसार निम्नांकित दशविध स्नान का आचरण करना चाहिए—

आग्नेयं वारुणां ब्राह्यं वायव्यं चावगाहम्।
कण्ठस्नानं कटिस्नानं कापिलं मन्त्र मानसे॥ 11॥

ये स्नान हैं— 1. आग्नेय स्नान, 2. वारुण स्नान, 3. ब्राह्म्य स्नान, 4. वायव्य स्नान, 5. अवगाहन, 6. कण्ठ स्नान, 7. कटि स्नान, 8. कापिल स्नान, 9. मन्त्र स्नान और 10. मानस स्नान।

कुत्सिताचार विमुखाः सदाचार परायणः।
अनालस्याप्रमत्ताश्च साधु सन्दोह तत्पराः॥ 12॥

सन्यासी को सदैव बुरे आचरण से विमुख रहना चाहिए! सदाचार के परायण रहना चाहिए। आलस्य नहीं करना चाहिए। त्रुटि से बचना चाहिए। साधुजनों की सेवा में तत्पर रहना चाहिए।

शान्ताः क्षमापराश्चैव कुशास्त्र परिवर्जिताः।
वेदान्तशास्त्रनिरताः सोऽहंभाव पराः सदा॥ 13॥

सदा शान्तचित्त रहना चाहिए। क्षमा गुण को धारण करना चाहिए। निन्दित शास्त्रों का पठन-पाठन त्याग देना चाहिए। वेदान्तशास्त्र (ब्रह्मसूत्र) में निरत रहना चाहिए। सदा सोऽहं भाव (वह ब्रह्म मैं ही हूँ) भाव पर दृढ़व्रत रहना चाहिए।

परोपकारनिरताः शरणागत वत्सलाः।
समस्तशास्त्रतत्त्वज्ञास्ते मोक्षं प्राप्नुवन्ति हि॥ 14॥

परोपकार में जुटे रहना चाहिए। शरण में आने वालों के प्रति प्रेम रखना चाहिए। वेदादि समस्त शास्त्रों को तत्त्व से जानना चाहिए। ऐसा करके वह सन्यासी मोक्ष की प्राप्ति कर सकता है।

इत्येव पुराण प्रशंसाः —

पुराण मे ततः श्लोकानां सहस्र तु शिवाधिकम्।
ये शृण्वन्ति नरा भक्त्या सर्वेष्टार्थानवाप्नुयुः॥ 15॥

इस प्रकार यह महाविश्वकर्म पुराण कहा गया। यह 1011 श्लोकों में ग्रंथित है। इस पुराण को जो कोई व्यक्ति भक्तिपूर्वक सुनता है, वह अपने सभी इष्टार्थों को प्राप्त कर सकता है।

इतिहास पुराणानां निगमागमयोरपि।
सारभूतमिदं पुण्यं पवित्रं विश्वकर्मणः॥ 16॥

यह पुण्यदायी पवित्रतम महाविश्वकर्म पुराण इतिहास, पुराण, निगम और आगम इत्यादि ग्रन्थों का सारस्वरूप है।

श्रीकालहस्तिलिङ्गस्य प्रसादाच्छासितुस्सुतः।
कृते प्रोवाच यत्काश्यां सुव्रताय तपोधनः॥ 17॥

महामुनि श्रीकालहस्ति लिंगीश्वर की कृपा से कृतयुग में इसको काशी में तपोधन राजा सुव्रत ने उनके ही कहने से सुना था।

तस्य श्रवणमात्रेण श्लोकैकस्याक्षरस्य वा।
नरः पापात्प्रमुक्ष्येत युञ्जते श्रेयसान्वहम्॥ 18॥

इस पुराण से यदि कोई व्यक्ति एक श्लोक अथवा एक अक्षर भी सुनता है तो वह श्रवण मात्र से पापों से छूट जाता है और श्रेय को प्राप्त करता है।

यत्रै तत्पुस्तकं तिष्ठेत्तत्र लक्ष्मीः प्रसीदति।
आचार्य सम्मुखादेव शृणुयाद्भक्तितः शुचिः॥ 19॥

जहाँ कहीं यह पुराण पुस्तक रूप में प्रतिष्ठित होता है, वहाँ पर लक्ष्मीदेवी का निवास होता है। इसको पवित्र होकर पुराणाचार्य के मुख से भक्तिपूर्वक सुनना चाहिए।

आचार्य तोषणादेव विश्वकर्मा प्रसीदति।
इदं सत्यमिदं सत्यमिदं सत्यं न संशयः॥
भुजयुधृत्य वक्ष्यामि विश्वकर्मापरागतिः॥ 20॥

आचार्य को सन्तुष्ट रखने से ही भगवान् विश्वकर्मा का अनुग्रह प्राप्त होता है। यह सत्य है, सत्य यही है। इस सत्य में कोई संशय नहीं है कि सभी लोगों के लिए विश्वकर्मा ही परमगति है, ऐसा कहा गया है।

इति श्रीकालहस्तिमुनि प्रणीत श्रीविश्वकर्मपुराणे वानप्रस्थस्य व्रत्तं नाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः॥ 34॥

इस प्रकार कालहस्ति मुनि द्वारा प्रणीत श्रीविश्वकर्मपुराण में वानप्रस्थाश्रम वर्णन नामक चौंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ।

इति महाविश्वकर्मपुराणम्।